कृष्णचरित्र

लेखक—

वङ्गभाषाके साहित्य-सम्राट्

स्वर्गीय राय बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

बहादुर सी० आई० ई०

भाषान्तरकार—

पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

प्राप्तिस्थान—

कलकत्ता-पुस्तक-भण्डार

१७१-ए,० हरिसन रोड, कलकत्ता

द्वितीय बार २०००

मूल्य सादी २)
,, सजिल्द २॥)

प्रकाशक—
गङ्गाप्रसाद भोतीका एम० ए०,
बी० एल०, काव्यतीर्थ
मालिक—
हिन्दी पुस्तक भवन
१८१, हरिसन रोड,
कलकत्ता

पदाङ्ग सन्धिपर्वाणं
स्वरव्यञ्जनभूषणम् ।
यमाहुश्चाक्षरं दिव्यं
तस्मै वागात्मने नमः ॥
महाभारत, शान्तिपर्व्व, ४७ अ०

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका,
"हनुमान प्रेस"
नं० ३, माधव सेठ लेन,
(बेहरापट्टी) कलकत्ता ।

प्रकाशकका वक्तव्य

बड़े हर्षकी बात है कि यह भवन अपनी स्थापनाके इतने अल्प समयमें ही अपनी मालाके पांचवें पुष्प इस ग्रन्थरत्नको लेकर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित होता है। इस ग्रन्थके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस ग्रन्थके लेखक बंगभाषाके साहित्य-सम्राट् स्वर्गीय बाबू बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय हैं। आपकी कृति कैसी होती है इसे सभी साहित्यप्रेमी जानते हैं। आपके उपन्यासोंका प्रचार बहुत है, किन्तु यह समालोचनात्मक ग्रन्थ भी पढ़नेमें कम आनन्ददायक नहीं है। इसमें ग्रन्थकर्त्ताने श्रीकृष्ण भगवानके चरित्रपर विदेशियोंके किये हुए आक्षेपोंका मुंह-तोड़ उत्तर दिया है और उनके ईश्वरत्वको मानते हुए भी यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि कृष्ण भगवानके सभी काम एक आदर्श मनुष्यके योग्य थे, उनका कोई काम अस्वाभाविक या अलौकिक नहीं था। इस कार्यमें वे कहांतक सफलीभूत हुए हैं, इसका निर्णय पाठकोंपर ही छोड़कर मैं इतना कहे बिना नहीं रह सकता कि बंकिम बाबूका परिश्रम श्लाघनीय है और उन्होंने कृष्ण भगवानके असली चरित्रको जाननेके लिये प्रायः उन सभी ग्रन्थोंका मंथन कर डाला था जिनमें उनके सम्बन्धमें कुछ भी बात दिखलायी पड़ी।

जैसे इस ग्रन्थके लेखक साहित्य-संसारके एक सुपरिचित

सज्जन थे वैसे ही इसके भाषान्तरकार भी हिन्दी-संसारके एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं। आपका अनुवाद कितना सरस और लेखककी रचनाके अनुरूप हुआ है यह इस ग्रन्थके पाठसे ही स्पष्ट हो जाता है। आपने इस ग्रन्थके प्रथम संस्करणका अधिकार "भारतमित्र" प्रेसको दिया था। हिन्दी-भाषा-भाषियोंने इस ग्रन्थको अपनाया और इसका प्रथम संस्करण हाथोंहाथ बिक गया, यहांतक कि इसके प्रथम खण्डकी प्रतियां तो दुष्प्राप्य सी हो गयी थीं। अब भाषान्तरकारके अनुग्रहसे इस ग्रन्थके प्रकाशनका अधिकार इस भवनको मिल गया है जिसके लिये यह भवन उनका चिर कृतज्ञ है।

यदि पाठकोंका अनुग्रह बना रहा तो यह भवन शीघ्र ही अपने छठे पुष्प देशमान्य लाला लाजपतरायजीके बृहद् जीवन-चरित्रको लेकर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित होगा।

विनीत—

प्रकाशक

श्रीः

भाषान्तरकारका निवेदन ।

दोहा ।

जाहि देखि चाहत नहीं, कछु देखन मनमोर ।
बसै सदा मेरे द्दगन, सोई नन्दकिशोर ॥

इस पुस्तकके लिखनेमें मेरी कुछ बहादुरी नहीं है। जो कुछ है वह वैकुण्ठवासी राय वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय बहादुर सी, आई, ई, की है। उन्होंने वङ्गभाषामें यह पुस्तक लिखी थी। मैंने उसीका उल्था भर हिन्दीमें कर दिया है।

मैंने पहले पहल जिस समय "कृष्णचरित्र" पढ़ा था उसी समय इसे हिन्दीमें उल्था करना विचारा था। पर "गृहकारज नाना जञ्जाला" के कारण इतने दिनोंतक अपना विचार पूरा न कर सका। आनन्दका विषय है कि दस बर्षके बाद अब वह पूरा हुआ चाहता है।

कुछ लोग नासमझीके कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रपर कई प्रकारके दोष लगाते हैं। वङ्किम बाबूसे यह नहीं सहा गया क्योंकि वह उन्हें अवतार मानते थे। इसीसे वङ्किम बाबूने बहुत खोज ढूंढ़के साथ "कृष्णचरित्र" लिखकर श्रीकृष्णचन्द्रको केवल निर्दोष ही नहीं वरञ्च आदर्श पुरुष सिद्ध करनेका प्रयत्न किया और वह उसमें बहुत कुछ कृतकार्य्य भी हुए। यह पुस्तक मुझे इतनी पसन्द आयी कि कई स्थानोंपर मतभेद होनेपर भी, इसका उल्था किये बिना मुझसे नहीं रहा गया।

मैं यह डङ्केकी चोट कहूंगा कि *भगवान् कृष्णचन्द्रसा सुन्दर आदर्श जगत्में दूसरा न हुआ* है और न किसी कविने उसकी कल्पना ही की है। यही बात समझानेके लिये वङ्किम बाबूने "कृष्णचरित्र" की रचना वङ्गभाषामें की थी। मैंने भी इसी हेतु इसका हिन्दीमें उलथा किया है, क्योंकि आज-कल हमारे हिन्दी बोलनेवालोंमें भी भगवान् श्रीकृष्णको अवतार न माननेकी हवा बह चली है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि मैं श्रीकृष्णचन्द्रको अवतार मानता हूं और उनकी भक्ति करता हूं। यदि इस पुस्तकसे पाठकोंका कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

यहां यह कह देना मैं उचित समझता हूं कि वङ्किम बाबूने अपनी भूमिकामें जिस क्रोड़पत्रको बात कही है वह मैंने छोड़ दिया है। हां, उसकी टिप्पणियां यथास्थान अवश्य लगा दी गयी हैं।

६७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,	निवेदक
कलकत्ता।	जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।
होली, संवत् १९६९	

महतस्तमसः परे
पुरुषं ह्यतितेजसम्।
यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति
तस्मै ज्ञेयात्मने नमः॥
महाभारत, शान्तिपर्व्व ४७ अध्यायः।

चौथा परिच्छेद ।

महाभारतकी ऐतिहासिकता ।

यूरपवालोंकी सम्मतियां ।

ऐसे बहुतसे लोग हैं जो महाभारतकी ऐतिहासिकता उचित या अनुचित रीतिसे अस्वीकार करते हैं। ऐसा करनेवाले यूरपके विद्वान अथवा उनके शिष्य हैं। उनकी संक्षिप्त सम्मतियां लिखता हूं।

विलायती विद्वानोंका यह एक लक्षण है कि, वह लोग अपने देशमें जैसा देखते हैं वह समझते हैं विदेशमें भी वैसा ही है। वह मूर (Moor) के सिवा और किसी काली जातिको नहीं जानते थे इसलिये यहां आकर हिन्दुओंको भी (Moor) कहने लगे। इसी तरह उन्होंने स्वदेशमें एपिक (Epic) काव्यके सिवा पद्यमें आख्यान ग्रन्थ नहीं देखा, अतएव महाभारत और रामायणको एपिक समझ लिया। जो काव्य है उसमें भला ऐतिहासिकता कहां ? बस एकही बातमें मामला खतम।

यूरपवालोंने तो यह ढंग कुछ कुछ छोड़ दिया है, पर उनके भारतीय शिष्योंने अभी नहीं छोड़ा है।

साहब लोग महाभारतको काव्य क्यों कहते हैं यह उन्होंने ठीक नहीं समझाया। पद्यमें होनेके कारण ही वह ऐसा कहते हों तो ठीक नहीं, क्योंकि सब प्रकारके संस्कृत ग्रन्थ पद्यमें ही हैं। विज्ञान, दर्शन, कोष, ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र, सब ही

पद्यमें हैं। यह हो सकता है कि, महाभारतका काव्यांश बड़ा सुन्दर है। यूरपवाले जिस प्रकारके सौन्दर्य्यको एपिक काव्यका लक्षण बतलाते हैं वह इसमें बहुत है, इसीसे वह इसे एपिक कहते हैं। किन्तु विचारकर देखनेसे इस प्रकारका सौन्दर्य्य बहुतेरे विलायती मूल इतिहासमें भी मिलेगा। अंग्रेजोंमें मेकौले, कारलाइल, फ्रूड फरासीसियोंमें लामार्तीन और मिशाला और ग्रीकोंमें थ्युसीडीडिस आदिके इतिहास ग्रन्थोंकी भी वही दशा है। मानवचरित्र ही काव्यका श्रेष्ठ उपादान है। इतिहासकार भी मनुष्य चरित्रका वर्णन करते हैं। यदि वह अपने कामको भली भांति सम्पादन कर सकें तो जरूर ही उनके इतिहासमें काव्यका सौन्दर्य्य आ जायगा। सौन्दर्य्यके कारण उक्त ग्रंथ अनैतिहासिक समझे जाकर छोड़े नहीं गये। फिर महाभारत ही क्यों छोड़ा जाय? महाभारतमें अधिक सौन्दर्य्य होनेका विशेष कारण भी है।

मूर्खोंकी बातपर विशेष आन्दोलन करना आवश्यक नहीं। पर पण्डित यदि मूर्खकी तरह बात करे तो क्या करना चाहिये? विख्यात वेबर साहब विद्वान जरूर थे परन्तु मेरे विचारसे उन्हों-ने जिस घड़ी संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया था वह भारतवर्षके लिये शुभ नहीं थी।

कलके जर्मनीके जंगलियोंकी सन्तानोंको भारतका प्राचीन गौरव खटकता था। इसीसे वह यही सिद्ध करनेमें सदा लगे रहते थे कि भारतवर्षकी सभ्यता बिलकुल नयी है। ईसा

मसीहके जन्मके पहले महाभारत था इसका प्रमाण उनकी समझमें कुछ नहीं है। इतनी भी प्राचीनता स्वीकार करनेका एक यह कारण है कि क्रिसौसृम (Chrysostom) नामका एक यूरपवासी भारतवर्ष आकर मल्लाहके मुंहसे महाभारतकी कथा सुन गया था। पाणिनिके सूत्रमें महाभारत शब्द है, युधिष्ठिरादिके नाम हैं। किन्तु इससे भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। उनके जानते पाणिनि तो "कलका छोकड़ा" है। पर एक यूरपवासीके पवित्र कर्णरन्ध्रमें घुसे हुये एक नाविकके वचनोंकी अवहेला करना उनकी शक्तिके वाहर है। अतएव उन्होंने लाचार हो इतना अवश्य स्वीकार कर लिया है कि ईसवी सनकी पहली शताब्दीमें महाभारत था। मेगेस्थिनिज नामका एक और लेखक है जो ईसवी सन्के तीन या चार सौ साल पहले हुआ था। वह भारतवर्ष आकर चन्द्रगुप्तकी राजधानीमें रहा था। उसने अपनी पुस्तकमें महाभारतका उल्लेख नहीं किया है। इसलिये वेबर साहबकी राय है कि महाभारत उस समय नहीं था।*

---

* Since Megasthenes says nothing of this epic, it is not an improbable hypothethis that its origin is to be placed in the interval between his time and that of Chrysostom, for what ignorant sailors took note of, would hardly have escaped his observation. History of Sanskrit Literature. English Translation P. 186. Trubner & Co. 1882

जर्मनीके विद्वानोंने जानबूझकर यहां बेईमानी की है। क्योंकि वह अच्छी तरह जानते हैं कि मेगेस्थिनिजकी भारत सम्बन्धी पुस्तक अब नहीं मिलती है। केवल अन्यान्य ग्रंथकारोंने उससे जो जो अंश अपने अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किये हैं उन्हें डाक्टर श्वानबेक (Dr. Schwanbeck) ने संग्रह किया है। वही मेगेस्थिनिजकृत भारतवृत्तान्तके नामसे प्रचलित है। उसके ग्रन्थका अधिक अंश तो मिलता ही नहीं है। इसलिये उसने महाभारतके बारेमें कुछ लिखा था या नहीं, कहा नहीं जा सकता। वेबर साहबका भारतवर्षसे विद्वेष है इसीसे उन्होंने जानबूझकर ऐसा लिखा है। उनके बनाये भारतवर्षके साहित्यके इतिहासमें भारतवर्षके गौरवको घटानेकी चेष्टाको छोड़ और कुछ नहीं है। मेगेस्थिनिजने महाभारतका नाम नहीं लिया इससे यह नहीं सिद्ध होता कि उस समय वह नहीं था। बहुतसे हिन्दू जर्मनी हो आये हैं और उन्होंने पुस्तकें भी लिखी हैं पर किसीमें वेबर साहबका नाम नहीं है। इससे क्या यह सिद्धान्त करना होगा कि वेबर साहब कभी थे ही नहीं? जो विद्वान् वेबर साहबकी कही बातें अस्वीकार करना नहीं चाहते हैं उनकी दो आपत्तियाँ हैं—

(१) महाभारत प्रचीन ग्रंथ है सही, परन्तु यह ईसवी सनके चार पाँच सौ साल पहले बना है; उसके पहले नहीं था।

(२) पहले महाभारतमें पाण्डवोंकी कोई कथा नहीं थी, पाण्डव और कृष्ण कविकी कल्पना मात्र हैं।

यहांवालोंका कथन बिलकुल इसके विपरीत है। वह

कहते हैं कि कलिके आरम्भसे कुछही पहले कुरुक्षेत्रका युद्ध हुआ था। उसी समयमें वेदव्यास भी हुये थे। कलिके आते ही पाण्डवोंने स्वर्गारोहण किया। अतएव कलिके आरम्भमें ही अर्थात् आजसे ४६६२ वर्ष पहले महाभारत बना।

दोनोंका ही कहना घोर भ्रमसे परिपूर्ण है। दोनोंके कथनका खण्डन आवश्यक है। इसके लिये कुरुक्षेत्रका युद्ध कब हुआ था पहले इसका निर्णय करना जरूरी है। इसका निर्णय होजानेपर आपही प्रगट होजायगा कि महाभारत कब बना और पाण्डवादि कविकी कल्पना मात्र हैं या नहीं। फिर यह भी मालूम हो जायगा कि महाभारत विश्वासयोग्य इतिहास है या नहीं।

पांचवां परिच्छेद।

कुरुक्षेत्रका युद्ध कब हुआ ?

पहले अपने देशवालोंके मतकी ही समालोचना आवश्यक है। आजसे ४६६२ साल पहले कुरुक्षेत्रका युद्ध हुआ यह बात सत्य नहीं है, यहांके ग्रंथोंसे ही यह सिद्ध कर दूंगा। राजतरंगिणीकार लिखते हैं कि कलिके ६५३ वर्ष बीतनेपर गोनर्द काश्मीरका राजा हुआ। वह यह भी लिखते हैं कि गोनर्द युधिष्ठिरका समकालीन था उसने ३५ वर्ष राज्य किया। अब कल्यब्दमेंसे प्रायः सातसौ वर्ष और घटानेसे ईसवी सनके २४०० वर्ष पहलेका समय निकलेगा।

किन्तु विष्णुपुराणमें लिखा है—

सप्तर्षीणाञ्चयौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्यनक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि ॥
तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते तु पारीक्षिते काले मघास्वासन् द्विजोत्तम ॥
तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्द शतात्मकाः ।

४ अं २४ अ ३३-३४ ।

अर्थ । सप्तर्षिमण्डलके जो दो तारे आकाशमें पूर्व ओर उदय होते हैं उनसे समानान्तरपर बीचमें जो नक्षत्र* दिखायी पड़ता है उसीमें सप्तर्षि सौ वर्ष रहते हैं । परीक्षितके समयमें सप्तर्षि मघा नक्षत्रमें थे उस समय कलिको लगे बारह सौ वर्ष हुए थे ।

इस हिसाबसे कलिके १२०० वर्ष बाद परीक्षितका समय था । और ऊपरके ३४ वें श्लोकके अनुसार ईसवी सनके १६०० वर्ष पहले कुरुक्षेत्रका युद्ध होना चाहिये ।

परन्तु ३३ वें श्लोकसे यह हिसाब नहीं मिलता । इस ३३ वें श्लोकका तात्पर्य्य अति दुर्गम है । इसे विस्तारपूर्वक समझाना पड़ेगा । सप्तर्षिमण्डल कई स्थिर तारे हैं । उनका अङ्गरेजी नाम ग्रेटबेअर (Great Bear) या अरसा मेजर (Ursa Major) है । मघा नक्षत्र भी कई स्थिर तारे हैं । यह सब जानते हैं कि

---

* नक्षत्र यहां अश्विनी आदि हैं ।

स्थिर ताराओंकी गति नहीं होती है। हां, विषुवकी जरासी गति है। अंग्रेज ज्योतिर्विंद उसको प्रिसेशन औफ दी इक्वीनोकसेज़ (Precession of the Equinoxes) कहते हैं। यह गति हिन्दू मतसे प्रतिवर्ष ५४ विकला है। प्रत्येक नक्षत्रमें १३-१/३ अंशका अन्तर है। इस हिसाबसे किसी स्थिर तारेको एक नक्षत्रकी परिक्रमा करनेमें एक हजार वर्ष लगते हैं;एक सौ नहीं। इसके सिवा सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्रमें कभी रह नहीं सकता क्योंकि मघा नक्षत्र सिंहराशिमें है। राशिचक्रके भीतर बारह राशि हैं। सप्तर्षि मण्डल राशिचक्रके बाहर है। जैसे इङ्ग-लैण्ड भारतवर्षमें नहीं हो सकता वैसेही सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्रमें नहीं हो सकता है।

पाठक पूछ सकते हैं कि, तब पुराणकार ऋषिने क्या भङ्ग पीकर यह लिखा है? हम यह नहीं कहते, हम सिर्फ यही कहते हैं कि इस प्राचीन उक्तिका मतलब हमारी समझके बाहर है। पुराणकारने क्या समझके ऐसा लिखा यह हम नहीं समझ सकते। पाश्चात्य विद्वान बेन्टो साहबने इस प्रकार समझा है:—

The notion originated in a contrivance of the astronomers to show the quantity of the precession of the equinoxes. This was by assuming an imaginary line, or great circle passing through the poles of the ecliptic and the beginning of the fixed

Magha, which circle was supposed to cut some of the stars in the Great Bear × × × The seven stars in the Great Bear being called the Rishis, the circle so assumed was called the line of the Rishis, and being invariably fixed to the beginning of the lunar asterism Magha, the precession would be noted by stating the degree &c of any movable lunar mansion cut by that fixed line or circle as an index.

Historical View of the Hindu Astronomy P. 65.

इस प्रकार गणना करके बेन्ट्ली साहबने युधिष्ठिरको ईसवी सनके केवल ५७५ वर्ष पहले ला पटका है। अर्थात् उनकी रायमें युधिष्ठिर शाक्यसिंहसे कुछ ही पहले हुए हैं। अमेरिकाके विद्वान ह्विट्नी साहब कहते हैं कि हिन्दुओंके ज्योतिषकी गणना इतनी अशुद्ध है कि उससे किसी समयके निर्णय करनेकी चेष्टा करना वृथा है। चाहे जैसे हो, कुरुक्षेत्रके युद्धके समयका तो निर्णय हो सकता है। अच्छा अब वही करता हूं।

पहले तो पुराणकार ऋषिके अभिप्रायके अनुसार ही गणना करके देखा जाय। वह कहते हैं कि युधिष्ठिरके समय सप्तर्षि मघामें थे। नन्द महापद्मके समय पूर्व्वापाढ़में।

प्रयास्यन्ति यदाचैते पूर्व्वाषाढ़ां महर्षयः।
तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥४।२४।३६

श्रीमद्भागवतमें भी यही बात है—

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्व्वाषाढ़ां महर्षयः ।

तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ १२।२।३२

मघासे पूर्व्वाषाढ़ दशम नक्षत्र है। यथा मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनु-राधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़। इसलिये युधिष्ठिरसे नन्दका १०×१००=१००० वर्षका अन्तर है।

अच्छा अब दूसरा हिसाब लगाओ। यह सबकी समझमें आवेगा। विष्णुपुराणसे जो श्लोक उद्धृत किया है उसके पहलेका यह श्लोक है—

यावत् परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।

एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम् ॥ ४।२४।३२

नन्दका पूरा नाम नन्द महापद्म है। विष्णुपुराणके इसी चौथे अंशके २४ वें अध्यायमें ही है—

"महापद्मः तत्पुत्राश्च एकवर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति। नवैव तान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मौर्य्याश्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति।"

इसका अर्थ—महापद्म और उनके पुत्रगण सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। कौटिल्य (चाणक्य) नामका ब्राह्मण नन्दवंशियों-का नाश करेगा। उनके बाद मौर्य्यगण पृथ्वी भोग करेंगे। कौटिल्य चन्द्रगुप्तको राज्याभिषिक्त करेगा।

इसीसे युधिष्ठिरके १११५ वर्ष बाद चन्द्रगुप्त हुआ। चन्द्रगुप्त बड़ा प्रसिद्ध सम्राट् हुआ है। यही मकदूनियाके यवनराज सिकन्दर और सिल्युकसका समकालीन था। इसीने अपने बाहुबलसे यवनोंको भारतवर्षसे भगाया और प्रबल प्रतापी सिल्युकसको परास्त कर उसकी कन्यासे व्याह किया था। उस समय चन्द्रगुप्तका जैसा प्रताप था वैसा पृथ्वीपर और किसीका नहीं था। कहते हैं कि वह निर्भय होकर सिकन्दरके लश्करमें घुस गया था। सिकन्दरने सन् ३२५ ई० में भारतवर्षपर आक्रमण किया था।

चन्द्रगुप्तने सन् ३१५ ई०में राज्य पाया था। इसलिये ३१५में १११५ मिलानेसे युधिष्ठिरका समय निकलेगा। ३१५+१११५=१४३० इस हिसाबसे महाभारतका युद्ध ईसवी सनके १४३० वर्ष पहले हुआ।

और और पुराणोंमें भी यही बात है। पर मत्स्य और वायु पुराणमें १११५ की जगह ११५० लिखा है। इससे १४६५ वर्ष होते हैं।

कुरुक्षेत्रका युद्ध इसके बहुत पहले न होकर कुछ पीछे ही हुआ है। इसका एक अखण्डनीय प्रमाण मिलता है। सब प्रमाण खण्डन हो सकते हैं पर ज्योतिषका प्रमाण खण्डन नहीं हो सकता, "चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ"।

सब जानते हैं कि सालमें दो बार दिनरात समान होती हैं। छः छः महीने ऐसा होता है। इसे विषुव कहते हैं। सूर्य्य इन दोनों

दिन आकाशके जिन दो स्थानोंमें रहता है उनके नाम क्रान्तिपात या क्रान्तिपात विन्दु (Equinoctial point) हैं प्रत्येकके ठीक ६० अंश (डिग्री) के बाद अयन (Solistice) बदलता है। यहीं पहुंचकर सूर्य्य दक्षिणायनसे उत्तरायण और उत्तरायणसे दक्षिणायन होता है।

महाभारतमें लिखा है कि भीष्मकी इच्छामृत्यु हुई थी। उन्होंने शरशय्याशायी होकर कहा था कि मैं दक्षिणायनमें नहीं मरूंगा, इससे सद्गति नहीं होगी। वस शरशय्यापर शयनकर उत्तरायणकी प्रतीक्षा करने लगे। माघमें उत्तरायण होते ही उन्होंने प्राण त्याग किये। प्राणत्यागके पहले भीष्म कहते हैं

"माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।"

उस समय माघमें ही उत्तरायण हुआ था। बहुत लोग समझते हैं कि अब भी माघमें ही उत्तरायण होता है। क्योंकि माघके पहले दिनको उत्तरायण दिन और पूसके अन्तिम दिनको मकरसंक्रान्ति कहते हैं। पर अब वह नहीं होता है। जब अश्विनी नक्षत्रके पहले अंशमें क्रान्तिपात हुआ था तब अश्विनी प्रथम नक्षत्र माना गया था। उस समय आश्विनमें वर्षका आरम्भ होता था और माघके पहले दिन उत्तरायण भी होता था। उस प्रकारकी गणना अबतक होती चली आती है। फसली सन् अबभी पहले आश्विनसे शुरू होता है पर अब अश्विनी नक्षत्रमें क्रान्तिपात नहीं होता। और न पहले माघको पहलेकी तरह उत्तरायण ही होता है। अब पूसके सातवीं या आठवीं तारीख (२१ दिसम्बर) को उत्तरायण

होता है। इसका कारण यह है कि क्रान्तिपात विन्दुकी एक गति है। इसी गतिमें क्रान्तिपात होता है । इसलिये अयनके बदलनेका स्थान भी प्रति वर्ष पीछे हो जाता है। इसीका नाम Precession of the Equinoxes अर्थात् "अयनचलन" है। कितना पीछे हो जाता है इसका भी परिमाण है । यह पहले कहा जा चुका है कि यह परिमाण हिन्दूमतसे वर्षमें ५४ विकला है । पर इसमें तनिक-सी भूल है। ईसवी सनके १६२ वर्ष पहले ग्रीसके ज्योतिषी हिपार्कसने क्रान्तिपातसे १७४ अंशपर चित्रा नक्षत्र देखा था। मस्केलाईनने १८०२ ई० में चित्राको २०१ अंश ४ कला ४ विकला पर देखा था। इससे हिसाब लगाकर देखा जाता है कि क्रान्तिपातकी वार्षिक गति साढ़े पचास विकला है। फ्रान्सका प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् लेवेरीए (Leverrier) किसी और कारणसे ५०·२४ विकला और स्टाकवेल (Stockwell) ५०·४३८ विकला बताते हैं। यही हिसाब पहले हिसाबसे मिलता है। इसलिये इसे ही ग्रहण करना चाहिये।

भीष्मकी मृत्युके समयमें जो माघमें उत्तरायण हुआ था पर सौर माघके* किस दिन पर लिखा नहीं है। इस माघमें सदैव २८।२९ दिन होते हैं। इन दो महीनोंमें ५७ दिनोंसे अधिक नहीं होते। पर यह हो नहीं सकता कि उस समय माघके

---

* यह मैं सिद्ध कर सकता हूं कि उस समय भी सौर मास ही प्रचलित थे। छः ऋतुओंकी बात महाभारतमें है। बारह महीनेके विना छः ऋतुएं हो ही नहीं सकतीं।

अन्तिम दिनमें ही उत्तरायण हुआ था। अगर ऐसा होता तो "माघोऽयं समनुप्राप्तः" यह बात नहीं कही जाती। २८ माघको उत्तरायण होनेपर भी अबसे ४८ दिनका अन्तर पड़ता है। ४८ दिनोंमें सूर्य्यकी गति लगभग ४८ अंश हो सकती है। पर यह ठीक नहीं, क्योंकि सूर्य्यकी शीघ्र और मन्द दोनों गतियां हैं। ७ पूससे २६ माघतक बंगला पञ्चांगके अनुसार केवल ४४ अंश ४ कला गति होती है। यह ४४ अंश ४ कला मान लेनेसे ईसवी सन्से १२६३ वर्ष पहले होते हैं। ४८ अंश पूरे माननेसे १५३० होते हैं। इससे पहले कुरुक्षेत्रका युद्ध कभी नहीं हो सकता।

विष्णुपुराणके अनुसार ईसवी सन्के १४३० वर्ष पहले इसका होना सिद्ध होता है। और यही ठीक भी है। आशा है इन सब प्रमाणोंको देखकर अब कोई नहीं कहेगा कि महाभारतका युद्ध द्वापरके अन्तमें पांच हजार वर्ष पहले हुआ था। अगर ऐसा होता तो सौर चैत्रमें उत्तरायण होता। चान्द्र माघ कभी सौर चैत्रमें नहीं हो सकता।
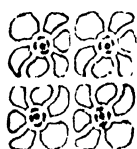
छठा परिच्छेद।

पाण्डवोंकी ऐतिहासिकता।

यूरपवालोंका मत।

महाभारतके युद्धके समयके बारेमें यूरपवालोंके साथ हमारा कोई ऐसा बड़ा मतभेद नहीं है जिससे कुछ हानि होती हो। कोलब्रुक साहबने हिसाब लगाया है कि ईसवी सन्के पहले चौदहवीं शताब्दीमें यह युद्ध हुआ था। विलसन साहबकी भी यही राय है। एलफिन्स्टन साहबने इसे माना है। विलफोर्ड कहते हैं कि ईसवी सन्के १३७० वर्ष पहले युद्ध हुआ है। बुकानन तेरहवीं शताब्दी बताते हैं। और प्रैट साहब बारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें होना लिखते हैं। इसके प्रतिवादकी कुछ जरूरत नहीं। यह मैं पहले कह चुका हूं कि यूरपवाले महाभारतको ईसवी सन्की चौथी या पांचवीं शताब्दीका बना बताते हैं और कहते हैं कि मूल महाभारतमें पाण्डवोंका कुछ उल्लेख नहीं था। पाण्डवोंकी कथाएं क्षेपक हैं, यह पीछेसे जोड़ी गयी हैं।

यदि यह दूसरी बात ठीक हो तो महाभारत कब बना था, इसका निर्णय करनेकी कुछ जरूरत नहीं रहती। फिर महाभारत चाहे जब बना हो उसमें कृष्ण सम्बन्धी जितनी बातें हैं वह सब ही मिथ्या हैं। क्योंकि, महाभारतमें श्रीकृष्णकी जो बातें

हैं वह पाण्डवोंसे विशेष सम्बन्ध रखती हैं। इसलिये पहले यह देखना उचित है कि इसमें सत्यका कुछ लेश है या नहीं।

पहले लासेन साहबको ही लीजिये क्योंकि यह जर्मनीके बड़े प्रतिष्ठित विद्वान हैं। यह कहते हैं कि महाभारत चाहे जब बना हो पर इसमें ऐतिहासिकता है। यह महाभारतके युद्धको कुरुपाञ्चालका युद्ध मानते हैं और पाण्डवोंको केवल कविकी कल्पना। वेबरने भी यही माना है। सर मोनियर विलियम्स, बाबू रमेशचन्द्र दत्त आदि इसी मतके अवलम्बी हैं। अब इनके मतका सारांश लिखता हूं।

कुरु नामका एक राजा था। पुराण, इतिहास देखनेसे मालूम होता है कि कुरुवंशवाले कुरु या कौरव कहलाते हैं। उनके अधिकारमें जो देश थे उनके अधिवासी भी इसी नामसे पुकारे जा सकते हैं। कुरु शब्दसे कौरवाधिकृत जनपदवासी समझे जाते हैं। पाञ्चाल दूसरे जनपदके वासी हैं। इसी अर्थमें पाञ्चाल शब्द महाभारतमें व्यवहृत हुआ है। यह दोनों जनपद एक दूसरेके निकट थे। उत्तर पश्चिममें जितने जनपद थे महाभारतके युद्धके पहले उनमें इन दोनोंकी ही प्रधानता थी। मालूम होता है, किसी समय यह दोनों मिलजुलकर रहते थे। क्योंकि कुरुपाञ्चाल पद वैदिक ग्रन्थोंमें पाया जाता है। पीछे दोनोंमें विरोध खड़ा हुआ। इसका परिणाम महाभारतका युद्ध है। इस युद्धमें कौरव पाञ्चालोंसे पराजित हुए थे।

यहांतक तो आपत्तिकी कुछ बात नहीं है। बल्कि इससे मेरी

पूरी सहानुभूति है। वास्तवमें कौरवोंके असल विपक्षी पाञ्चाल ही हैं। कौरवोंसे युद्ध करनेवाली सेनाका नाम महाभारतमें पाञ्चाल अथवा पाञ्चाल और सृञ्जय* लिखा है। पाञ्चालके राजकुमार धृष्टद्युम्न उस सेनाके अधिपति थे। पाञ्चालके राजपुत्र शिखण्डीने ही कौरवोंके प्रधान भीष्मका वध किया था। पाञ्चालके राजाके पुत्र धृष्टद्युम्नने कौरवाचार्य द्रोणके प्राण लिये। यदि यह युद्ध प्रधानतः धृतराष्ट्र-पुत्र और पाण्डु पुत्रोंमें होता तो यह कौरवपाण्डवोंका युद्ध नहीं कहलाता;क्योंकि पाण्डव भी तो कुरु ही हैं। यदि कौरवपाण्डवोंमें यह युद्ध होता तो इसका नाम धार्तराष्ट्र-पाण्डवोंका युद्ध पड़ता। भीष्म और कौरवाचार्य्य द्रोण तथा कृपका धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे जो सम्बन्ध था वही पाण्डावोंसे भी था। उनका स्नेह भी दोनोंपर समान ही था। यदि यह युद्ध धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवोंमें होता तो वह लोग दुर्योधनके साथ होकर पाण्डवोंका अनिष्ट कभी नहीं करते। क्योंकि वह लोग धर्म्मात्मा और न्यायपरायण थे। महाभारतमें लिखा है कि कुरु पाञ्चालका विरोध पाण्डवोंके बालिग होनेके पहलेसे ही चल रहा था। यह भी उसीमें लिखा है कि द्रोणाचार्य्यकी अध्यक्षतामें पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्रादि कौरवोंने मिलकर पाञ्चाल राज्यपर आक्रमण किया और वहांके राजाको पराजित कर नीचा दिखाया था।

यह मैं स्वीकार करता हूं कि महाभारतका युद्ध मुख्यकर कुरु

---

* सृञ्जय पाञ्चालदेशवासी और उनके भाईबन्द हैं।

और पाञ्चालमें ही हुआ था। पर यूरपके विद्वान् जिस सिद्धान्त-पर पहुंचे हैं वह मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं। वह लोग कहते हैं कि महाभारतका युद्ध कुरु और पाञ्चालमें हुआ है। पाण्डव न कभी हुए और न थे—यह कपोलकल्पित हैं। अपने इस सिद्धान्तका वह लोग हेतु भी बताते हैं। उन हेतुओंकी समालोचना पीछे करूंगा। अभी यही समझाना चाहता हूं कि कुरु पाञ्चालमें युद्ध हुआ था: बस इसी कारणसे पाण्डव नहीं थे यह कहना युक्तिसंगत नहीं है। पाञ्चालके राजा पाण्डवोंके ससुर थे। इसलिये धृतराष्ट्रके लड़कोंपर पाञ्चालराज्यके आक्रमण करनेसे पाण्डवों-का अपने ससुरकी ओरसे लड़नाही सम्भव है। पाण्डवोंका जीवनवृत्तान्त यह है—कौरवाधिपति विचित्रवीर्य्यके दो पुत्र थे—धृतराष्ट्र और पाण्डु *। धृतराष्ट्र बड़ा पर अन्धा था। अन्धे होनेके कारण वह राज्यका अधिकारी न हो सका। पाण्डु राजा हुआ। पीछे पाण्डु राज्यच्युत हो बनवासी हुआ। धृतराष्ट्रका राज्य फिर धृतराष्ट्रके हाथमें पहुंचा। इसके बाद पाण्डुके पुत्रोंने बालिग होकर राज्य लेनेकी इच्छा प्रकट की। बस धृतराष्ट्र और उसके लड़कोंने पाण्डवोंको निकाल बाहर किया। पाण्डव वन वन भटकते हुए पाञ्चाल पहुंचे। वहां पाञ्चालके राजाकी कन्यासे उनका विवाह हो गया। फिर उन्होंने प्रबल प्रतापी यादवोंके नेता श्रीकृष्ण तथा अपने ससुर और मामाके लड़केकी सहायतासे इन्द्रप्रस्थमें नया राज्य स्थापन किया। अन्तमें वह भी धार्त्तराष्ट्रोंके हाथमें चला गया।

* विदुर वैश्य था।

पाण्डव पुनः वनवासी हुए। अबके इन्होंने विराटके साथ मित्रता और सम्बन्ध किया। पीछे पाञ्चालोंने कौरवोंपर आक्रमण किया। पहली शत्रुताके प्रतिशोधके लिये यह आक्रमण था। पांण्डवोंको राज्य दिलानेके लिये भी था या नहीं, ठीक नहीं कहा जा सकता। जो हो, पाञ्चालाधिपति जब युद्धके लिये तैयार हो गये तब पांण्डवोंका उनकी ओरसे कौरवोंके साथ लड़ना ही सम्भव है।

कह चुका हूं कि यूरपके विद्वान् पांडवोंका अस्तित्व नहीं मानते हैं। वह लोग इसका कारण भी बताते हैं। एक तो यह कि उस समयके किसी ग्रन्थमें पाण्डवोंके नाम नहीं मिलते हैं। हिन्दू उत्तरमें कह सकते हैं कि यह महाभारत ही तो उस समयका ग्रन्थ है, अब और क्या चाहिये। उस समय तो इतिहास लिखनेकी चाल नहीं थी जो कई ग्रन्थोंमें उनके नाम मिलें। यूरपवाले कह सकते हैं कि शतपथ ब्राह्मण उनके थोड़े दिनों बादका ग्रंथ नहीं है। उसमें धृतराष्ट्र, परीक्षित और जन्मेजय आदिके नाम हैं, किन्तु पांडवोंके नाम नहीं हैं। बस, सिद्ध हो गया कि पांडव नहीं थे।

भारतके प्राचीन राजाओंके बारेमें ऐसा सिद्धान्त नहीं हो सकता। भारतके किसी ग्रन्थमें मकदूनियाके सिकन्दरका नाम तक नहीं है पर उसने भारतवर्षमें आकर जो लीला की थी वह कुरुक्षेत्रके युद्धके समान ही थी। इससे क्या यह सिद्धान्त निकालना होगा कि सिकन्दर नामका कोई आदमी कभी नहीं हुआ और ग्रीसके इतिहासवेत्ताओंने उसके सम्बन्धमें जो कुछ

लिखा है वह कविकी कल्पना मात्र है? भारतके किसी ग्रन्थमें महमूद गजनवीका नाम नहीं मिलता है तो क्या इससे यह समझना होगा कि महमूद मुसलमानोंकी कल्पना मात्र है? बंगालके साहित्यमें बख्तियार खिलजीका नाम भी नहीं है। तो क्या इसे भी कपोलकल्पित समझना होगा? अगर नहीं, तो महभारत क्यों अविश्वासके योग्य होगा?

वेबर साहब कहते हैं कि शतपथ ब्राह्मणमें अर्ज्जुन शब्द है, लेकिन वह इन्द्रके अर्थमें व्यवहृत हुआ है, किसी पाण्डवके अर्थमें नहीं। इसलिये पाण्डव-अर्ज्जुन मिथ्या कल्पना है। इसका प्रयोग इन्द्रके अर्थमें हुआ है। पर मेरी बुद्धिमें यह बात नहीं घुसती। इन्द्रके अर्थमें अर्ज्जुन शब्दका व्यवहार हुआ है इसलिये अर्ज्जुन नामका कोई मनुष्य कभी नहीं हुआ, यह सिद्धान्त समझमें नहीं आता है।

यह बात हंसीमें उड़ा दी जा सकती थी पर वेबर साहब संस्कृतके विद्वान् हैं और उन्होंने वेद छपवाये हैं! और हमलोग हिन्दुस्थानी हैं, तिसपर बज्र मूर्ख, भला उनकी बात हंसकर उड़ा देना क्या हमारे लिये धृष्टताका काम नहीं है? खैर, तोभी मैं जरा समझाता हूं। शतपथ ब्राह्मणमें अर्ज्जुन नाम है, और फाल्गुन नाम भी है। अर्जुन जैसे इन्द्र और मझले पाण्डव दोनोंका नाम है, वैसे ही फाल्गुन भी दोनोंका नाम है। इन्द्रका नाम फाल्गुन है क्योंकि इन्द्र फल्गुनी नक्षत्रके अधिष्ठातृदेवता (१) हैं; अर्जुनका नाम भी

---

(१) आजकलके ज्योतिषी यह नहीं कहते किन्तु शतपथ ब्राह्मणमें यह बात है। २ काण्ड, १ अध्याय, २ ब्राह्मण, ११

फाल्गुन है, क्योंकि उन्होंने फल्गुनी नक्षत्रमें जन्म लिया है। शायद इन्द्राधिष्ठित नक्षत्रमें जन्म लेनेके कारण हो वह इन्द्रपुत्र कहलाते हैं; इन्द्रके औरससे उनका जन्म हुआ है, यह बात कोई शिक्षित पाठक विश्वास नहीं करेगा। फिर अर्ज्जुन शब्दका अर्थ शुक्ल है। न मेघोंके देवता इन्द्र ही शुक्ल हैं, और न मेघ वर्ण अर्ज्जुन ही शुक्ल वर्ण हैं। दोनों ही निर्मल, कर्मवीर, शुद्ध और पवित्र हैं; इसलिये दोनों ही अर्ज्जुन हैं। इन्द्रका नाम अर्ज्जुन है, यह शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है "अर्ज्जुनो वै इन्द्रो यदस्य गुह्यम् नाम" अर्ज्जुन इन्द्रका गुह्य नाम है। इससे क्या यह नहीं मालूम होता कि अर्ज्जुन नामका दूसरा मनुष्य था और उसकी महिमा बढ़ानेके अभिप्रायसे इन्द्रके संग उसकी समानता कर कहा गया है कि अर्जुन इन्द्रका एक गुप्त नाम है? वेबर साहबने गुह्यका अर्थ Mystic कर लोगोंको मूर्ख बनाया है।

दिल्लगीकी और एक बात सुनिये। अर्ज्जुन एक वृक्षका भी नाम है। और उसका नाम फाल्गुन भी है। इसका फूल उजला होता है, इसलिये इसका नाम अर्ज्जुन है। यह फाल्गुनमें फूलता है, इसलिये इसका नाम फाल्गुन है। अब मैं विनय पूर्वक यह पूछता हूं कि इन्द्रका नाम अर्जुन तथा फाल्गुन है, इसलिये क्या यह समझना चाहिये कि अर्जुन वृक्ष न है और न कभी था? पाठक चाहे जो समझें पर मैं तो महामहोपाध्याय वेबर साहबकी जयजयकार ही करता हूं।

विलायती विद्वान् कहते हैं कि ललितविस्तरमें पाण्डवोंके

नाम अवश्य मिलते हैं, पर ये पाण्डव जङ्गली चोरोंके सिवा और कोई नहीं थे। हमलोगोंके विचारमें यह बात नहीं आती है कि पाण्डुके पांचों पुत्र पाण्डव कभी संसारमें नहीं थे। बंगला साहित्यकी एक आध पुस्तकमें जहां कहीं फिरङ्गी शब्द आया है उसका अर्थ होता है, यूरेशियन या यूरोपियन (अधगोरे या गोरे) Frank शब्द कहीं नहीं मिलता और न इस अर्थमें फिरंगी शब्द ही व्यवहृत हुआ है। इससे यदि मैं यह सिद्धान्त निकालूं कि Frank जाति कभी नहीं थी, तो मैं भी उसी भ्रममें पड़ जाऊंगा जिसमें यूरोपके विद्वान् और उनके शिष्य पड़ चुके हैं। (१)

---

(१) बौद्ध ग्रंथकारोंने पाण्डव नामकी पहाड़ी जातिका उल्लेख अपने ग्रंथोंमें किया है। वह उज्जयिनी और कोशल-वासियोंकी शत्रु थी। Weber's H. I. Literature 1878. P. 185) महाभारतके पाण्डव हस्तिनापुरवासी बताये गये हैं सही लेकिन इस ग्रंथमें एक जगह लिखा है कि वह लोग हिमालय पर्वतपर कुछ दिन रहे और वहीं पाले पोसे गये थे;

एवं पाण्डोःसुताः पञ्च देवदत्ता महाबलाः।
विवर्द्धमानास्ते तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ॥

आदि पर्व्व १२४-२७—२६

इस प्रकार पाण्डुके देवताओंके दिये पांच महाबली पुत्र पवित्र हिमालय पर्व्वतके ऊपर सयाने हुए।

प्लीनी और सलिनस नामके दो ग्रीक ग्रंथकारोंने भारतवर्षकी

लासेन साहबके मतकी समालोचना अभी बाकी है, वह कहते हैं कि कौरवपाण्डवका युद्ध ऐतिहासिक है। महाभारतमें बस इतनी ही ऐतिहासिकता है। किन्तु कौरव-पाण्डवोंपर उनका विश्वास नहीं है। उनका कहना है कि अर्ज्जुनादि सब रूपक-मात्र हैं। अर्ज्जुन शब्दका अर्थ श्वेत वर्ण है इसलिये जो आलोकमय है वही अर्ज्जुन है। अन्धकार कृष्ण है, कृष्णा भी वही है। पाण्डवोंकी अनुपस्थितिमें जिसने राज्य किया वही धृतराष्ट्र है। पांचों पाण्डव पाञ्चालदेशकी पांच जातियां हैं, और पाञ्चालीके संग उनका व्याह पांचो जातियोंका बस एकीकरण है। जो भद्र अर्थात् मंगल करनेवाली है वही सुभद्रा है। अर्ज्जुनकी यदुवंशियोंके साथ मित्रता ही सुभद्रा है इत्यादि इत्यादि।

पश्चिमोत्तर दिशाके वाह्लीक देशके उत्तरांशमें सोगडियेना देशके एक नगरका नाम पाण्डव लिखा है और सिन्धु नदीके मुहानेके पासकी जातिविशेषको भी पाण्डव बताया है। भूगोलवित् टोलेमीने वितस्ता नदीके निकट पांण्डय नामके मनुष्यविशेषका होना बताया है। कात्यायनके पाणिनिसूत्रके एक वार्त्तिकमें पाण्डु से पाण्डय शब्द बनाया है। (१) लक्ष्मीधरने अपनी षड्भाषाचन्द्रिकामें कैकेय वाह्लीकादि उत्तर दिशाके कई जनपदोंके साथ पाण्डय देशका भी नाम लिया है और उस देशसमूहको पिशाच अर्थात् असभ्य देशविशेष बताया है। "पाण्डयकेकयवाह्लीक + + + एते पैशाचदेशाःस्युः।"

हरिवंशमें दक्षिण दिशाके चोल केरलादिके साथ पाण्डय देशका

मैं स्वीकार करता हूं कि हिन्दुओंके वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण, काव्य आदि सबमें रूपककी अधिकता है। रूपक बहुत हैं। मुझे इस ग्रंथमें बहुतेरे रूपकोंकी चर्चा चलानी पड़ेगी। किन्तु मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि हिन्दू शास्त्रोंमें रूपक ही रूपक है—रूपकके सिवा उनमें कुछ नहीं है।

मैं यह भी जानता हूं कि संस्कृत साहित्य या शास्त्रोंमें रूपक हो चाहे नहीं पर उन्हें रूपक बनाकर उड़ा देना बहुत आदमी पसन्द करते हैं। रामके नाममें रम् धातु और सीताके नाममें सी धातु है, इसलिये रामायण कृषिकार्य्यका रूपक है। जर्म्मनीके विद्वान् इसी तरह दो चार धातुओंका सहारा लेकर ऋग्वेदके सब सूक्तों-को सूर्य्य और मेघोंका रूपक बताते हैं। मालूम होता है कि चेष्टा करनेसे संसारमें जो कुछ है वह रूपक बनाकर उड़ा दिया जा सकता है। मुझे याद है कि मैंने एक बार दिल्लगीमें नवद्वीपके विख्यात राजा कृष्णचन्द्रको रूपक बना गायब कर दिया था।

नाम हैं। (हरिवंश ३२ अध्याय १२४ श्लोक) इसलिये यह दक्षिणापथके अन्तर्गत पांड्य देश है। श्रीमान् विलसन साहब समझते हैं कि यह जाति पहले सोगडियेना देशमें रहती थी। वहांसे धीरे धीरे भारतवर्षमें चली आयी और फिर तमाम फैल गयी। पीछे हस्तिनापुर पहुंची और अन्तमें दक्षिणापथ जाकर उसने पांड्य राज्यकी स्थापना की। Asiatic Researches Vol. XV. P. P. 95 and 96.

(१) पाण्डोर्ड्यण् वक्तव्यः।—वार्त्तिक।

आपलोग कह सकते हैं कि वह अभी उस दिन हुए हैं, उनकी राजधानी, राजपुरी, राजवंश सब कुछ विद्यमान हैं। इतिहासमें भी उनका नाम है, वह भला कैसे गायब किये जा सकते हैं? इसका उत्तर यह हो सकता है कि कृष्णका अर्थ अन्धकार—तम है। कृष्णनगरमें अर्थात् अन्धकारपूर्ण स्थानमें उसकी राजधानी है, उसके छः लडके हैं अर्थात् तमोगुणसे छः शत्रुओंकी उत्पत्ति हुई है। एक रोज एक बालकने पलासीके युद्धका यह रूपक बनाया था—पलभर (क्षणभर) उद्भासित (निकली हुई) है जो असि (तलवार) वह क्लीवगुणयुक्त (नपुंसक) क्लैव (Clive) द्वारा चलायी जानेसे सुराजा अर्थात् जो उत्तम राजा (सिराजुद्दौला) था वह पराजित हुआ। रूपककी कमी नहीं है। और इस बालकके रूपकमें और लासेन साहबके रूपकमें कुछ विशेष अन्तर मालूम नहीं होता है। मैं चाहूं तो लस् धातुसे स्वयं लासेन साहबके नामकी व्युत्पत्ति कर उनकी ऐतिहासिक गवेषणाको खेल सिद्ध कर सकता हूं।

राजतरंगिणीके मतसे काश्मीर राज्यका पहला राजा कुरु-वंशका था। इसलिये काश्मीरसे पाण्डवोंका हस्तिनापुर आकर उपनिवेश बनाना सम्भव है। वह लोग मध्यदेशवासी होकर किस तरह पाण्डव कहलाये क्या यही समझानेके लिये पाण्डुके पुत्र पाण्डवकी बात चलायी गयी? उनके जन्मके सम्बन्धकी गोलमटोल बातें भी प्रसिद्ध ही हैं। लोगोंको उनपर सन्देह हुआ था इसका भी पता लगता है। "यदा चिरमृतः पाण्डुः

भारतवर्षके इतिहासके लेखक टलबोयज ह्वीलर (Talboys Wheeler) साहबका भी एक सिद्धान्त है। बड़े बड़े बहे जांय गदही कहे कितना पानी। जब वेबरका ही ठिकाना नहीं तब ह्वीलर बेचारेको कौन पूछता है? आप फर्माते हैं कि हां कुछ ऐतिहासिकता है सही पर वह स्वल्प मात्र है—

"The adventures of the Pandavas in the Jungle, and their encounters with Asuras and Rakshasas are all palpable fictions, still they are valuable as traces which have been left in the minds of the people of the primitive wars of the Aryans against the Aborigines."

ह्वीलर साहब न संस्कृत जानते और न उन्होंने कभी महाभारत ही पढ़ा है। उनके अवलम्ब बाबू अविनाशचन्द्र घोष नामके कोई सज्जन हैं। साहबने अविनाश बाबूसे महाभारतका उल्था करनेके लिये अनुरोध किया। अविनाश बाबू मसखरे थे इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने काशीदासके महाभारतका कितना

कथं तस्येति चापरे।" (आदिपर्व्व ।१।१२७।) इधर उधर लोग बोलने लगे पांडुको मरे बहुत दिन हो गये अब ये उनके लड़के कैसे हो सकते हैं?

अक्षयकुमार दत्त प्रणीत भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय, द्वितीय भाग, उपक्रमणिका पृष्ठ १०५, (अक्षय बाबू यूरोपवालोंके मतावलम्बी हैं।)

उलथा किया मैं कह नहीं सकता लेकिन ह्वीलर साहबने चन्द्रहास और विषयाके उपाख्यानोंको मूल महाभारतका अंश बताया है। ऐसे लेखकोंके मतका प्रतिवाद करना पाठकोंका समय वृथा नष्ट करना है। सारांश यह कि महाभारतका जो अंश मौलिक है उसकी बातोंको और उसमें लिखे हुये पांण्डवादिके नामोंको जो कल्पित समझते हैं उन्होंने इसके लिये कोई उपयुक्त कारण अबतक नहीं बताये हैं। जो कुछ बताये हैं वह किसी कामके नहीं। सब आदमियोंके मतोंका प्रतिवाद करनेके लिये इस पुस्तकमें स्थान नहीं है। मैं मानता हूं कि महाभारतमें बहुत क्षेपक हैं, पर पाण्डवादिके सम्बन्धकी सब बातें प्रक्षिप्त नहीं हैं। इन्हें प्रक्षिप्त समझनेका कोई कारण भी नहीं है। इनके ऐतिहासिक होनेके जो कारण कहे हैं वह यदि यथेष्ट न हों तो अगले परिच्छेदमें और भी कुछ कहूंगा।

सातवां परिच्छेद

पाण्डवोंकी ऐतिहासिकता ।

पाणिनिने सूत्र बनाया है—

महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरव-प्रवृद्धेषु ६ ।२।३८ अर्थात् व्रीहि इत्यादि शब्दोंके पूर्व्व महत् शब्दयुक्त होता है । इन शब्दोंमें एक शब्द भारत भी है । इससे पाणिनिमें महाभारत शब्दका होना सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथके सिवा और किसी वस्तुका नाम महाभारत था इसका प्रमाण कुछ नहीं है। वेवर साहब कहते हैं कि यहां महाभारतका अर्थ भरतवंश है । यह उनकी केवल धींगाधींगी है । ऐसा प्रयोग कहीं नहीं है ।

पाणिनिका सूत्र है

"गवियुधिभ्यां स्थिरः" ८ । ३ । ९५

गवि युधि शब्दके परे स्थिर शब्दके स की जगह ष होता है । जैसे गविष्ठिरः, युधिष्ठिरः ।

फिर—"बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु" २ । ४ । ६६

भरत गोत्रका उदाहरण "युधिष्ठिराः" (१) है । फिर सूत्र है—

"सिन्धुतक्षशिलादिभ्यो..." —

"तिकासनन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च" ४ । १ । १७६

इसमें "कुन्ती" मिली ।

फिर—

---

(१) यह उदाहरण सिद्धान्तकौमुदीका है ।

"वासुदेवार्ज्जुनाभ्यां वुन्" ४।३।९८

अर्थात् वासुदेव और अर्जुन शब्दोंके परे षष्ठी अर्थमें वुन् होता है।

पुनश्च --

"नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या" ६।३।७५

इसमें "नकुल"का भी पता लग गया।

"द्रोणपर्व्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्।" ४ । १ । १०३

इसमें "द्रौणायन" शब्द मिल गया। द्रौणायन शब्दसे अश्वत्थामाके सिवा और किसीका बोध नहीं होता है। इसी प्रकार पांचों पांडवोंके नाम और कुन्ती, द्रोण, अश्वत्थामा आदिके नाम पाणिनि सूत्रमें पाये जाते हैं।

महाभारत ग्रंथका नाम और उसके नायकोंके नाम पाणिनिमें मिल गये तब सिद्ध होता है कि उस समय भी महाभारत पांडवोंका इतिहास था। अब पाणिनि कब हुए यह देखना है।

भारतद्वेषी वेबर साहबने पाणिनिको आधुनिक सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। पर यहां उनकी कुछ चली नहीं। स्वयं गोल्डस्टूकर साहबने पाणिनिके अभ्युदयका समय निर्णीत किया है। उन्होंने जो कुछ कहा है वह यहां लिखनेके लिये स्थान नहीं है; लेकिन बाबू रजनीकान्त गुप्तने उनके ग्रंथका सारांश बंगलामें संग्रह किया है, इसलिये यहां उनके लिखे विना भी काम चल जायगा। जो बंगला पुस्तक पढ़नेसे घृणा करते हैं

वह गोल्डस्टूकर साहबका अङ्गरेजी ग्रंथ पढ़ लें। उनके विचारमें पाणिनि बहुत प्राचीन हैं। इससे वेबर साहब बहुत दुःखी हुए हैं। उन्होंने गोल्डस्टूकर साहबका प्रतिवाद भी किया है और लज्जा परित्याग कर अपनी जयपताका उड़ायी है। पर और कोई कुछ नहीं कहता।

गोल्डस्टूकर साहबने सिद्ध कर दिया है कि पाणिनिके सूत्र जिस समय बने उस समय बुद्धदेवका (१) आविर्भाव नहीं हुआ था। इससे पाणिनि अन्ततः ईसवी सन्के छः सौ वर्ष पहले हुए। केवल यही नहीं, उस समय ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् प्रभृति वेदांश भी प्रणीत नहीं हुए थे। ऋक्, यजु, साम संहिताको छोड़ और कुछ नहीं बना था। आश्वलायन, सांख्यायन, प्रभृतिका भी अभ्युदय नहीं हुआ था। मोक्षमूलर कहते हैं कि ब्राह्मणके प्रणयनका समय ईसवी सन्के हजार वर्ष पहले आरम्भ हुआ है। डाक्तर मार्टीनहौग कहते हैं नहीं, उसी समय अन्त हुआ है; आरम्भ ईसवी सन्के चौदह सौ वर्ष पहले हुआ था। इस हेतु पाणिनिका समय ईसवी सन्के एक हजार या ग्यारह सौ वर्षसे पहले कहा जाय तो अधिक नहीं है।

मोक्षमूलर, वेबर प्रभृति बहुतसे आदमी गोल्डस्टूकर साहबके मतके खण्डन करनेमें लगे हैं पर वह किसी प्रकार खण्डित नहीं होता है। अतएव आचार्य्यका यह मत ग्रहण किया जा

(१) महाभारतमें बौद्ध शब्द पाया जाता है, किन्तु इसका प्रक्षिप्त होना अनायास सिद्ध किया जा सकता है।

सकता है। हां यह निश्चय है कि ईसवी सन्के हजारों वर्ष पहले युधिष्ठिरादिके वृत्तान्तका महाभारत प्रचलित था। इतना प्रचलित था कि पाणिनिको महाभारत और युधिष्ठिरादिकी व्युत्पत्ति लिखनी पड़ी। और यह भी सम्भव है कि उनके बहुत पहले महाभारतका प्रचार था, क्योंकि "वासुदेवार्ज्जुनाभ्यां वुन्" इस सूत्रसे "वासुदेवक" और "अर्जुनक" शब्द बनते हैं जिनका अर्थ वासुदेवका उपासक और अर्जुनका उपासक है। इससे सिद्ध होता है कि पाणिनि सूत्रके पहले ही कृष्णार्जुन देवता माने जाते थे। महाभारत युद्धके कुछ ही दिन पीछे मूल महाभारतके बनाये जानेकी जो प्रसिद्धि है उसके दूर करनेका कोई कारण दिखायी नहीं देता है।

अब यहां यह भी कह देना उचित है कि केवल पाणिनिके सूत्रोंमें ही नहीं, आश्वलायन और सांख्यायनके गृह्यसूत्रोंमें भी महाभारतका प्रसंग है। इसलिये महाभारतकी प्राचीनताके सम्बन्धमें खींचपड़ करनेका अधिकार किसीको नहीं है।
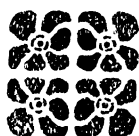
आठवां परिच्छेद ।

कृष्णकी ऐतिहासिकता ।

पाणिनिके सूत्रोंमें कृष्णका नाम हो वा न हो, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। ऋग्वेद संहितामें कृष्णका (१) नाम अनेक वार आया है। प्रथम मंडलके ११६ वें सूक्तकी २३ वीं ऋचामें और ११७ वें सूक्तकी ७ वीं ऋचामें एक कृष्णका नाम है। यह कौन कृष्ण है इसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। सम्भव है यह वसुदेवनन्दन नहीं है। ऋग्वेद संहिताके सूक्तोंका ऋषि भी एक कृष्ण है। इसकी वात पीछे कहूंगा। अथर्व संहि-

(१) पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें कृष्ण शब्द ढूंढ़नेपर भी नहीं मिला। पर कृष्ण शब्द पाणिनिके पहले प्रचलित था इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि ऋग्वेद संहितामें कृष्ण शब्द वारंवार मिलता है। कृष्ण नामके वैदिक ऋषिकी कथा पीछे कहूंगा। इसके सिवा अष्टम मण्डलके ९६ सूक्तमें कृष्ण नामक एक अनार्य्य राजाकी कथा मिलती है। यह अनार्य्य कृष्ण अंशुमती नदीके किनारे रहता था। इसलिये यह निश्चित है कि यह वासुदेव कृष्ण नहीं है। पाठक इससे समझ सकते हैं कि पाणिनिके किसी सूत्रमें कृष्ण शब्द रहनेसे वासुदेव कृष्णकी ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं हो सकती। हां, उसमें यदि "वासुदेव" नाम मिल जाय तो सिद्ध हो सकती है और वह उसमें है।

तामें कृष्णकेशी नामक असुरके मारनेवाले कृष्णकी कथा है। वह वसुदेवनन्दन हैं इसमें सन्देह नहीं। केशी वधकी कथा पीछे लिखूंगा।

पाणिनिके सूत्रमें वासुदेव नाम है, वह सूत्र उद्धृत भी कर दिया है। श्रीकृष्णका वासुदेव नाम महाभारतमें प्रायः आया है। कुछ वसुदेवके पुत्र होनेसे ही कृष्णका नाम वासुदेव नहीं हुआ। वसुदेवके पुत्र न होनेपर भी वासुदेव नाम होता है इसी महाभारतमें ही पुंड्राधिपतिका नाम वासुदेव लिखा है। वसुदेवको आप चाहें तो कल्पित कह सकते हैं, पर वासुदेवको नहीं।

यूरपवालोंकी राय है कि कृष्ण महाभारतमें कभी थे ही नहीं, वह उसमें पीछे लाकर बिठाये गये हैं। इसके लिये वह लोग जो कारण बताते हैं वह नितान्त दुर्बल है। उनका कहना है कि कृष्णको महाभारतसे अलग कर देनेपर महाभारतकी कुछ हानि नहीं होती है। ठीक है, नहीं होती है। गत फ्रांस-प्रशियाके युद्धसे मोल्टके (Moltke) को अलग कर देनेस भी कोई हानि नहीं है। ग्रावेलट, (Gravelotte) वर्थ, (Woerth) मेज, (Metz) सीडन, (Sedan) पेरिस (Paris) आदिकी विजय ज्योंकी त्यों बनी रहेगी, क्योंकि मोल्टकेने यह सब लड़ाइयां हथियार लेकर नहीं जीती हैं। उन्होंने तार और चिट्ठियोंसे अपना सेनापतित्व निबाहा था। जैसे मोल्टकेको अलग करनेमें कुछ हानि नहीं है उसी तरह महाभारतसे कृष्णको भी अलग कर देनेमें कोई हानि

नहीं है। कृष्णको अलग कर देनेसे कुछ हानि है या नहीं यह इस ग्रंथके पढ़नेसे ही पाठकोंको मालूम हो जायगा।

ह्वीलर साहबसे भी इस विषयमें कुछ कहे बिना नहीं रहा गया। उनकी राय कैसी होती है और वह कैसे विद्वान् हैं, यह पहले बताया जा चुका है। उनकी बातका जवाब देना मैं जरूरी नहीं समझता हूं। पर कुछ लोग उनकी राय भी मानते हैं, इसलिये कुछ कहना पड़ता है। ह्वीलर साहब फरमाते हैं कि द्वारका हस्तिनापुरसे सात सौ कोस दूर है। बस इसीसे कृष्णके संग पाण्डवोंका जो घनिष्ठ सम्बन्ध महाभारतमें लिखा है वह असम्भव है। क्यों असम्भव है यह समझमें नहीं आया, इसी वास्ते इसका उत्तर भी नहीं दे सका। जिन्होंने बंगालके नवाबों और दिल्लीके मुगल पठान बादशाहोंके घनिष्ठ सम्बन्धका हाल सुना है वह जरूर ही ह्वीलर साहबकी बात न मानेंगे।

प्रसिद्ध फरासीसी विद्वान् बोरनफ (Bournouf) कहता है कि बौद्धशास्त्रमें कृष्णका नाम न मिलनेसे समझना होगा कि बौद्धशास्त्रके प्रचार होनेके बाद कृष्णकी उपासना आरम्भ हुई। पर बौद्धशास्त्रके ललितविस्तर ग्रंथमें कृष्ण नाम है। बौद्धशास्त्रमें सूत्रपिटक सबसे पुराना ग्रंथ है, उसमें कृष्णका नाम है। इस ग्रंथमें कृष्णको असुर लिखा है। नास्तिक और हिन्दू धर्म्मके विरोधी बौद्धोंने कृष्णको जो असुर लिखा तो कुछ आश्चर्य नहीं। वेदोंमें इन्द्रादि देवता भी कहीं कहीं असुर लिखे गये हैं। धर्मका प्रधान शत्रु जो प्रवृत्ति है उसका नाम बौद्धोंने "मार" रखा है।

इसमें सन्देह नहीं कि कृष्णका प्रचार किया हुआ अपूर्व्व निष्काम धर्म्म, उनका सनातनधर्मका अपूर्व संस्कार तथा स्वयं कृष्णकी उपासना बौद्धधर्मके प्रचारमें प्रधान बाधा थी। इसीसे बौद्धोंने कृष्णको ही "मार" प्रतिपन्न करनेकी प्रायः चेष्टा की है।

इन बातोंको अब यहीं रहने दीजिये। छान्दोग्योपनिषद्की बात सुनिये, उसमें लिखा है—

"अथैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्राय उक्त्वा उवाच। अपिपास एव स बभूव। सोऽन्त वेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येत अक्षितमसि, अच्युतमसि प्राणसंशितमसीति।"

अर्थात् अङ्गिरस वंशके घोर (ऋषि) ने देवकी-पुत्रको यह बात कहकर कहा (सुनकर वह भी पिपासाशून्य हुए) कि अन्त-कालमें यही तीन बातें अवलम्बन करना "तुम अक्षित हो, तुम अच्युत हो, तुम प्राणसंशित हो।"

इसी घोर ऋषिके पुत्र कण्व (१) थे। घोरपुत्र कण्व ऋग्वेदके प्रथम मंडलके ३६ सूक्तसे ४३ सूक्ततकके ऋषि हैं; और कण्वके पुत्र मेधातिथि इस मंडलके १२ से २३ सूक्तके ऋषि हैं। कण्वके दूसरे पुत्र प्रष्कण्व इसी मंडलके ४४ से ५० सूक्त तकके ऋषि हैं। निरूक्तकार यास्क कहते हैं "यस्य वाक्यं स ऋषिः" ऋषिगण सूक्तके प्रणेता हों या न हों वक्ता अवश्य हैं। इसलिये घोरके पुत्र और पौत्र ऋग्वेदके कई सूक्तोंके वक्ता हुए। अगर यही बात हो

(१) यह शकुन्तलाके पालनेवाले कण्व नहीं हैं, वह कण्व काश्यप थे। घोरपुत्र कण्व आङ्गिरस थे।

तो घोरके शिष्य कृष्ण उनके समसामयिक थे इसमें सन्देह नहीं। पहले वेदोंके सूक्त बने, पीछे वेद विभाग हुआ। इस सिद्धान्तका खण्डन किसी तरह नहीं होता। अतः कृष्ण वेद विभागकर्त्ता वेदव्यासके समकालीन थे। यह केवल उपन्यासकी बात नहीं है, इसमें किसी प्रकारकी शङ्का ही नहीं की जा सकती।

ऋग्वेद संहिताके आठवें मण्डलके ८५।८६।८७ वें सूक्तके और दसवें मण्डलके ४२।४३।४४ वें सूक्तके ऋषि कृष्ण हैं। यह कृष्ण देवकीनन्दन कृष्ण हैं या नहीं यह निर्णय करना दुरूह है। परन्तु केवल क्षत्रिय होनेके कारण ही वह सूक्तोंके ऋषि नहीं हैं यह नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि एसदस्यु, त्र्यरुण, पुरुमीढ़, अजमीढ़, सिन्धुद्वीप, सुदास, मान्धाता, सिवि, प्रतर्दन, कक्षीवान, प्रभृति राजर्षि क्षत्रिय होनेपर भी ऋग्वेदके सूक्तोंके ऋषि हैं। दो एक जगह शूद्र ऋषिका भी उल्लेख मिलता है। कवष नामके दसवें मण्डलमें एक शूद्र ऋषि है। इससे क्षत्रिय होनेके कारण कृष्णके ऋषि होनेमें कुछ आपत्ति नहीं हो सकती है। हां, एक बात अवश्य है कि ऋग्वेद संहिताकी अनुक्रमणिकामें शौनक कृष्ण अंगिरस ऋषिके नामसे परिचित हुए हैं।

वेदोंका शेष भाग उपनिषद् है। इसीसे उपनिषदोंका नाम वेदान्त है। वेदके जिस अंशको ब्राह्मण कहते हैं वह उपनिषदोंसे पुराना मालूम होता है। इसलिये छान्दोग्योपनिषद्से कौषीतकी ब्राह्मण और भी प्राचीन जान पड़ता है। उसमें भी आंगिरस घोरका नाम है और कृष्णका भी नाम है। वहां कृष्ण

देवकीपुत्र नहीं कहे गये हैं, आंगिरस कहे गये हैं। कई क्षत्रिय भी आंगिरस कहलाते थे। विष्णुपुराणसे एक प्राचीन श्लोक उद्धृत कर यह बात पुष्ट करता हूं—

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥ ४ अंश, २।२

पर यह रथीतर राजा सूर्यवंशीय था। कृष्णके पूर्व पुरुष ययातिके पुत्र यदु थे। इससे यह चन्द्रवंशीय ठहरे। सब इतिहास और पुराणोंमें यही बात लिखी है, पर हरिवंशके विष्णु-पर्व्वमें लिखा है कि मथुराके यादव ईक्ष्वाकुवंशीय थे।

एवं इक्ष्वाकुवंशाद्धि यदुवंशो विनिःसृतः। ९५ अध्याय ५३६ श्लोक

यह बात बहुत सम्भव है, क्योंकि रामायणमें लिखा है कि इक्ष्वाकुवंशीय रामके कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्नने मथुराको जीता था।

जो हो, "वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्" यह सूत्र मैंने पाणिनिसे लिया है। इससे सिद्ध होता है, कृष्ण इतने प्राचीन समयके हैं कि पाणिनिके समयमें उनकी उपासना होती थी। बस, यही बहुत है।
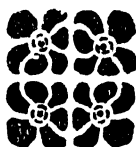
नवां परिच्छेद

महाभारतमें क्षेपक।

अबतक मैंने जो कुछ कहा है उसका सार यही है कि महाभारतमें ऐतिहासिकता है तथा उसमें कृष्ण और पाण्डवोंके सम्बन्धकी ऐतिहासिक बातें मिलती हैं। अब यह प्रश्न हो सकता है कि महाभारतमें कृष्ण और पाण्डवोंके सम्बन्धमें जो बातें मिलती हैं वह क्या सब ही ऐतिहासिक हैं ?

महाभारतकी ऐतिहासिकता या महाभारतमें कही हुई कृष्ण और पाण्डव सम्बन्धी कथाओंकी ऐतिहासिकताके विरुद्ध युरुपवालोंने जो कुछ कहा है, उसका तात्पर्य यही है कि प्राचीन समयमें जो महाभारत था वह अब नहीं है। इसका मतलब अगर यह हो कि उस पुराने महाभारतसे इस प्रचलित महाभारतका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है तो मैं इसे ठीक नहीं मानता और इसीसे इसका मैंने इतना खण्डन किया है। अगर यह मतलब हो कि प्राचीन महाभारतमें बहुत क्षेपक मिल गया है इतना कि उसमें असली महाभारत डूब गया है, तो इससे मेरा कुछ मतभेद नहीं है।

यह मैं बारंबार कह चुका हूं कि आजकल जो महाभारत प्रचलित है उसमें क्षेपक कथा इतनी भर गयी है कि असली महाभारतका कहीं पता भी नहीं लगता है। परन्तु इसमें यदि

कुछ ऐतिहासिकता है तो वह असली महाभारतकी हो है। अब पहले यही विचार करना है कि वर्त्तमान महाभारतमें असली महाभारतका कितना अंश है। महाभारतमें कृष्णकी जो कुछ कथाएं मिलती हैं उनका ही ऐतिहासिक मूल्य कुछ हो सकता है। जो कथाएं महाभारतमें नहीं हैं, और ग्रंथोंमें हैं, उनका ऐतिहासिक मूल्य उतना अधिक नहीं है, क्योंकि महाभारत सबसे पुराना ग्रंथ है।

प्राचीन सम्प्रदायके कुछ लोग पूछ बैठेंगे कि महाभारतमें प्रक्षिप्त है इसका क्या प्रमाण है? इस परिच्छेदमें मैं इसीके कुछ प्रमाण दूंगा।

आदिपर्व्वके द्वितीय अध्यायका नाम पर्व्वसंग्रहाध्याय है। महाभारतमें जिन जिन विषयोंका वर्णन है उनका पर्व्वसंग्रहाध्यायमें उल्लेख है। यह आजकलके सूचीपत्र (Table of contents) के समान है। इस संग्रहाध्यायमें छोटेसे छोटे विषयका भी नाम है। अब जिस बड़े विषयका भी नाम इस संग्रहाध्यायमें न हो उसे अवश्य ही क्षेपक समझना होगा। इसका एक उदाहरण ले लीजिये। आश्वमेधिक पर्व्वमें अनुगीता और ब्राह्मणगीताके पर्व्वाध्याय मिलते हैं। यह दोनों छोटे विषय नहीं हैं इनमें छत्तीस अध्याय हैं। पर पर्व्वसंग्रहाध्यायमें इन दोनोंका कुछ भी जिक्र नहीं है। इसलिये अनुगीता और ब्राह्मणगीताको क्षेपक समझना होगा।

दूसरा प्रमाण यह है कि अनुक्रमणिकाध्यायमें लिखा है कि

महाभारतमें एक लाख श्लोक हैं और किस पर्व्वमें कितने श्लोक हैं यह पर्व्वसंग्रहाध्यायमें लिखा है—यथा

आदि ८८८४	सौप्तिक ८७०
सभा २५११	स्त्री ७७५
वन ११६६४	शान्ति १४७३२
विराट २०५०	अनुशासन ८०००
उद्योग ६६९८	आश्वमेधिक ३३२०
भीष्म ५८८४	आश्रमवासिक १५०६
द्रोण ८९०९	मौसल ३२०
कर्ण ४९६४	महाप्रस्थानिक ३२०
शल्य ३३२०	स्वर्गारोहण २०९
	८४८३६

इतनेसे एक लाख श्लोक नहीं होते, कुल ८४८३६ होते हैं। एक लाख पूरा करनेके लिये पर्व्वाध्याय संग्रहकारने लिखा है—

"अष्टादशैवमुक्तानि पर्व्वाण्येतान्यशेषतः।
खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यश्च प्रकीर्त्तितम्॥
दशश्लोकसहस्राणि विंशश्लोकशतानि च।
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा॥"

अर्थात् "इस प्रकार अठारह पर्व्व विस्तारपूर्व्वक कहे गये हैं। इसके बाद हरिवंश और भविष्यपूर्व्व कहे गये हैं। महर्षिने हरिवंशमें बारह हजार श्लोक रचे हैं।" पर्व्वसंग्रहाध्यायमें इसके सिवा हरिवंशकी और कुछ चर्चा नहीं है। इससे ९६८३६ श्लोक हुए।

प्रचलित महाभारतकी श्लोक संख्या आजकल इस प्रकार है—

आदि ८४७९	स्त्री ८२७॥
सभा २७०९	शान्ति १३९४३
वन १७४७८	अनुशासन ७७९६
विराट २३७६	आश्वमेधिक २९००
उद्योग ७६५६॥	आश्रमवासिक ११०५
भीष्म ५८५६	मौसल २९२
द्रोण ९६४९	महाप्रस्थानिक १०९
कर्ण ५०४६	स्वर्गारोहण ३१२
शल्य ३६७१	खिल हरिवंश १६३७४
सौप्तिक ८११	

इनका जोड़ १०७३९० हुआ। इससे जान पड़ता है कि पहले महाभारतमें एक लाख श्लोक नहीं थे। पर्व्वसंग्रहके बाद हरीवंश सहित सब मिलाकर प्रायः ग्यारह हजार श्लोक बढ़े हैं अर्थात् ऊपरसे मिलाये गये हैं।

अब तीसरा प्रमाण लीजिये। श्लोकोंके घटने बढ़नेका प्रमाण अनुक्रमणिकाध्यायसे मिल सकता है। उसके १०२रे श्लोकमें लिखा है कि व्यासदेवने डेढ़ सौ श्लोककी अनुक्रमणिका बनायी।

"ततोऽध्यर्द्धं शतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः।
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां स पर्व्वणाम्।"

पर वर्त्तमान महाभारतके अनुक्रमणिकाध्यायमें २७२

श्लोक मिलते हैं। इस हेतु पर्व्वसंग्रहाध्याय लिखे जानेके पश्चात् इस अनुक्रमणिकामें ही ११२ श्लोक बढ़ गये।

अब चौथा प्रमाण सुनिये। पर्वसंग्रहाध्यायमें ८४८३६ श्लोक हैं। पर यह अनायास ही समझाया जा सकता है कि पहले महाभारतके बनानेवालेने यह पर्व्वसंग्रहाध्याय नहीं बनाया है और न महाभारत बननेके समय ही यह बना है। महाभारतमें ही लिखा है कि वैशम्पायनने जनमेजयको महाभारत सुनाया और उग्रश्रवाने नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंको सुनाया। पर्व्वाध्याय संग्रहकारने इस संग्रहको उग्रश्रवाकी ही उक्ति बतायी है, वैशम्पायनकी नहीं। इसलिये यह असली या वैशम्पायनरचित महाभारतका अंश नहीं है। अनुक्रमणिकाध्यायमें ही लिखा है कि कोई तो प्रथमतक, कोई आस्तिक पर्व्वतक, कोई उरिचर राजाके उपाख्यानतक महाभारतका आरम्भ बताता है। इसलिये जब उग्रश्रवा ऋषियोंको महाभारत सुनाते थे तब हो पर्व्वसंग्रहाध्यायकी कौन कहे प्रथम ६२ अध्याय भी (१) क्षेपक समझे जाते थे। यह पर्व्वसंग्रहाध्याय पढ़नेसे ही मालूम हो जाता है कि क्षेपककी भरमार होती जाती थी और उसे रोकनेके लिये ही किसीने अनुक्रमणिकाध्यायके बाद पर्व्वसंग्रहाध्याय जोड़ दिया है। इससे अनुमान होता है कि पर्व्वसंग्रहाध्याय बननेके पहले भी बहुतसा क्षेपक मिल चुका था।

---

(१) अवश्य ही अनुक्रमणिकाध्यायके १५० श्लोक छोड़कर।

अब पांचवां प्रमाण प्रस्तुत है। इस अनुक्रमणिकाध्यायमें ही लिखा है कि उपाख्यान भागको छोड़कर महाभारतके पहले चौबीस हजार श्लोक रचे गये थे और वही वेदव्यासने अपने पुत्र शुकदेवको पहले पढ़ाये थे।

चतुर्व्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्व्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः॥
ततोऽध्यर्द्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः।
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम्।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयत् शुकम्।
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः॥

आदिपर्व १०१—१०३

शुकदेवसे वैशम्पायनने महाभारत पढ़ा था। इसलिये यही चौबीस हजार श्लोकोंका महाभारत जनमेजयको सुनाया गया था। और पहले महाभारतमें कुल चौबीस हजार श्लोक थे। पीछे धीरे धीरे क्षेपकके मारे महाभारतका आकार चौगुना बढ़ गया। जिसके मनमें आया वही कुछ न कुछ लिखकर उसमें मिलाता चला गया। अनुक्रमणिकामें ही लिखा है कि इसके बाद वेदव्यासने साठ लाख श्लोकोंका महाभारत रचा जिसका कुछ अंश देवलोकमें, कुछ पितृलोकमें और कुछ गन्धर्वलोकमें पढ़ा जाता है। बाकी केवल एक लाख श्लोक मनुष्य लोकमें पढ़े जाते हैं। यह अस्वाभाविक बात पहले अनुक्रमणिकाध्यायमें प्रक्षिप्त हुई है इसमें सन्देह नहीं। देवलोकमें,

पितृलोकमें या गन्धर्वलोकमें महाभारत पढ़ा जाना और मनुष्य विशेषका—चाहे वह वेदव्यास ही क्यों न हों—साठ लाख श्लोक बनाना सहज ही विश्वास करने योग्य बात नहीं है। मैं पहले ही कह आया हूं कि २७२ श्लोकात्मक उपक्रमणिकामें १२२ श्लोक क्षेपक हैं। यह साठ लाख और एक लाख श्लोकोंकी बात भी निस्सन्देह क्षेपक है।

दसवां परिच्छेद।
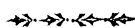
क्षेपक चुननेकी रीति।

महाभारतका कुछ अंश प्रक्षिप्त है यह पूर्व परिच्छेदमें स्थिर हो चुका है। अब विचारना यह है कि इसके ढूंढ निकालनेका कुछ उपाय है या नहीं। कौन अंश प्रक्षिप्त है और कौन नहीं है, इसके स्थिर करनेका कुछ लक्षण है या नहीं?

मनुष्यजीवनके जितने कार्य्य हैं सबका ही निर्वाह प्रमाणके ऊपर निर्भर है। लेकिन हां, विषयकी विभिन्नताके अनुसार प्रमाणोंकी अल्प वा अधिक बलवत्ता आवश्यक होती है। जिन प्रमाणोंपर निर्भर रह हम साधारण तौरपर अपने जीवनके कार्य्य निर्वाह कर सकते हैं उनसे गुरुतर प्रमाणोंके बिना एक भी मुकद्दमा अदालतमें फैसल नहीं हो सकता है। फिर विचारालयमें विचारकगण जिन प्रमाणोंके भरोसे अभियोगका निर्णय करते

हैं उनसे बड़े प्रमाणोंके विना वैज्ञानिकलोग विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तपर नहीं पहुंच सकते हैं। इसीलिये विषयकी विभिन्नताके अनुसार भिन्न २ प्रमाणशास्त्र रचे गये हैं। जैसे विचारालयोंके लिये प्रमाण सम्बन्धी आईन(Law of Evidence) और विज्ञानके लिये अनुमानतत्व (Logic) या (Inductive Philosophy) है। इतिहासका तत्व निरूपण करनेके लिये भी इसी तरह एक प्रमाणशास्त्र भी है। क्षेपक चुननेके लिये भी कुछ नियम बनाये जा सकते हैं-

(१) मैं जिस पर्वसंग्रहाध्यायकी बात पहले कह चुका हूं उसमें जिसकी चर्चा नहीं है वह निश्चयसे प्रक्षिप्त है। यही पहला सूत्र हुआ।

(२) अनुक्रमणिकाध्यायमें लिखा है कि महाभारतकारने - वह व्यासदेव हों चाहे और कोई - महाभारत रचकर डेढ़ सौ श्लोकोंकी अनुक्रमणिकामें भारतकी सब बातोंका सार संग्रह किया। इस अनुक्रमणिकाध्यायमें ९३ श्लोकसे २५१ श्लोक तक उक्त प्रकारका सार संग्रह है। यद्यपि इसमें १५०के बदले १५९ श्लोक हैं अर्थात् ९ श्लोक अधिक हैं तथापि कुछ चिन्ता नहीं। कदाचित् यह नौ श्लोक ऊपरसे मिलाये गये हों। अब इन १५९ श्लोकोंमें जिसकी चर्चा न हो उसे अवश्य क्षेपक मानना होगा।

(३) जो परस्पर विरोधी हैं उनमेंसे एक अवश्य ही प्रक्षिप्त है। अगर कोई घटना दो या अधिक बार लिखी गयी है और

वह परस्पर विरोधी है अर्थात एक ही घटना कई तरहसे लिखी गयी है तो उनमेंसे एकको क्षेपक समझना होगा। कोई लेखक व्यर्थ पुनरुक्ति नहीं करता और न व्यर्थकी पुनरुक्तिसे आत्मविरोध उपस्थित करता है। असावधानी या अयोग्यताके कारण जो पुनरुक्ति या आत्मविरोध हो जाता है वह और बात है। वह सहज ही चुन लिया जा सकता है।

(४) सुकवियोंकी रचनामें प्रायः कुछ न कुछ विशेषता रहती है। महाभारतके कई अंश ऐसे हैं जिनके असली होनेमें कभी सन्देह हो ही नहीं सकता है। क्योंकि उसके न रहनेसे महाभारतका महाभारतपन ही नहीं रहता है। इन स्थानोंकी रचनाप्रणाली ठीक एक ही प्रकारकी है। जिन रचनाओंमें उक्त रचनाका एक लक्षण भी न हो या जिनकी रचनाप्रणाली बिलकुल भिन्न प्रकारकी हो उन्हें प्रक्षिप्त समझना चाहिये।

(५) इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि महाभारतका बनानेवाला श्रेष्ठ कवि था। श्रेष्ठ कवियोंके कहे हुए चरित्र सब अंशोंमें सुसंगत होते हैं। यदि कहीं उसमें अन्तर पड़े तो उसके प्रक्षिप्त होनेका सन्देह होगा। मान लीजिये किसी हस्तलिखित महाभारतके किसी स्थानमें भीष्मकी भीरुता और परदार परायणता लिखी मिले तो उसे क्षेपक समझना होगा।

(६) जो अप्रासंगिक है वह प्रक्षिप्त हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन अप्रासंगिक विषयोंमें पांच लक्षणोंमेंसे कोई एक हो तो वह प्रक्षिप्त समझा जायगा।

(७) यदि दो भिन्न भिन्न विवरणोंमेंसे तृतीय लक्षणके अनुसार एक प्रक्षिप्त जान पड़े तो उनमें जो किसी और लक्षणके अन्तर्गत हो उसे ही क्षेपक समझना चाहिये।

अभी इतना ही लिखा गया। क्षेपक चुननेका ढंग धीरे धीरे और भी बताया जायगा।

एग्यारहवां परिच्छेद।

चुननेका फल।

ऊपर लिखी रीतिसे बारम्बार विचारपूर्वक महाभारत पढ़कर मैंने यही समझा है कि इसमें अलग अलग तीन तहें हैं। पहली तह असली महाभारतकी बस ठठरी ही ठठरी है, इसमें पाण्डवोंके जीवनवृतान्त और उसके साथकी कृष्णकथाके सिवा और कुछ नहीं है। जो कुछ है वह बहुत संक्षिप्त जान पड़ता है चौबीस हजार श्लोकोंकी भारतसंहिता यही है। इसके बाद एक तह और है। पहली तहसे इसका कुछ भी मेल नहीं है। इसका ढङ्गही निराला है। मैं देखता हूं कि महाभारतके एक अंशकी रचना तो बड़ी उदार, विकारशून्य और अति उच्च कवित्वसे पूर्ण है। पर दूसरे अंशको अनुदार होनेपर भी पारमार्थिक दार्शनिक तत्वके साथ उसका गहरा सम्बन्ध है। इस कारण कविता भी कुछ विकृत हो गयी है। वह कवित्वशून्य

नहीं है, पर जो कवित्व है उसका प्रधान अंश अघटनघटनाकौशल या उस विषयका रचनाचातुर्य्य है। पहले ढङ्गकी रचना एक मनुष्यकी और दूसरे ढङ्गकी दूसरे मनुष्यकी मालूम होती है। पहले ढङ्गकी रचना ही आदिम या पहलेकी है, दूसरे ढङ्गकी रचना पीछेकी है और उसमें क्षेपक मिलाया गया है। पहला अंश निकाल देनेपर महाभारत ही नहीं रहेगा; जो कुछ रहेगा वह कङ्कालविच्युत मांसपिण्डकी तरह बन्धनहीन, प्रयोजनहीन, और निरर्थक पदार्थ जान पड़ेगा। किन्तु दूसरा अंश निकाल देनेपर महाभारतको कुछ क्षति नहीं होती है, केवल कुछ निष्प्रयोजन अलङ्कारके उतर जानेसे उसका बोझ हलकासा हो जाता है। पाण्डवोंका जीवनवृत्तान्त अखण्ड रह जाता है। इस कारण मैं पहले अंशको पहली तह और दूसरे अंशको दूसरी तह समझता हूं। पहली और दूसरी तहोंमें एक बड़ा भारी भेद यह दिखाई पड़ेगा कि पहली तहमें कृष्ण ईश्वर या विष्णुके अवतार कहीं नहीं माने गये हैं। उन्होंने स्वयं भी अपना ईश्वरत्व कहीं नहीं माना है। कृष्णने मानुषी शक्तिके अतिरिक्त दैवी शक्तिसे कहीं कोई काम नहीं लिया है। पर दूसरी तहमें वह डंकेकी चोट ईश्वर माने गये हैं। कृष्णने भी स्वयं अपनी ईश्वरताका ढोल बजाया है और कविने भी उन्हें ईश्वर सिद्ध करनेके लिये बड़ा प्रयत्न किया है।

इन दोनों तहोंके सिवा एक तीसरी तह भी है।

तीसरी तह अनेक शताब्दियोंसे बनती चली आ रही है।

जिसने जब जो अच्छी रचना की वह महाभारतमें जोड़ दी। महाभारत पांचवां वेद कहलाता है। इसका अवश्यही गूढ़ तात्पर्य्य है। चारों वेदोंपर शूद्र और स्त्रियोंका अधिकार नहीं है; किन्तु साधारणकी शिक्षा (Mass education) पर बहस अभी अंगरेजी राज्यमें नयी नहीं चली है। भारतके साधारण प्रतिभाशाली प्राचीन ऋषियोंने अच्छी तरह समझा था कि ऊंची जातियोंके साथ नीची जातियों और स्त्रियोंका समान अधिकार विद्या और ज्ञानपर है। वह जानते थे कि सर्व्वसाधारणके शिक्षित हुए विना समाजकी उन्नति नहीं हो सकती है। परन्तु वह लोग आजकलके हिन्दुओंकी तरह अपने प्रतिभाशाली पूर्व्वपुरुषोंकी अवज्ञा नहीं करते थे। वह लोग पुराने समयको नयेसे अर्थात् भूतको वर्तमानसे अलग करनेमें बहुत डरते थे। पूर्व्वपुरुष कह गये हैं कि स्त्री और शूद्रोंको वेद पढ़ानेका अधिकार नहीं है। उन्होंने कहा अच्छी बात है नहीं पढ़ावेंगे। पर साथ ही यह भी उन्होंने सोचा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिसमें स्त्री और शूद्र सीखनेकी सब बातें एक ही जगह बिना वेद पढ़े ही सीख लें। सांप मरे, लाठी भी न टूटे। मनोहर सामग्रीके संग शिक्षा देनेसे वह सर्वसाधारणमें आदरकी वस्तु होगी। यही विचारकर ब्राह्मणोंने सर्वसाधारणकी शिक्षाके लिये महाभारतमें बहुतसी बातें मिला दीं। आजकल हम जो महाभारत पढ़ते हैं वह उन्हीं ब्राह्मणोंकी अक्षय कीर्ति है। (१) बस

(१) स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।

इसका फल यह हुआ कि भली बुरी बहुतेरी बातें इसमें आ मिलीं। शान्तिपर्व्व और अनुशासनपर्व्वका अधिकांश, भीष्मपर्व्वकी श्रीमद्भगवद्गीताका पर्वाध्याय, वनपर्वका मार्कण्डेय समस्याका पर्वाध्याय, उद्योगपर्व्वके प्रजागरका पर्व्वाध्याय, मालूम होता है, तीसरी तह जमानेके समय रचे गये हैं। इनके सिवा आदिपर्वके शकुन्तलोपाख्यानके पूर्व्वका अंश और वनपर्वका तीर्थयात्रा पर्वाध्याय प्रभृति निकृष्ट अंश इसी तहके भीतर हैं।

कर्म्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥

श्रीमद्भागवत १ स्कं० ४ अ० २५

ऊपर कही हुई इन तीन तहोंके नीचेकी यानी पहली तह हो सबसे पुरानी है। इसलिये उसीको असली समझकर ग्रहण करना चाहिये। जो बातें दूसरी और तीसरी तहमें मिलें और पहली तहमें न मिलें उन्हें कपोलकल्पित, अनैतिहासिक समझ परित्याग करना उचित है।
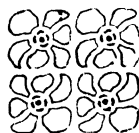
बारहवां परिच्छेद।

अनैसर्गिक या अलौकिक।

इतनी दूर आकर जो तत्व निकला है, वह स्थूलरूपसे यही है कि जिन ग्रन्थोंमें कृष्णकी कथा है उनमें महाभारत ही सबसे पुराना है। पर प्रचलित महाभारतमें तीन भाग क्षेपक और एक भाग मौलिक है। उसी एक भागमें कुछ ऐतिहासिकता है। वह कितनी है, अब उसीका पता लगाना चाहिये।

कुछ लोग कह सकते हैं कि इसकी जरूरत नहीं। क्योंकि महाभारत व्यासदेवका बनाया है और वेदव्यास महाभारत युद्धके समय हुए हैं। इसलिये महाभारत समसामयिक आख्यान- Contemporary History है। इसका मौलिक अंश अवश्य विश्वासके योग्य है।

आजकल जिस महाभारतको हम पढ़ते हैं उसे ठीक उसी समयका बना नहीं कह सकते। पहला महाभारत वेदव्यासका बनाया हो सकता है, पर वह क्या हमें मिला है? क्षेपक निकाल देनेपर जो बचता है, वह क्या व्यासजीकी रचना है? जो महा-भारत प्रचलित है उसे तो उग्रश्रवा नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंको सुना रहे हैं। वह कहते हैं कि मैंने जनमेजयके सर्पयज्ञमें वैशम्पायनसे जो महाभारत सुना है वही तुम्हें सुनाता हूं। पर दूसरी जगह लिखा है कि उग्रश्रवाने अपने पितासे

वैशम्पायन-संहिता पढ़ी थी। महाभारतके ६३वें अध्यायमें व्यासकी जन्मकथाके बाद वैशम्पायनजी ही कहते हैं—

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकञ्चैव स्वमात्मजम्॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः।

आदिपर्व ६३ अ।८९।८६

अर्थात् वेदव्यासने सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुक और वैशम्पायनको वेद और पांचवां वेद महाभारत पढ़ाये। उन्होंने अपनी अलग अलग भारतसंहिताएं बनायीं। (१)

इसलिये प्रचलित महाभारत वैशम्पायनप्रणीत भारतसंहिता है। यह पहले जनमेजयकी सभामें सुनायी गयी थी। जनमेजय पाण्डवोंके प्रपौत्र थे।

खैर जो हो, वर्त्तमान महाभारत हमें वैशम्पायनसे नहीं मिला है। उग्रश्रवा कहते हैं कि मैंने वैशम्पायनसे सुना है। अथवा उनके पिताने वैशम्पायनसे सुना और उन्होंने अपने पुत्र उग्रश्रवाको

---

(१) जैमिनिभारतका नाम सुननेमें आता है। वेबर साहबने इसका अश्वमेध-पर्व देखा भी है। बाकी और संहिताएं लुप्त हो गयी हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्रमें लिखा है "सुमन्त जैमिनि वैशम्पायन पैल सूत्र-भारत-महाभारत-धर्माचार्य्याः।" इससे तो सुमन्त सूत्रकार, जैमिनि भारतकार, वैशम्पायन महाभारतकार और पैल धर्म्मशास्त्रकार ठहरे।

पढ़ाया । उग्रश्रवाने जो कुछ कहा वह हम एक दूसरे मनुष्यसे सुनते हैं । वही वर्त्तमान महाभारतके प्रथम अध्यायका प्रणेता है और कई स्थानोंमें वक्ता भी बना है ।

वह कहता है कि नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषि इकट्ठे हुए और वहीं उग्रश्रवा भी आ पहुंचे । वहां ऋषियोंके साथ भारतके तथा और और विषयोंके सम्बन्धमें उग्रश्रवाका जो कथोपकथन हुआ वही मैं कहता हूं ।

इससे यह निश्चय है कि (क) प्रचलित महाभारत व्यासकृत पहली संहिता नहीं है । (ख) इसे लोग वैशम्पायन-संहिता समझते हैं, पर इसके वैशम्पायन-संहिता होनेमें सन्देह है । इसके बाद सिद्ध किया गया है कि (ग) इसका प्रायः तीन हिस्सा क्षेपक है । इसलिये महाभारतको कृष्णचरित्रका आधार माननेमें बड़ी सावधानीके साथ उससे काम लेना होगा ।

इस सावधानीके लिये यही आवश्यक है कि जो अलौकिक या अस्वाभाविक जान पड़े उसे परित्याग करना चाहिये ।

मैं यह नहीं कहता कि मैं जिसे अस्वाभाविक कहूं वह अवश्य ही मिथ्या है । मैं जानता हूं कि ऐसे अनेक स्वाभाविक नियम हैं जो मुझे मालूम नहीं । जंगली लोग जिस तरह घड़ी और तारवर्कीको अस्वाभाविक काम समझ सकते हैं उसी तरह मैं भी बहुतेरी बातोंको समझ लेता हूं । अपनी अज्ञता मान लेनेपर भी किसी विशेष प्रमाणके बिना मैं किसी अनैसर्गिक घटनापर विश्वास नहीं कर सकता । क्योंकि अपने ज्ञानके

बाहर कोई ईश्वरीय नियम प्रमाण विना नहीं मानना चाहिये। अगर तुमसे कोई कहे कि आमके पेड़में जामन फलते देखा है, तो तुम्हें उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। तुम्हें कहना होगा कि आमके पेड़में जामन दिखा दो या समझा दो कि यह कैसे हो सकता है। इसपर वह अगर कहे कि मैंने देखा नहीं, सुना है, तब तो अविश्वास करनेका कारण और भी भारी हो जायगा। क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। महाभारतकी भी वही दशा है। अलौकिक बातोंका प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं मिलता है।

ऊपर कह आया हूं कि प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जानेपर भी अलौकिक बातोंपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। अपने नेत्रोंसे देख लेनेपर भी सहसा विश्वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि हमारी ज्ञानेन्द्रियोंका भ्रममें पड़ना सम्भव है, पर प्राकृतिक नियमोंका लंघन होना कदापि संभव नहीं। जो अलौकिक घटना प्राकृतिक नियमसे संगत हो उसे मान लेना चाहिये। जंगलियोंको घड़ी और तारबर्कीका भेद समझा देनेसे वह उन्हें अस्वाभाविक नहीं मानेंगे।

और यह भी कह देना उचित है कि यदि श्रीकृष्ण ईश्वरके अवतार माने जायं (मैं तो मानता हूं) तो उनकी इच्छासे कोई अनैसर्गिक कार्य्य नहीं हो सकता, यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन जबतक श्रीकृष्ण अवतार सिद्ध न किये जा सकें और जबतक यह विश्वास किया जाय कि वह मनुष्यदेह धारणकर

ईश्वरीय शक्तिसे अपना कार्य्य साधन करते थे, तबतक मैं न तो मान सकता और न विश्वास कर सकता हूं कि उनकी इच्छासे अस्वाभाविक काम हो जाते थे।

केवल यही नहीं। यदि यह मान भी लिया जाय कि कृष्णचन्द्र ईश्वरावतार थे और उनकी इच्छासे अस्वाभाविक बातें हो जाती थीं तो भी बखेड़ा मिटता नहीं। खैर, उन्होंने जो जो काम किये हैं उन्हें मैंने मान लिया, पर जो उनके किये नहीं हैं उन्हें मैं क्यों मानने लगा? शाल्व असुरका अन्तरीक्षमें सौभनगर बनाकर युद्ध करना, बाणासुरकी सहस्र भुजाएं, अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र छोड़ना और उससे सारे ब्रह्माण्डका दग्ध होना, फिर अश्वत्थामाकी आज्ञासे उसका उत्तराके गर्भस्थ बालकको गर्भमें मारना आदि क्यों विश्वास करने लगा?

इसके बाद श्रीकृष्णके किये हुये अनैसर्गिक कामोंपर भी विश्वास न करनेका कारण है। उन्हें ईश्वरका अवतार माननेपर भी अविश्वास करनेका कारण है। वह मनुष्य शरीर धारण करके यदि कुछ अस्वाभाविक काम करें तो वह दैवी या ईश्वरीय शक्तिसे ही करेंगे। यदि दैवी शक्तिसे ही काम करेंगे तो फिर मनुष्यशरीर धारण करनेकी आवश्यकता ही क्यों हुई? जो सर्व्वकर्त्ता, सर्व्वशक्तिमान्, इच्छामय है—जिसकी इच्छासे समस्त जीवोंकी सृष्टि तथा संहार होता है, वह मनुष्यदेह धारण किये बिना ही अपनी दैवी शक्तिके प्रयोगसे चाहे जिस असुर और मनुष्यका संहार कर सकता था। जब दैवी शक्तिसे ही काम

लेना होगा तब मनुष्यदेह धारणकी जरूरत ही क्या है ? यदि इच्छामय इच्छापूर्व्वक मनुष्यरूप धारण करें तो दैवी या ऐश्रीया शक्तिका प्रयोग उसका अभिप्रेत उद्देश्य नहीं हो सकता।

फिर शरीर धारणका प्रयोजन क्या है ? क्या ऐसा कोई काम है जो ईश्वर मनुष्यशरीर धारण किये बिना नहीं कर सकता है ?

इसके उत्तरके पहले यह प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वरका मनुष्यशरीर धारण करना सम्भव है ?

अच्छा, पहले इसीका उत्तर देता हूं।

तेरहवां परिच्छेद

क्या ईश्वरका अवतीर्ण होना सम्भव है ?

कृष्णचरित्रकी आलोचनाके पहले इस प्रश्नका उत्तर देना वास्तवमें आवश्यक है कि ईश्वरका पृथ्वीपर अवतीर्ण होना क्या सम्भव है ? इस देशके निवासी श्रीकृष्णको ईश्वरका अवतार मानते हैं। पर शिक्षित लोग यह बात विज्ञानके विरुद्ध बताते हैं और हमारे ईसाई भाई इसे महज दिल्लगी समझते हैं।

यहां एक नहीं दो प्रश्न हो सकते हैं : (क) ईश्वरका पृथ्वी-पर अवतीर्ण होना सम्भव है या नहीं ? (ख) यदि है, तो कृष्ण

अवतार है या नहीं? मैं इस दूसरे प्रश्नका उत्तर कुछ नहीं दूंगा। हां, पहले प्रश्नके उत्तर देनेकी इच्छा अवश्य है।

यह सौभाग्यकी बात है कि हमारे ईसाई भाइयोंका इस मोटीसी बातमें हमसे मतभेद होना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह ईश्वरका अवतीर्ण होना सम्भव मानते हैं। न माने तो ईसा-मसीह हाथसे निकल जायंगे। हमारा प्रधान विवाद दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंसे है।

बहुतेरे दार्शनिक और वैज्ञानिक यह कहेंगे कि जब ईश्वरके अस्तित्वका ही प्रमाण नहीं है, तब उसका अवतार कहांसे आवेगा? जो ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नही करते हैं उनके साथ मैं विवाद नहीं करूंगा। मैं उनसे घृणाकर ऐसा करता हुं यह मत समझिये। बात यह है कि उनसे विवाद करनेपर किसी पक्षका भी कुछ उपकार नहीं होगा। वह लोग हमसे घृणा करते हैं, तो करें, इससे हमारा कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

इनके बाद कुछ लोग और हैं जो ईश्वरको तो मानते हैं, पर कहते है कि ईश्वर निर्गुण है उसका अवतार कैसा? अवतार तो सगुणका होता है।

इस आपत्तिका तो मैं सीधा उत्तर दूंगा कि निर्गुण ईश्वर क्या है यह मैं समझ नहीं सकता। इसलिये इसकी मीमांसा करनेमें मैं असमर्थ हूं। मैं जानता हूं कि बहुतसे पण्डित और भावुक ईश्वरको निर्गुण मानते हैं। मैं न पण्डित हूं और न भावुक ही; पर मैं जानता हूं कि पण्डित और भावुक मेरी तरह

निर्गुण ईश्वरका तात्पर्य्य नहीं समझ सके हैं, क्योंकि मनुष्यकी ऐसी कोई चित्तवृत्ति नहीं है जिससे वह निर्गुण ईश्वरको समझ सके। ईश्वर निर्गुण हो सकता है, पर हम निर्गुणको समझ नहीं सकते; क्योंकि हममें वह शक्ति नहीं है। (१) हम मुंहसे केवल कह सकते हैं कि ईश्वर निर्गुण है और इसपर एक दर्शन-शास्त्र भी रच सकते हैं,पर जो कुछ हम कह सकते हैं वह समझते भी हैं, इसका ठिकाना नहीं। "चौकोन गोला" कहने-से हमारी जीभ फट नहीं गयी, पर "चौकोन गोले" के माने क्या हैं यह समझमें नहीं आया। इसीसे हर्बर्ट स्पेनसरने इतने दिनोंके बाद निर्गुण ईश्वरको तजकर सगुणसे भी सगुण जो ईश्वर है (something higher than personality) उसे आकर पकड़ा है। ईश्वरको निर्गुण कहनेसे स्रष्टा, विधाता, पाता, त्राता कोई भी हाथ नहीं आता है। फिर झख मारनेसे फायदा ही क्या ?

जो सगुण ईश्वर मानते हैं वह भी अवतारके सम्बन्धमें बहुतसी आपत्तियां खड़ी करते हैं। एक तो यही कि ईश्वर सगुण है पर निराकार है। जो निराकार है वह आकार किस तरह धारण करेगा ?

(१) "Our conception of the Deity is then bounded by the conditions which bound all human knowledge therefore we cannot represent the Deity as he is but as he appears to us."

Mansel, Metaphysics P. 384

अब प्रश्न यह है कि जो इच्छामय और सर्व्वशक्तिमान् है वह इच्छा करनेसे निराकार होनेपर भी, क्यों नहीं आकार धारण कर सकता है? उसकी सर्व्वशक्तिमत्ताकी सीमा क्यों बांधी जाती है? क्या उसे सर्व्वशक्तिमान् नहीं मानना है? जिसने इस जड़ जगतका आकार बनाया है वह स्वयं इच्छा करनेपर क्यों नहीं आकार धारण कर सकेगा?

जिनकी उक्त आपत्तियां नहीं हैं वह यह कह सकते हैं और कहते भी हैं कि जो सर्व्वशक्तिमान् है उसे संसारके शासनके लिये, संसारके हितके लिये, मनुष्यशरीर धारण करनेका क्या प्रयोजन है? जो अपनी इच्छासे करोड़ों विश्व बनाता और बिगाड़ता है उसका रावण, कुम्भकरण, कंस और शिशुपाल वधके लिये जन्म ग्रहण करना, बालक होकर माताका स्तनपान करना, अ, आ, इ, ई सीखकर शास्त्राध्ययन करना, मनुष्य-जीवनका अपार दुःख भोगकर स्वयं अस्त्र धारण करना, कभी आहत और कभी पराजित होना, और पीछे बड़ी कठिनतासे दुरात्माओंका संहार करना बड़ी ही अश्रद्धेय बात है।

जो ऐसा कहते हैं वह मनमें समझते हैं कि हम मनुष्य-जन्मके दुःख—गर्भवास, जन्म, स्तन्यपान, शैशवशिक्षा, जय, पराजय, जरा, मरण जैसे भोगते हैं ईश्वर भी वैसा हो भोगता है। उनकी मोटी बुद्धिमें यह नहीं आता कि ईश्वर सुख दुःखसे अतीत है—उसे किसीसे न दुःख है, न कष्ट है। जगत्का सृजन, पालन, लय उसकी जैसी लीला (Manifestation) है वैसी ही यह सब

भी हो सकती है। तुम कहते हो कि ईश्वर इच्छा करते ही क्षण भरमें जिनका संहार कर सकता है उनके वधके लिये वह इतने समय तक क्यों श्रम उठावेगा जो मनुष्यकी आयुके बराबर है ? तुम भूलते हो कि जिसके सामने अनन्तकाल भी पलभरके समान है उसकी दृष्टिमें एक पल और मनुष्यकी सारी आयुमें कुछ भेद नहीं है।

विष्णुके अवतारके सम्बन्धमें असुरवधकी जो कथाए पुराणमें बहुत दिनोंसे सुनते आते हैं उनपर बहुतोंका विश्वास न होना ठीक ही है, क्योंकि केवल कंस या शिशुपालको मारनेके लिये स्वयं ईश्वरका पृथ्वीपर मनुष्यका रूप धरना असम्भव है। जो अनन्त शक्तिमान् है उसके आगे कंस और शिशुपाल एक छोटेसे कीड़ेके समान हैं। हिन्दू धर्मके असली तत्वको जो वास्तवमें नहीं समझ सकते हैं वही अवतारका उद्देश्य दैत्य या दुरात्मा विशेषका संहार समझते हैं। असली बात तो श्रीभगवद्गीतामें बहुत संक्षेपसे लिखी हुई है

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंरक्षणार्थाय सम्भवामि युगे युगे।"

यह बहुत संक्षिप्त है ! "धर्म संरक्षण" क्या दो एक दुरात्माओंके वध करनेसे ही हो जाता है ? धर्म क्या है ? उसका संरक्षण किन किन उपायोंसे हो सकता है ?

हमारी सब शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंका सम्पूर्णरूपसे विकास, पूर्ति, समञ्जस और चरितार्थ होना ही धर्म्म है।

यह धर्म्म अनुशीलनके अधीन है और अनुशीलन कर्म्मके (१) : इसलिये कर्म्म ही धर्म्मका प्रधान उपाय है। इसी कर्म्मको धर्म्म-पालन (Duty) कह सकते हैं। मनुष्य अपनी सब वृत्तियोंके वशीभूत होकर और कुछ अपनी रक्षाके लिये सहज ही कर्म्ममें प्रवृत्त होता है। परन्तु जिस कर्म्मसे सब वृत्तियोंका सर्व्वाङ्गीन विकास, प्राप्ति, सामञ्जस्य और चरितार्थता होती है, वह कठिन है। जो कठिन है उसकी शिक्षा केवल उपदेशसे नहीं होती है उसके लिये आदर्शकी आवश्यकता है। सम्पूर्ण धर्म्मका सम्पूर्ण आदर्श ईश्वरके अतिरिक्त और कोई नहीं है। किन्तु निराकार ईश्वर हमारा आदर्श हो नहीं सकता। क्योंकि, पहले तो वह अशरीरी है, शारीरिक वृति शून्य है। हम शरीरी हैं, शारीरिक वृत्तियां हमारे धर्म्मका प्रधान विघ्न हैं। दूसरे, वह अनन्त है, हम सान्त हैं, अति क्षुद्र हैं। इसलिये ईश्वर यदि स्वयं सान्त और शरीरी होकर दर्शन दे तो उस आदर्शकी आलोचनासे सच्चे धर्म्मकी उन्नति हो सकती है। इसी हेतु ईश्वरके अवतारकी जरूरत है। मनुष्य कर्म्म नहीं जानता है: किस तरह कर्म्म करनेसे धर्म्म होता है यह भी वह नहीं जानता है। ईश्वरके अवतार लेनेसे इस बातकी शिक्षाकी विशेष सम्भावना है। ऐसी अवस्थामें ईश्वर जीवोंपर दयाकर शरीर धारण करे तो इसमें असम्भावना क्या है।

---

(१) इसकी विशद व्याख्या "धर्मतत्व" में देखिये।

यह बात मैं अपने मनसे नहीं कहता हूं। भगवद्गीतामें श्रीभगवानकी उक्तिका तात्पर्य्य भी यही है —

"तस्मादसक्तः सततं कार्य्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥
कर्म्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ २१ ॥
न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्म्मणि ॥ २२ ॥
यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्म्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्व्वशः ॥२३॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्य्यां कर्म्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

अर्थात्

"पुरुष आसक्ति त्यागकर कर्म्मनुष्ठान करनेसे मोक्ष पाता है, इसलिये तुम आसक्ति परित्यागकर कर्म्मका अनुष्ठान करो, जनकादि महात्माओंने कर्म्मसेही सिद्धि पायी है। श्रेष्ठ व्यक्ति जो आचरण करते हैं इतरजन वही करते हैं, वह जिसे मानते हैं, और लोग भी उसीका अनुसरण करते हैं। इसलिये तुम सब लोगोंकी धर्म्मरक्षाके निमित्त कर्म्मका अनुष्ठान करो। देखो, त्रिभुवनमें मुझे कुछ भी अप्राप्य नहीं है, इस हेतु मेरा कुछ कर्त्तव्य नहीं

है, तो भी मैं कर्म्म करता हूं। (१) यदि मैं आलस त्यागकर कभी कर्म्म न करूं तो सब लोग मेराही अनुकरण करने लग जायंगे। इस हेतु मेरे कर्म्म न करनेसे सब लोग नष्ट भ्रष्ट हो जायंगे और मैं ही उनके वर्णसङ्कर बनाने और नाशका हेतु हो जाऊंगा।"

मैंने ईश्वर माननेवाले वैज्ञानिकोंकी अन्तिम और प्रधान आपत्तिकी बात अभी नहीं कही है। वह कहते हैं कि ईश्वर अवश्य है। वह सृष्टिकर्ता और नियन्ता भी है, परन्तु वह गाड़ीके कोचवानकी तरह हाथोंमें रास लेकर या नावके मल्लाहकी तरह पतवार पकड़कर संसारको नहीं चलाता है। उसने कुछ अचल नियम बना दिये हैं, बस उन्हींके भरोसे यह संसार चल रहा है। यह नियम अचल और जगत्के काम चलानेके लिये यथेष्ट भी हैं। ईश्वरको स्वयं उनमें हस्तक्षेप करनेका न स्थान है और न प्रयोजन ही है। इसलिये यह माननेको जी नहीं चाहता है कि ईश्वर मनुष्यदेह धारणकर पृथ्वीपर अवतीर्ण होगा।

मैं यह बात भी मानता हूं कि ईश्वरने कुछ नियम बना दिये हैं जिनके अनुसार यह संसार चलता है। मैं यह भी मान लेता हूं कि वह नियम जगत्की रक्षा और पालनके हेतु यथेष्ट हैं। पर इनसे परमेश्वरको स्वयं काम करनेका न स्थान है और न प्रयोजन है, यह कैसे सिद्ध होता है, यह मैं समझ न सका। संसारकी कोई वस्तु ऐसी उन्नत अवस्थामें नहीं है जिसे वह,

(१) कृष्ण यानी शरीरधारी ईश्वर यह कह रहा है।

जो सर्वशक्तिमान् है, इच्छा करनेपर भी और उन्नत न कर सके। विज्ञानशास्त्रके सहारे सांसारिक कार्य्योंकी आलोचना कर मैं यही समझ सकता हूं कि संसार अपूर्ण और अपक्व अवस्थासे धीरे धीरे पूर्ण और परिपक्व अवस्थामें आ रहा है। यही संसारकी गति है और यही गति जगत्कर्त्ताका अभीष्ट भी मालूम होता है। फिर जगत्की वर्तमान अवस्थामें ऐसी कुछ बात नहीं देखता हूं जिससे यह समझ लूं कि जगत् चरमोन्नतिको पहुंच गया है। अब भी मनुष्योंके सुखकी और उन्नतिकी बहुत सी बातें बाकी हैं। जबतक यह बाकी हैं तबतक परमेश्वरको हस्तक्षेप या कार्य्य करनेके लिये स्थान और प्रयोजन क्यों नहीं है? सृष्टि, रक्षा, पालन और संहारके अतिरिक्त संसारका एक और नैसर्गिक कार्य्य उन्नति है। मनुष्यकी उन्नतिका मूल है धर्म्मकी उन्नति। यह भी मैं स्वीकार करता हूं कि धर्म्मकी उन्नति भी ईश्वरीय नियमोंसे हो सकती है। पर यह नहीं मान सकता कि केवल नियमोंसे जितनी उन्नति हो सकती है उससे अधिक स्वयं ईश्वरके अवतार लेनेसे किसी समय नहीं हो सकती है। और यह भी भला मैं कैसे कह सकता हूं कि ऐसी अधिक उन्नति परमेश्वरको अभीष्ट नहीं है?

आपत्ति करनेवाले कहते हैं कि नैसर्गिक नियम ईश्वरकृत होनेपर भी उनके प्रतिकूल कोई काम होता संसारमें दिखायी नहीं देता है। इससे इन सब असम्भव कामों (Miracles) को नहीं मान सकता हूं। इसे युक्तिसङ्गत माननेका कारण पिछले

परिच्छेदमें बता आया हूं। मुझे यह भी कहना पड़ता है कि ऐसी बहुतसी दन्तकथाएं हैं जिनमें ईश्वरके अवतारने अस्वाभाविक कर्म किये हैं। ईसामसीहके सम्बन्धमें ऐसी बहुतसी अस्वाभाविक बातें कही जाती हैं। खैर, ईसाकी हिमायत ईसाई ही करें, मुझे उनसे कुछ मतलब नहीं। विष्णुके अवतारोंमें मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह आदिने अस्वाभाविक कर्म ही किये हैं। बुद्धिमान् पाठकोंसे यह कहना वृथा है कि मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंहादि पशुओंका ईश्वरके अवतारसे वास्तवमें कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह मैं किसी अन्य पुस्तकमें दिखाऊंगा कि विष्णुके दस अवतारोंकी कथा कल्पित और आधुनिक है। यह कल्पना कहांसे आयी, यह भी दिखाऊंगा। यह सत्य है कि इन सब अवतारोंकी कथा पुराणोंमें है, पर पुराणोंमें बहुत सी मिथ्या बातें मिल गयी हैं। अगर सच पूछिये तो श्रीकृष्णको छोड़ और किसीको ईश्वरका अवतार नहीं कहा जा सकता है।

श्रीकृष्णका जितना वृत्तान्त मौलिक है उसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं है। महाभारत और पुराण क्षेपक तथा आजकलके निकम्मे ब्राह्मणोंकी निरर्थक रचनाओंसे परिपूर्ण हैं। इसी हेतु श्रीकृष्णचन्द्रके संबंधमें भी असंभव और अस्वाभाविक बातें अनेक ठौर मिलती हैं। पर विचार करनेसे मालूम हो जाता है कि इन बातोंका मूलग्रंथसे कुछ भी संबंध नहीं है। मैं क्रमसे उसका विचार करूंगा और जो कुछ कहूंगा उसका प्रमाण भी दूंगा। मैं दिखा दूंगा कि श्रीकृष्णने प्राकृतिक

नियमोंका उल्लंघनकर एक भी असंभव और अस्वाभाविक कार्य नहीं किया है। इसलिये श्रीकृष्णके बारेमें यह आपत्ति नहीं चल सकती है।

मैंने जो कहा है वह मैं अपने मनसे कहता हूं, ऐसा मत समझिये। पुराण बनानेवाले ऋषियोंने भी यही कहा है। पर बात यह है कि परंपरासे जो किम्वदन्तियां चली आती हैं उनके सत्यासत्वनिर्णयकी चाल उस समय नहीं थी, इससे अनेक अस्वाभाविक घटनाएं इतिहास और पुराणोंमें मिल गयी हैं।

विष्णुपुराणमें लिखा है—

मनुष्यधर्म्मशीलस्य लीला सा जगतःपतेः।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति॥
मनसैव जगत्सृष्टिं संहारञ्च करोति यः।
तस्यारिपक्षक्षपणे कोऽयमुद्यमविस्तरः॥
तथापि यो मनुष्याणां धर्म्मस्तमनुवर्त्तते।
कुर्व्वन् बलवता सन्धिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ॥
सामचोपप्रदानञ्च तथा भेदं प्रदर्शयन्।
करोति दण्डपातञ्च क्वचिदेव पलायनम्॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्त्ततः।
लीला जगत्पतेस्तस्य छन्दतः संप्रवर्त्तते॥

५ अंश, २२ अध्याय १४-१८

अर्थ।

जगत्पति होकर भी उसने शत्रुओंपर जो अस्त्र चलाये वह

मनुष्य धर्म्मके कारण उसकी लीला है। नहीं तो जो मनसे ही जगत्की सृष्टि और संहार करता है वह शत्रुओंके विनाशके हेतु बहुत उद्यम क्यों करेगा? वह मनुष्यधर्म्मका अनुसरण करता है, इसीलिये वह बलवान्के संग सन्धि, बलहीनके संग युद्ध करता है; साम, दान और भेदसे दण्ड देता है और कभी भाग जाता है। मनुष्यधर्म्मका अनुकरण करनेवाला वह जगत्पति अपनी इच्छासे यह लीलाएं करता था।"

मैं भी यही बात कहता था। आशा है, अब कोई पाठक यह नहीं मानेंगे कि श्रीकृष्णचन्द्रने मनुष्यदेह धारणकर दैवी शक्तिसे काम लिया था (१)

(१) "It is true that in the Epic poems Rama and Krishna appear as incarnations of Vishnu, but they at the same time come before us as human heroes and these two characters (the divine and the human) are so far from being inseparably blended together, that both of these heroes are for the most part exhibited in no other light than other highly gifted men acting according to human motives and taking no advantage of their divine superiority. It is only in certain sections which have been added for the purpose of enforcing their divine character that they take the character of Vishnu. It is impossible to read either of these two poems with attention,

अब विचारके लिये तीसरा नियम स्थिर हो गया।

तीनों नियमोंको फिर स्मरण करा देता हूं---

(क) जो प्रमाणसे क्षेपक सिद्ध होगा उसे छोड़ना पड़ेगा।

---

without being reminded of the later interpolation of such sections as ascribe a divine character to the heroes, and of the unskilful manner in which these passages are often introduced and without observing how loosely they are connected with the rest of the narrative, and how unnecessary they are for its progress."

Lassen's Indian Antiquities.

Quoted by Muir.

"In other places (अर्थात् भगवद्गीता पञ्चाध्यायके सिवा) the divine nature of Krishna is less decidedly affirmed ; in some it is disputed or denied ; and in most of the situations he is exhibited in action, as a prince and warrior, not as a divinity. He exercises no superhuman faculties in defence of himself, or his friends, or in the defeat and destruction of his foes. The Mahabharata, however, is the work of various periods, and requires to be read through carefully and critically, before its weight as an authority can be accurately appreciated."

Wilson, Preface to the Vishnu Purana.

(ख) जो असम्भव और अस्वाभाविक होगा उसे छोड़ना होगा।

(ग) जो न क्षेपक हो और न अस्वाभाविक पर और तरह-से असत्य सिद्ध हो, उसे भी छोड़ना होगा।

चौदहवां परिच्छेद
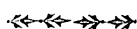
पुराण।

महाभारतकी ऐतिहासिकताके बारेमें जो कहना था वह कह चुका। अब पुराणोंके विषयमें जो कहना है वह कहता हूं।

पुराणोंके सम्बन्धमें देशी और विदेशी दोनों ही भ्रममें पड़े हैं। देशी कहते हैं कि सब पुराण एक ही मनुष्यके बनाये हैं और विदेशी कहते हैं कि नहीं, प्रत्येक पुराणका बनानेवाला अलग अलग है। अच्छा, पहले देशी भाइयोंके कथनकी ही आलोचना करता हूं।

अष्टादश पुराण एक मनुष्यके बनाये नहीं हैं, इसके कुछ प्रमाण देता हूं—

(क) एक मनुष्यकी लेखशैली एक ही तरहकी होती है। एक मनुष्यके हाथकी लिखावट जैसे पांच तरहकी नहीं होती वैसे ही एक मनुष्यकी लेखशैली कई तरहकी नहीं होती है। इन अठारह पुराणोंकी लेखशैली अठारह तरहकी है। यह कभी

एक मनुष्यके बनाये नहीं हैं। जो विष्णुपुराण और भागवत-पुराण पढ़कर कहे कि यह दोनों एक ही मनुष्यके बनाये हो सकते हैं उसके आगे कोई प्रमाण उपस्थित करना झक मारना है।

(ख) एक व्यक्ति एक विषयके अनेक ग्रन्थ नहीं लिखता है। जो अनेक ग्रन्थ लिखता है वह एक ही विषयको वारंवार वर्णन करनेके लिये नहीं लिखता। पर अठारहों पुराणोंमें एक ही विषय वारंवार विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है। यह कृष्णचरित्र ही इसका उदाहरण हो सकता है। यह ब्रह्मपुराणके पूर्व्व भागमें, विष्णुपुराणके प्रथम अंशमें, वायुपुराणमें और फिर श्रीमद्-भागवतके दशम और एकादश स्कन्धमें है। फिर ब्रह्मवैवर्त्तके तृतीय खण्डमें और पद्म, वामन और कूर्म्मपुराणमें संक्षेपसे है। इसी प्रकार अन्यान्य विषयोंका वर्णन भी पुराणोंमें वारंवार है। एक व्यक्तिकी लिखी हुई पुस्तकोंमें ऐसा होना असंभव है।

(ग) और यदि यह अठारहों पुराण एक ही मनुष्यके लिखे होते तो उनमें गुरुतर विरोधकी कुछ संभावना न रहती। पर इन पुराणोंमें स्थान स्थानपर ऐसी बातें लिखी हैं जो एक दूसरेसे मिलती नहीं। इसी कृष्णचरित्रको लीजिये जितने पुराण हैं उनमें यह उतने ही प्रकारसे वर्णित है। यह वर्णन एक दूसरेसे मिलता नहीं है।

(घ) विष्णुपुराणमें लिखा है—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणं संहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥
प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै लोमहर्षणः।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः॥
सुमतिश्चाग्निवर्च्चाश्च मित्रायुः शांसपायनः।
अकृतव्रणोऽथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन्॥
काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांसपायनः।
लौमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता॥

विष्णुपुराण ३ अंश ६ अध्याय १६–१६ श्लोक।

पुराणोंका अर्थ जाननेवाले वेदव्यासने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिके द्वारा पुराणसंहिता बनायी थी। लोमहर्षण नामक सूत व्यासजीके विख्यात शिष्य थे। महामुनि व्यासने उन्हें पुराणसंहिता दे दी। सुमति, अग्निवर्च्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतव्रण, सावर्णि—यह छः व्यासजीके शिष्य थे। काश्यप, सावर्णि और शांसपायनने उस लौमहर्षणिका मूलसंहितासे तीन संहिताएं बनायीं।

फिर भागवत देखिये, उसमें लिखा है

त्रय्यारुणिः काश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः।
शिंशपायन हारीतौ षड्वै पौराणिका इमे॥
अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत्पितुर्मुखात्। (१)
एकैकाहमेतेषां शिष्याः सर्व्वाः समध्यगाम्॥

(१) भागवतके लिखनेवाले व्यासपुत्र शुकदेव हैं। "वैशम्पायन हारीतौ" इति पाठान्तर।

काश्यपोऽहञ्च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः।
अधीमहि व्यासशिष्याश्चत्वारो मूलसंहिताः॥

श्रीमद्भागवत १२ स्कन्ध ७ अध्याय ४-६ श्लोक।

त्रय्यारुणि, काश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, शिंशपायन, हारीत यह छः पौराणिक हैं।

वायुपुराणमें कुछ और ही नाम हैं—

आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो हं कृतव्रणः।

अग्निपुराण क्या कहता है यह भी सुन लीजिये—

प्राप्य व्यासात् पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः।
सुमतिश्चाग्निवर्च्चाश्च मित्रायुः शांसपायनः॥
कृतव्रणोऽथ सावर्णिः शिष्यास्तस्य चाभवन्।
शांसपायनादयश्चक्रुः पुराणानान्तु संहिताः॥

इन वचनोंसे तो यही जाना जाता है कि प्रचलित अष्टादश पुराण वेदव्यासके बनाये नहीं हैं। उनके चेलेचाटियोंने जो पुराण-संहिता बनायी थी वह भी आजकल नहीं मिलती है। जो आजकल मिलती है वह कब बनी और किसने बनायी इसका कुछ ठिकाना नहीं।

अब यूरपवालोंके भ्रमके बारेमें लिखता हूं।

यूरपके विद्वान् यही समझते हैं कि, जितने पुराण हैं उनके बनानेवाले भी उतने ही हैं। इसी भ्रममें पड़कर वह वर्त्तमान पुराणोंके बननेका समय निरूपण करते हैं। यदि सच पूछिये तो एक भी पुराण आदिसे अन्ततक एक मनुष्यका लिखा नहीं

है। वर्त्तमान पुराण संग्रह मात्र हैं। समय समयपर जो बातें लिखी गयी हैं उनका ही इनमें संग्रह कर लिया गया है। इसे जरा और खुलासा कर समझाता हूं।

पुराणका अर्थ पहले पुरातन था। पीछे पुरातन घटनाओंका वर्णन हुआ। सदा ही पुरातन घटनाएं थीं, इसलिये सदा ही पुराण भी थे। वेदोंमें भी पुराण हैं। शतपथ ब्राह्मणमें, गोपथ ब्राह्मणमें, आश्वलायन सूत्रमें, अथर्वसंहितामें, वृहदारण्यकमें, छान्दोग्योपनिषद्में, महाभारतमें, रामायणमें, मानवधर्म्मशास्त्रमें जहां देखो वहां पुराणोंके होनेकी बात पायी जाती है। किन्तु इन सब ग्रंथोंमेंसे किसीमें भी आजकलके पुराणोंके नाम नहीं हैं। पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये कि अति प्राचीन कालमें यहां लिखने पढ़नेकी चाल रहनेपर भी कोई ग्रन्थ लिखकर नहीं रखता था। जो कोई कुछ बनाता वह उसे याद कर लेता था। फिर वह दूसरेको सिखाता। इसी तरह एक दूसरेसे सीखकर लोग ग्रंथोंका प्रचार करते थे। प्राचीन पौराणिक कथाएं इसी तरह एक मुंहसे दूसरे मुंहमे पड़कर कहानियां बन गयी थीं। पीछे किसी समय यही सब कहानियां और पुरानी कथाएं इकट्ठीकर एक एक पुराण बनाया गया। वैदिकसूत्र भी इसी प्रकार संगृहीत हो ऋक्, यजु, साम नामसे तीन संहिताओंमें विभक्त हुए। जिन्होंने वेदोंका विभाग किया था उन्हें ही "व्यास"की उपाधि मिली थी। "व्यास" नाम नहीं, उपाधि है। उनका नाम कृष्ण है, उनका

जन्म द्वीपमें हुआ था इस कारण वह कृष्णद्वैपायन कहलाये। यहां पुराण संग्रह करनेवालोंके विषयमें दो मत हो सकते हैं। एक यह कि जो वेदोंका विभाग करनेवाले हैं वही पुराणोंके भी संग्रह करनेवाले नहीं हो सकते, पर जो पुराणके संग्रहकर्त्ता हैं उनकी भी उपाधि "व्यास" होनी सम्भव है। वर्त्तमान अष्टादश पुराण एक मनुष्यके बनाये या एक ही समय विभक्त या संगृहीत हुए हैं, ऐसा मालूम नहीं होता है। यह पृथक् पृथक् समयमें संगृहीत हुए हैं। इसके प्रमाण इन पुराणोंमें ही भरे पड़े हैं। जिन्होंने कई पौराणिक वृत्तान्त पढ़कर एक संग्रह तय्यार किया, वही व्यास नामके अधिकारी हैं। शायद इसीसे लोग कहते हैं कि अठारहों पुराण व्यासके बनाये हैं। पर व्यास एक नहीं हैं। कई आदमियोंने व्यासकी उपाधि पायी थी। ऐसा सोचनेका कारण है। वेदोंके विभागकर्त्ता व्यास, महाभारतके रचयिता व्यास, अष्टादश पुराणोंके प्रणेता व्यास, वेदान्त सूत्रकार व्यास, यहांतक कि पातञ्जल दर्शनके टीकाकार भी व्यास ही हैं। यह सब व्यास एक हो नहीं सकते। अभी उस दिन काशीमें (१) भारतमण्डलका अधिवेशन हुआ था। समाचारपत्रोंमें पढ़ा उसमें दो व्यास उपस्थित थे। एकका नाम हरेकृष्ण व्यास और दूसरेका श्रीयुक्त अम्बिकादत्त व्यास था। अनेक मनुष्योंने व्यास उपाधि धारण की थी, इसमें सन्देह नहीं। वेदविभागकर्त्ता व्यास, महाभारत रचयिता व्यास और अष्टादश पुराणोंके

(१) शायद भारतधर्म्ममहामण्डल। भा० का०

संग्रहकर्त्ता अठारह व्यास एक मनुष्य नहीं हैं और यही सम्भव भी जान पड़ता है ।

दूसरा मत यही हो सकता है कि पुराणोंके पहले संग्रहकर्त्ता कृष्णद्वैपायन ही हैं । उन्होंने जिस प्रकार वैदिक सूक्तोंको संग्रह किया था उसी प्रकार पुराणोंका भी किया । विष्णु, भागवत, अग्नि प्रभृत्ति पुराणोंसे जो श्लोक उद्धृत किये हैं उनसे यही मालूम होता है । हम यही मत माननेके लिये तय्यार हैं । पर इससे भी यही सिद्ध होता है कि वेदव्यासने एक पुराण संग्रह किया था, अठारह नहीं । अब वह नहीं हैं । उनके चेलाचाटियोंने उससे तीन बनाये थे । अब वह भी नहीं मिलते हैं । अनेक मनुष्योंके हाथोंमें पड़कर वह धीरे धीरे तीनसे अठारह हो गये ।

इसमेंसे चाहे जो मत ग्रहण किया जाय, किसी विशेष पुराणके समयका निरूपण करनेकी चेष्टासे बस यही मालूम हो सकता है कि कब, कौन पुराण सङ्कलित हुआ । पर मुझे इतना होता भी नहीं दिखायी देता है । क्योंकि ग्रंथोंके बनने और संग्रह हो जानेके बाद उनमें क्षेपक मिलाया जा सकता है और जान पड़ता है पुराणोंमें ऐसा हुआ भी है । इसलिये संग्रहका समय कैसे निरूपण होगा ? अच्छा, इसे एक उदाहरण देकर समझाता हूं ।

मत्स्यपुराणमें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके विषयमें यह दो श्लोक लिखे हैं—

"रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य यत् ।

सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतम् ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः ।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ॥"

अर्थात् सावर्णि जिस पुराणमें रथन्तर कल्पके वृत्तान्तके अनुसार कृष्णमाहात्म्यकी कथा नारदसे कहते हैं और जिसमें बारंबार ब्रह्मवराह-चरित कहा गया है, वही अठारह हजार श्लोकोंका ब्रह्मवैवर्त्तपुराण है।

आजकल जो ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रचलित है वह सावर्णि नारदसे नहीं कहते हैं। नारायण नामक एक दूसरा ऋषि नारदसे कहता है। इसमें न रथन्तर कल्पकी कथा है और न ब्रह्मवराह-चरितकी चर्चा ही है। इसमें प्रकृति और गणेश दो खण्ड हैं जिनका उल्लेख ऊपरके दोनों श्लोकोंमें नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्तपुराण अब नहीं है। जो ब्रह्मवैवर्त्तके नामसे प्रचलित है वह नया बना है। इसे देखकर ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके सङ्कलनका समय निरूपण करना विचित्र बात मालूम होती है।

विलसन साहबने पुराणोंके बननेका समय इस प्रकार ठीक किया है --

ब्रह्मपुराण—ईसवी सन्‌की तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी।

पद्मपुराण—तेरहवीं और सोलहवीं शताब्दीके बीचमें (१)

विष्णुपुराण—दसवीं शताब्दी।

वायुपुराण—समय निश्चय नहीं हुआ। प्राचीन।

(१) इससे तो यह पुराण दो चार सौ वर्षका हुआ।

भागवत—तेरहवीं शताब्दी ।

नारदपुराण—सोलहवीं या सतरहवीं शताब्दी ।

मार्कण्डेय—नवीं या दसवीं ।

अग्नि—ठीक नहीं । अति नवीन ।

भविष्य—ठीक नहीं ।

लिङ्गपुराण—आठवीं या नवीं शताब्दीके इधर उधर ।

वराह—बारहवीं ।

स्कन्द—पांच पुराणोंका संग्रह (भिन्न भिन्न समय)

वामन—तीन चार सौ वर्षका बना ।

कूर्म्म—प्राचीन नहीं है ।

मत्स्य—पद्मपुराणके भी बाद ।

गरुड़
ब्रह्मवैवर्त्त
ब्रह्माण्ड } प्राचीन नहीं । यह पुराण नहीं हैं ।

पाठक, विलसन साहबके मतसे (यही मत प्रचलित है) तो एक भी पुराण एक हजार वर्षसे अधिक पुराना नहीं है। अंग्रेजी पढ़कर जिनकी बुद्धि बिगड़ी है उनके सिवा ऐसा कोई हिन्दू नहीं है जो विलसन साहबके बताये हुए समयको ठीक मानेगा। दो चार शब्दोंमें इसका अनौचित्य दिखाया जा सकता है।

यहांवालोंका विश्वास है कि कालिदास विक्रमादित्यके समयमें हुए और विक्रमादित्य ईसवी सन्के ५६ वर्ष पहले जीवित

थे। पर अब यह बातें कोई नहीं मानता है। डाक्तर भाउदा-जीने निश्चय किया है कि कालिदास ईसवी सन्‌के छठी शताब्दीमें हुए। आजकल सारा यूरप और यूरपवालोंके देशी चेले उनके ही सुरमें सुर मिलाते हैं। मैं भी वही करता हूं। इसलिये कालिदास छठी शताब्दीके ही मनुष्य हुए। विलसन साहबने तो यही स्थिर किया है कि जितने पुराण हैं सब ही कालिदासके बाद बने हैं। परन्तु कालिदास "मेघदूत" में कहते हैं

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यतेते।
वर्हेणैव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः॥

१५ श्लोक

जो पाठक संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें अन्तिम पंक्तिका अर्थ समझाना पड़ेगा। मोरपंखसे शोभित विष्णुके गोपवेशके साथ इन्द्रधनुषसे शोभित मेघकी उपमा दी गयी है। गोपवेश विष्णुका नहीं, विष्णुके अवतार कृष्णका था। वही मोरमुकुट धारण करते थे। उन्हींके मोरपंखसे इन्द्रधनुषकी तुलना की गयी है। अब मैं विनयपूर्व्वक यूरपके विकट विद्वानोंसे पूछता हूं कि अगर छठी शताब्दीके पहले कोई पुराण नहीं था तो "मेघदूत"में कृष्णके मोरमुकुटकी बात कहांसे आयी? क्या यह बात वेदोंमें, महाभा-रतमें या रामायणमें है? पुराण या उनके अनुवर्त्ती गीतगोविन्द आदि काव्योंके सिवा और कहीं नहीं है। हरिवंशमें है सही, पर विलसन साहबकी रायसे तो वह भी विष्णुपुराणके बादका है। इससे यह निश्चित है कि कालिदासके पहले अर्थात् कमसे

कम छठी शताब्दीके पहले हरिवंश या और कोई वैष्णव पुराण प्रचलित था ।

और एक बात कहकर यह बिषय समाप्त करूंगा । अभी जो ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रचलित है वह प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्त न होनेपर भी, कमसे कम एक हजार सालसे पहलेका जरूर है। क्योंकि गीतगोविन्दके कर्त्ता जयदेव गोस्वामी गौड़ाधिपति लक्ष्मणसेनके सभापण्डित थे और लक्ष्मणसेन बारहवीं शताब्दीके पहले भागमें हुए थे। बाबू राजकृष्ण मुखोपाध्यायने यह सिद्ध किया है और अंग्रेजोंने इसे स्वीकार भी कर लिया है। यह मैं आगे चलकर दिखाऊंगा कि यह ब्रह्मवैवर्त्तपुराण उस समय प्रचलित और अत्यन्त सम्मानित न होता तो गीतगोविन्द कभी न लिखा जाता और इस ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म-खण्डका पन्द्रहवां अध्याय उस समय प्रचलित न होता तो गीतगोविन्दका पहला श्लोक "मेघैर्मे दुरमम्बरम्" इत्यादि कभी नहीं बनता। इस हेतु यह भ्रष्ट ब्रह्मवैवर्त्त भी ग्यारहवीं शताब्दीके पहलेका है। पहला ब्रह्मवैवर्त्त न जाने और कितने पहलेका है । पर विलसन साहबके विचारसे वह केवल दो सौ वर्षका है ।
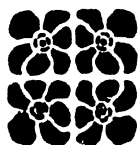
पन्द्रहवां परिच्छेद।
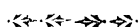
पुराण।

अठारहों पुराण मिलाकर पढ़नेसे यह जान पड़ता है कि कई पुराणोंके कुछ श्लोक एक ही प्रकारके हैं। कहीं कुछ पाठान्तर है और कहीं ज्योंके त्यों हैं। ऐसे कई श्लोक इस पुस्तकमें उद्धृत हुए हैं और होंगे। नन्द महापद्मका समय स्थिर करनेके लिये जो कई श्लोक उद्धृत कर चुका हूं वह इस बातका उदाहरण हो सकते हैं। पर उससे भी बड़ा एक और उदाहरण देता हूं। ब्रह्मपुराणके उत्तर भागमें श्रीकृष्णका चरित विस्तारपूर्व्वक लिखा गया है और विष्णुपुराणके पांचवें अंशमें भी श्रीकृष्णचरित विस्तारसे बर्णित है। दोनोंमें कुछ भेद नहीं, एक एक अक्षरका मेल है। इस पांचवें अंशमें अट्ठाईस अध्याय हैं। विष्णुपुराणके इन अट्ठाईस अध्यायोंमें जो श्लोक हैं वही ब्रह्मपुराणके कृष्णचरितमें हैं और ब्रह्मपुराणके कृष्णचरितमें जो श्लोक हैं वह सबके सब विष्णुपुराणके कृष्णचरितमें हैं। इस विषयमें इन दोनों पुराणोंमें कुछ भी भेद या न्यूनाधिक्य नहीं है। नीचे लिखे तीन कारणोंमेंसे किसी एकसे ऐसा होना सम्भव है—

(क) ब्रह्मपुराणकी चोरी विष्णुपुराणमें है।

(ख) विष्णुपुराणकी चोरी ब्रह्मपुराणमें है।

(ग) किसीकी किसीमें चोरी नहीं है। यह दोनों ही व्यास जीकी पहली पुराणसंहिताके अंश हैं। ब्रह्म और विष्णु दोनों पुराणोंने ही वह अंश रखा है।

पहले दोनों कारण ठीक नहीं मालूम होते, क्योंकि इस प्रकार किसी ग्रंथसे अध्यायके अध्याय चुरा लेना असम्भव है और ऐसी चोरी कहीं देखी भी नहीं जाती। जो ऐसी चोरी करेगा वह कुछ हेरफेर भी कर सकता है और उसकी रचना भी ऐसी नहीं है जिसमें कुछ फेरफार न हो सकता हो। और केवल अट्ठाईस अध्यायोंका एक ही रूप इन दोनों पुराणोंमें देखनेसे चोरीकी बात मनमें उठ सकती थी, पर और भी कई पुराणोंमें श्लोकोंका यह हेलमेल देखनेमें आता है। घटनाओंके सम्बन्धमें भी पुराणोंका आपसमें कहीं तो बड़ा भारी मेल है और कहीं उतना ही विरोध भी है। इससे सिद्ध होता है कि पहले एक पुराणसंहिता थी जिसके विषयमें पहले मैं कह चुका हूं। वह पुराणसंहिता कृष्णद्वैपायन व्यासकी बनायी न भी हो सकती है। पर यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वह बहुत प्राचीन समयमें रची गयी थी। क्योंकि आगे चलकर मैं दिखाऊंगा कि पुराणोंमें लिखी हुई अनेक घटनाओंका अखण्डनीय प्रमाण महाभारतमें मिलता है, पर उनका पूरा विवरण उसमें नहीं है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि पुराण बनानेवालोंने वह घटनाएं महाभारतसे ली हैं।

यदि हम विलायती ढङ्गसे पुराणोंके संग्रह किये जानेका समय

निरूपण करें तो क्या फल निकलेगा, अब वह भी जरा देख लेना चाहिये। विष्णुपुराणके चौथे अंशके चौबीसवें अध्यायमें मगधके राजाओंकी वंशावलीका वर्णन है। विष्णुपुराणमें जो वंशावलियां हैं वह भविष्यद्वाणीके ढंगपर लिखी गयी हैं। अर्थात् विष्णुपुराणका प्रणेता इस प्रकार भूमिका लिखता है मानों वेदव्यासके पिता पराशर कलिकालके आरम्भमें उसे लिख रहे हैं। उस समय नन्दवंशके आधुनिक राजाओंने जन्म ग्रहण नहीं किया था। किन्तु उक्त राजाओंके समय या पश्चात्के क्षेपककारोंकी यही इच्छा थी कि नन्दवंशके राजाओंके नाम उसमें आ जायं। पर भविष्यद्वाणीका आडम्बर किये बिना यह काम नहीं हो सकता था और न वह पराशरकृत ही कहला सकता था। इसीलिये संग्रह करनेवाले या क्षेपक मिलानेवाले राजाओंके बारेमें लिखते हैं कि पहले अमुक राजा होगा, उसके बाद अमुक होगा और फिर अमुक होगा। उन्होंने जिन राजाओंके नाम लिये हैं उनमेंसे कितनोंके ही नाम इतिहासमें मिलते हैं। और उनके राज्यके सम्बन्धमें बौद्धग्रंथ, यवनग्रंथ, संस्कृतग्रंथ, शिलालेख आदि बहुत प्रकारके प्रमाण मिल चुके हैं।

नन्द महापद्म, मौर्य्य चन्द्रगुप्त, विन्दुसार, अशोक, पुष्पमित्र, पुलिमान, शकवंशी राजा, अन्ध्रवंशी राजा प्रभृतिके नामोंके बाद लिखा है --

"नवनागः पद्मत्वात् कान्तिपूर्यां मथुरायामनुगङ्गाप्रयागं

मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति। (१)" इन्हीं गुप्तवंशी राजाओंका समय फ्लीट (Fleet) साहबने कृपाकर ठीक किया है। इस वंशका पहला राजा महाराजगुप्त था। उसके बाद घटोत्कच और चन्द्रगुप्त: विक्रमादित्यने राज्य किया। फिर समुद्रगुप्त राजगद्दीपर बैठा। यह सब राजा ईसवी सन्‌की चौथी शताब्दीमें हुए थे। पांचवीं शताब्दीमें द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त और बौद्धगुप्त हुए। यह सब राजा हुए या हैं यह जाने बिना पुराणकार कभी ऐसा नहीं लिख सकते थे। इसलिये यह गुप्तोंके समयके हैं या उनके बादके। यदि ऐसी बात हो तो यह पुराण ईसवी सन्‌की चौथी या पांचवीं शताब्दीमें बने थे। परन्तु यह हो सकता है कि इन गुप्त राजाओंके नाम विष्णुपुराणके चौथे अंशमें पीछे मिला दिये गये हों। यह भी हो सकता है कि,चौथा अंश एक समय बना और बाकी अंश किसी दूसरे समय। पीछे सब एकत्र किये गये और उसका नाम विष्णुपुराण रख दिया गया। यह कब एकत्र हुआ, इसका कुछ ठिकाना नहीं। आजकल भी यूरप तथा यहां ऐसा होता है। समय समयपर जो लिखा जाता है उसे संग्रह कर एक ग्रंथ बना लिया जाता है और फिर उसका एक नया नाम रख दिया जाता है। जैसे अंग्रेजीमें "परसी रेलिक्स"(Percy reliques)और बंगलामें रसिकमोहन

---

(१) विष्णुपुराण, ४ अंश २४ अ० १८ श्लो०।

चट्टोपाध्याय संकलित “फलित ज्योतिष” है (१)। मेरे विचारमें सब पुराण ही इस प्रकारके संग्रह हैं। उक्त दोनों पुस्तकें आधुनिक संग्रह हैं, पर जो विषय उनमें संगृहीत हुए हैं वह सब प्राचीन हैं। संग्रह आधुनिक होनेसे विषय आधुनिक नहीं हो गये।

हां, ऐसा अकसर हो जाता है कि संग्रहकर्त्ता अपनी बनायी चीजें संग्रहमें घुसेड़ देते हैं या पुरानी बातोंको नोनमिर्च लगाकर नये सांचेमें ढाल देते हैं। विष्णुपुराण इस दोषसे बच गया है, परन्तु भागवत उसमें बेतरह फंस गया है।

लोग कहते हैं कि भागवत बोपदेवका बनाया है। बोपदेव देवगिरिके राजा हेमाद्रिके सभासद थे। यह तेरहवीं शताब्दीमें हुए थे। पर बहुतसे हिन्दू भागवतको बोपदेवका बनाया नहीं मानते हैं। वैष्णवोंका कहना है कि भागवतद्वेषी शाक्तोंने यह बात उडायी है।

भागवतके पुराण होनेके बारेमें बड़े झगड़े हुए हैं। शाक्त कहते हैं; यह पुराण ही नहीं है, देवीभागवत ही भागवत पुराण है। वह लोग “भगवत इदं भागवतं” न कह “भगवत्या इदं भागवतं” कह अर्थ करते हैं।

कुछ लोग इस प्रकारकी शंका करते हैं। इसीसे श्रीधर स्वामी भागवतके पहले श्लोककी टीकामें लिखते हैं “भागवतं नामान्य-

---

(१) हिन्दीमें कविवर लल्लूलालकृत “सभाविलास है।”

(भा० का०)

दित्यपि नाशङ्कनीयम्।" इससे यह समझना होगा कि श्रीधर स्वामीके पहलेसे ही यह झगड़ा है कि भागवत पुराण नहीं है, देवी भागवत ही असली पुराण है। उस समय दोनों पक्षवालोंने अपने अपने पक्षके समर्थनमें जो पुस्तकें लिखीं हैं उनके नामोंसे परिमार्ज्जित रुचिका परिचय मिलता है। एक पुस्तकका नाम है "दुर्ज्जनमुखचपेटिका"। इसके उत्तरमें जो पुस्तकें बनी हैं उनके नाम "दुर्ज्जनमुखमहाचपेटिका" और "दुर्ज्जनमुखपद्मपादुका" हैं। इनके बाद "भागवतस्वरूप-विषय शङ्का-निराशत्रयोदशः" आदि कई पुस्तकें बनी हैं। मैंने यह सब पुस्तकें नहीं देखी हैं, पर यूरपके विद्वानोंने देखी हैं और बोरनफ (Bournouf) साहबने "चपेटिका," "महाचपेटिका," और "पादुका"का उलथा भी किया है। विलसन साहबने विष्णुपुराणके भाषान्तरकी भूमिकामें इस विवादका सार संग्रह कर दे दिया है। खैर, मुझे इन बातोंसे कुछ मतलब नहीं। जिन्हें शौक हो वह विलसन साहबकी पुस्तक देख लें। मेरे कहनेका निचोड़ यही है कि भागवतमें भी बहुत सी पुरानी बातें हैं। पर उसमें नयी भी बहुत सी मिलायी गयी हैं। जो पुरानी हैं वह भी नोनमिर्च लगाकर चरपरी कर दी गयी हैं। भागवत और पुराणोंसे नया मालूम होता है। अगर ऐसा न होता तो इसके पुराण होनेके बारेमें इतना झगड़ा क्यों उठता?

जिन पुराणोंमें कृष्णचरित्रकी चर्चा नहीं है उनकी आलोचना व्यर्थ है। जिन पुराणोंमें कृष्णचरित्रकी कुछ भी चर्चा है उनमेंसे

ब्रह्म, विष्णु, भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तमें ही विस्तृत विवरण है। इन चारोंमेंसे ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराणमें तो एक ही बात है। इसलिये मेरी इस पोथीमें विष्णु, भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तके सिवा और किसी पुराणकी जरूरत नहीं पड़ेगी। इन तीनों पुराणोंके विषयमें जो कहना था सो कह चुका। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके सम्बन्धमें आगे चलकर और भी कुछ कहूंगा। हरिवंशपुराणके बारेमें अभी कुछ नहीं कहा है सो अब कहता हूं।

सोलहवां परिच्छेद।

हरिवंश।

हरिवंशमें ही लिखा है कि महाभारत कहे जानेके बाद उग्रश्रवाने शौनकादि ऋषियोंकी प्रार्थनापर हरिवंश कहा था। इससे यह महाभारतके पीछेका है। पर महाभारतसे कितना पीछे बना इसका निरूपण होना आवश्यक है। महाभारतके पर्व्वसंग्रहाध्यायके केवल अन्तिम श्लोकमें हरिवंशका उल्लेख है। यह श्लोक नवें परिच्छेदमें दे चुका हूं। महाभारतके अठारहों पर्वोंके सब विषयोंका संक्षिप्त वर्णन पर्व्वसंग्रहाध्यायमें है, पर हरिवंशके सब विषयोंका नहीं है। इन श्लोकोंके पढ़नेसे जान पड़ता है कि पर्व्वसंग्रहाध्याय बननेके समय हरिवंशकी कोई चर्चा नहीं थी। एक लाख श्लोक मिलानेके लिये किसीने अन्तमें यह

श्लोक जोड़ दिया है। हरिवंशपर्व्व, विष्णुपर्व्व और भविष्यपर्व्व यह तीन पर्व्व हरिवंशमें इस समय हैं। परन्तु महाभारतके पूर्व्वोक्त श्लोकोंमें केवल हरिवंशपर्व्व और भविष्यपर्व्वके नाम हैं, विष्णुपर्व्वका नहीं है। लिखा है कि हरिवंश और भविष्यमें बारह सहस्र श्लोक हैं। इस समय तीनों पर्व्वोंमें सोलह सहस्रसे अधिक श्लोक मिलते हैं। इससे निश्चय हो महाभारतमें यह श्लोक घुसेड़े जानेके बाद ही हरिवंशमें विष्णुपर्व्व मिलाया गया है।

कालीप्रसन्न सिंह महोदयने अठारहों पर्व्व महाभारतके बंगला भाषान्तरके साथ हरिवंशका भाषान्तर नहीं छापा। इसका कारण उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

"बहुत लोग महाभारतके अठारहों पर्व्वोंके सिवा हरिवंशको भी उसका अंश मानते हैं और उसे आश्चर्य्य या उन्नीसवां पर्व्व कहते हैं। परन्तु वास्तवमें हरिवंश महाभारतका पर्व्व नहीं है। मूल महाभारत बननेके बहुत दिनों बाद वह उसमें परिशिष्टकी तरह जोड़ दिया गया है। विचक्षण व्यक्ति हरिवंशकी रचनाप्रणाली तथा उसके तत्वकी आलोचना करनेसे उसका आधुनिक होना अनायास ही समझ सकेंगे। मूल महाभारतके स्वर्गारोहणपर्व्वमें यद्यपि हरिवंशश्रवणका फल लिखा है तथापि इससे हरिवंशका प्राचीन होना सिद्ध नहीं होता। उलटे फलवर्णनका नया होना सिद्ध होता है। मूल महाभारतके उल्थेके साथ हरिवंशका उल्था रहनेसे लोगोंका भ्रम और भी दृढ़ हो जायगा, इसलिये हरिवंशका उल्था अभी नहीं दिया गया।"

विलसन साहब हरिवंशके विषयमें लिखते हैं—

"The internal evidence is strongly indicative of a date considerably subsequent to that of the major portion of the Mahabharata. (१)

मेरा भी यही विचार है। और हरिवंशको महाभारतके थोड़े दिन बादका मान लेनेसे भी यह सन्देह होता है कि विष्णु-पर्व्व उसमें बहुत दिनों पीछे जोड़ दिया गया है। इस सन्देहके कारण भी हैं। इन्हें दूर कर इन बातोंका निश्चय करना टेढ़ी खीर है।

सुबन्धुकृत वासवदत्तामें हरिवंशके पुष्कर-प्रादुर्भावका उल्लेख है। यूरपवालोंने स्थिर किया है कि सुबन्धु ईसवी सन्-की सातवीं शताब्दीमें हुआ था। इसलिये हरिवंश उस समय भी प्रचलित था। पर यह कब बना था इसका ठिकाना नहीं है। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह महाभारत और विष्णुपुराणके बादका और भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तके पहलेका है।

किस प्रमाणके भरोसे मैं यह कहनेका साहस करता हूं, यह बतलाना बड़ा कठिन है। कृष्णचरित्रके विचारका मूलमन्त्र भी

---

(१) Horace Hayman Wilson's Essays Analytical, Critical, Philosophical on subjects connected with Sanskrit Literature. Vol I, Dr. Reinhold Rost's Edition.

इसे ही कहना चाहिये। अगले परिच्छेदमें यही समझानेका प्रयत्न करूंगा।

सतरहवां परिच्छेद

इतिहासका पूर्व्वापर क्रम।

उपनिषद्‌में जहां सृष्टिका प्रसङ्ग आया है वहां लिखा है, जगदीश्वर एक था, बहुत होनेकी इच्छासे उसने जगत्‌को सृष्टि की (१)। यह प्रसिद्ध अद्वैतवादकी मोटी बात है। यूरपके वैज्ञानिक और दार्शनिक लोग बहुत खोज ढूंढ़के बाद इस अद्वैतवादके निकट आ रहे हैं। वह लोग कहते हैं, जगत्‌के आरम्भमें सब एक था। पीछे धीरे धीरे बहुत हो गये। प्रसिद्ध विकासवाद (Evolution) का यही स्थूल सिद्धान्त है। एकसे बहुत हुए कहनेसे केवल गिनतीमें बहुत नहीं बल्कि एकांगित्व और बहुअङ्गित्व समझना होगा। जो अभिन्न था, वह भिन्न भिन्न अङ्गोंमें परिणत हो गया। जो समजातिक (Homogeneous) था वह इतरजातिक (Heterogeneous) हुआ। जो एकाकार (Uniform) था वह अनेकाकार (Multifarious) हो गया। केवल जड़ जगत्‌के लिये यह नियम नहीं है, यह जीवजगत्, मानस-

(१) सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति। तैत्तिरीयोपनिषद्, २ बल्ली, ६ अनुवाक।

जगत्, समाजजगत् सबके लिये है। समाजजगत्के अन्तर्गत जो कुछ है उसके लिये भी यही नियम है। साहित्य और विज्ञान समाजजगत्के अन्तर्गत हैं, उनके लिये भी यही है। उपन्यास या आख्यान साहित्यके अन्तर्गत है, उसके लिये भी यही है। यहांतक कि बाजारू गप्पके लिये भी यही नियम है। राम अगर श्यामसे कहे कि "मैं कल रातको अन्धेरेमें सोया था, कुछ खटका हुआ जिससे मैं डर गया था।" तो श्याम अवश्य ही मोहनसे जाकर कहेगा कि "रामके घर कल रातको भूतका खटका हुआ था।" इसके बाद यही सम्भव है कि मोहन सोहनसे जाकर कहेगा, "कल रातको रामने भूत देखा।" फिर सोहन राधेसे कहेगा, "रामके घर भूतका बड़ा उपद्रव होता है।" अन्तमें तमाम यह बात फैल जायगी कि भूतके उपद्रवसे रामके घरवाले बड़े दुःखी हो गये हैं।

यह तो हुई बाजारू गप्पकी बात, अब प्राचीन उपाख्यानोंकी लीला सुनिये। इनके फैलनेका एक विशेष नियम देखनेमें आता है। पहली अवस्थामें तो नामकरण होता है, जैसे विष् धातुसे विष्णु। दूसरी अवस्थामें रूपक बनता है जैसे विष्णुके तीन पैर। सूर्य्यकी तीन अवस्थाएं हैं उदय, मध्याह्नस्थिति और अस्त। कोई कहता है कि यही तीन अवस्थाएं विष्णुके तीन पैर हैं। कोई कहता है कि ईश्वर तीनों लोकमें व्याप्त हैं इसलिये विष्णुके तीन पैर कहे गये हैं। कोई कहता है कि भूत, वर्त्त-मान और भविष्यत् यही विष्णुके तीन पैर हैं इत्यादि। तीसरी

अवस्थामें इतिहास बना जैसे बलि वामनका वृत्तान्त। चौथी अवस्थामें इतिहासका अतिरञ्जन हुआ, जैसे पुराणादि।

इसका एक और उदाहरण उर्व्वशी पुरूरवाकी कथा है। इसकी पहली अवस्था यजुर्व्वेद संहितामें हैं। उसमें दो अरणियां ही उर्व्वशी-पुरूरवा हैं। वैदिक कालमें दियासलाई नहीं थी और न चकमक पत्थर ही था! अगर यह दोनों चीजें थीं भी तो कमसे कम यज्ञको अग्निके लिये यह काममें नहीं लायी जाती थीं। लकड़ीसे लकड़ी रगड़कर यज्ञको अग्नि निकाली जाती थी। इसका नाम है "अग्निचयन।" अग्निचयनके मन्त्र हैं। यजुर्व्वेद संहिताकी माध्यन्दिनी शाखाके पांचवें अध्यायके दूसरे काण्डमें यह मन्त्र हैं। तीसरे मन्त्रसे एक अरणीकी और पांचवें मन्त्रसे दूसरी अरणीकी पूजा की जाती है। इन दोनों मन्त्रोंका उलथा यों है-

"हे अरणी! अग्निकी उत्पत्तिके निमित्त हमने तुम्हें स्त्री माना है। ३" (उत्पत्तिके लिये केवल स्त्री ही नहीं पुरुष भी चाहिये। इसलिये ऊपर कही हुई स्त्री-अरणीपर दूसरी अरणी रखकर कहना होगा)

"हे अरणी! अग्नि उत्पन्न करनेके हेतु हमने तुम्हें पुरुष माना है (१)।" चौथे मन्त्रमें अरणिस्पृष्ट आज्यका नाम आयु है।

यह हुई पहली अवस्था। दूसरी अवस्था ऋग्वेदसंहिताके

---

(१) सत्यव्रत सामाश्रमीके बङ्गला उल्थेसे।

(१) दसवें मण्डलके ६५ सूक्तमें है। यहां उर्व्वशी और पुरूरवा अरणियां नहीं रहीं। यह अब नायक नायिका हो गये। पुरूरवा उर्व्वशीके विरहसे शंकित हैं। यही रूपक अवस्था है। उर्व्वशी (पहली ऋचामें) कहती है, "हे पुरूरवा, तुम मुझसे प्रतिदिन तीन वार रमण करते थे।" इससे यज्ञकी तीनों अग्नियां सूचित होती हैं (२)। उर्व्वशी पुरूरवाको "इलापुत्र" कहकर सम्बो-

(१) अंग्रेज लोग कहते हैं कि ऋग्वेदसंहिता और सब संहिताओंसे पुरानी है। इसका मतलब यह नहीं है कि ऋग्वेदसंहिताके सब सूक्त साम और यजुसंहिताके सब मन्त्रोंसे पुराने हैं। यदि कोई इसका यही मतलब समझता या कहता हो तो उसका यह भ्रम है। इसका असल मतलब यह है कि ऋक्-संहितामें ऐसे कई सूक्त हैं जो वेद-मन्त्रोंसे पुराने हैं। नहीं तो ऋक्संहितामें ऐसे भी अनेक सूक्त मिलते हैं जिन्हें अंग्रेज लोग भी स्पष्टरूपसे नवीन मानते हैं। बहुतेरे सूक्त यजुःसामवेदसंहितामें भी हैं और ऋग्वेदसंहितामें भी हैं। एक संहिता दूसरी संहितासे पुरानी नहीं है ; हां, कुछ मन्त्र कुछ मन्त्रोंसे अवश्य पुराने हैं। पुराने मन्त्र ऋक्संहितामें अधिक हैं, पर उसमें ऐसे भी बहुत मन्त्र हैं जो यजुः सामके मन्त्रोंसे नये हैं। दसवें मण्डलका ६५ श्लोक इसका उदाहरण है।

(२) मोक्षमूलर आदि इस रूपकका अर्थ करते हैं कि उर्व्वशी ऊषा और पुरूरवा सूर्य्य हैं। Solar myth को यह लोग किसी तरह छोड़ना नहीं चाहते हैं। यजुके जो मन्त्र उद्धृत कर

धन करती है। इला शब्दका अर्थ पृथ्वी है (१)। पृथ्वीका भी पुत्र अरणि है।

महाभारतमें पुरूरवा ऐतिहासिक चन्द्रवंशी राजा है। चन्द्रका पुत्र बुध, बुधका पुत्र इला, और इलाका पुत्र पुरूरवा है। उर्वशीके गर्भसे इसके पुत्र हुआ जिसका नाम आयु है (२)। ऊपर यजु:का जो मन्त्र दिया है उसके देखनेसे पाठक समझ जायंगे कि आयु वही अरणिस्पृष्ट आज्य है और कुछ नहीं। महाभारतमें आयुका पुत्र प्रसिद्ध नहुष है। और नहुषका ययाति। ययातिके पुत्रोंमेंसे दोके नाम यदु और पुरु हैं। यदु यादवोंके और पुरु कौरव पाण्डवोंके आदिपुरुष हैं। यही तीसरी अवस्था है। इसमें अरणि ऐतिहासिक सम्राट् है।

चौथी अवस्था विष्णु, पद्म आदि पुराण हैं। पुराणोंमें तीसरी अवस्थाके इतिहास उपन्यासके ढङ्गपर नोनमिर्च लगाकर लिखे गये हैं। इसके दो नमूने लीजिये। पहला यह है—

"इन्द्रकी सभामें उर्वशी नाचती नाचती महाराज पुरूरवापर मोहित हो बेताल हो गयी। इसपर इन्द्रने क्रुद्ध हो शाप दिया जिससे वह स्वर्गसे गिर पुरूरवाके साथ पचपन वर्ष रही थी।"

चुका हूं उनसे तथा तीन वार संसर्गकी बातसे पाठक देखें कि इस रूपकका असली अर्थ ही ऊपर दिया गया है।

(१) सर्पमांसात् पशू व्याड़ौ गोभू:वाचस्त्विडा इला इत्यमर:।

(२) कहीं कहीं "आयु:" लिखा है।

दूसरा नमूना यह है—

पूर्व्व कालमें किसी समय भगवान विष्णु धर्मपुत्र हो गन्ध-मादन पर्व्वतपर बड़ी तपस्या करते थे। इन्द्र उनकी उग्र तपस्यासे भयभीत हुए। उन्होंने तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये वसन्त और कामदेवको कुछ अप्सराओंके साथ भेजा। जब अप्सराएं उनका ध्यान भङ्ग न कर सकीं तब कामदेवने अप्सराओंके उरूसे उर्व्वशीको उत्पन्न किया। इसने उनका तपो-भङ्ग किया। इससे इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और इसके रूपपर मोहित हो उसे लेना चाहा। यह भी राजी हो गयी। पीछे मित्र और वरुणने भी वही बात कही जिसे उसने अस्वीकार किया। इसपर उन दोनोंने शाप दिया। बस, उसी शापके वश वह मनुष्यकी पत्नी अर्थात् पुरूरवाकी रानी हुई।"

इन बातोंकी आलोचनासे साफ मालूम होता है कि यजुर्वेद-संहिताके पांचवें अध्यायके मन्त्र सबसे प्राचीन हैं। इसके बाद ऋग्वेद-संहिताके दसवें मण्डलके ६५ सूक्त हैं। फिर महाभारत और फिर पद्मादि पुराण हैं।

हम जिन ग्रंथोंके भरोसे कृष्णचरित्र समझानेकी चेष्टा करेंगे उनका पूर्वापर क्रम इसी नियमके अनुसार निर्धारित किया जा सकता है। दो एक उदाहरण दे यह समझा देता हूं।

पहला उदाहरण पूतनावधका वृत्तान्त है।

इसकी पहली अवस्था किसी ग्रंथमें नहीं, केवल कोषमें ही है, जैसे विष् धातुसे विष्णु। पीछे पूतना यथार्थमें सूतिकागृहके

बच्चेका रोग है। पर पूतना शकुनिका भी नाम है। इसलिये महाभारतमें पूतना शकुनि है। विष्णुपुराणमें वह एक सीढ़ी और भी आगे बढ़ी अर्थात् रूपक बनी। पूतना "बालघातिनी" अर्थात् बालक मारनेवाली हुई, वह "अति भयानक" है, उसका शरीर विशाल है। (१) नन्द उसे देखकर भयभीत और चकित हो गये। तोभी वह मानवी थी। हरिवंशमें दोनों बातें मिल गयीं। पुतना मानवी है सही, पर कंशकी धात्री है। वह पक्षी बनकर व्रज आयी थी। रूपक यहींतक रहा। इसके बाद आख्यान या इतिहास है। तीसरी अवस्था पहले यहीं हुसी। पीछे भागवतमें उसकी पराकाष्ठा हुई। पूतना न रोग है, न पक्षी है और न मानवी ही है। वह भयंकर राक्षसी है। उसका शरीर छः कोस लम्बा है, लम्बे लम्बे दांत हैं, नाकके छेद पहाड़की गुफाकी तरह, स्तन दोनों छोटी छोटी पहाड़ियोंकी तरह, नेत्र अन्धकूपके सदृश, पेट जलरहित तालाबकी तरह है। एक रोग धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते इतनी बड़ी राक्षसी बन गया। पाठक यह देखकर जरूर आनन्दित होंगे, पर साथ ही स्मरण रखेंगे कि यह चौथी अवस्था है।

इससे मालूम होता है कि पहले महाभारत, पीछे विष्णुपुराणका पांचवां अंश, फिर हरिवंश और सबके पीछे भागवत बना है।

---

(१) एक टीकाकारने टीकामें 'राक्षसी" लिखा है। पर मूल विष्णुपुराणमें यह नहीं है।

अच्छा एक उदाहरण और लीजिये। काल शब्दमें ईय प्रत्यय लगानेसे "कालीय" शब्द बनता है। कालीयका नाम महाभारतमें नहीं है। विष्णुपुराणमें उसका वृत्तान्त है। पढ़नेसे जाना जा सकता है कि यह काल और कालका भय निवारण करनेवाले कृष्णके पादपद्मका रूपक है। सांपके एक ही फन होता है, पर विष्णु पुराणमें "बीचका फन" लिखा है। बीचका कहनेसे तीन फन मालूम होते हैं। भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् यही कालीयके तीन फन हो सकते हैं। किन्तु हरिवंशकारने रूपकका असल अर्थ न समझ या उसमें नवीन अर्थ लानेकी इच्छासे तीनके पांच फन कर दिये। भागवतकारने इतनेसे तृप्त न होकर एकदम एक हजार फन बना (१) दिये।

अब तो कह सकता हूं कि पहले महाभारत, पीछे विष्णुपुराणका पांचवां अंश, फिर हरिवंश और सबके बाद भागवत है।

अब और उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं। कृष्णचरित्र पढ़ते पढ़ते आप ही अनेक उदाहरण मिल जायंगे। असल बात यह है कि जिन ग्रंथोंमें निर्मूल, अस्वाभाविक और अलौकिक बातें जितनी अधिक मिल गयी है वह उतने ही नये हैं। इसी नियमके अनुसार आलोचना करनेके योग्य जितने ग्रंथ हैं उनका क्रम इस प्रकार स्थिर होता है।

(क) महाभारतकी पहली तह।

(ख) विष्णुपुराणका पांचवा अंश।

---

(१) मूल भागवतमें तो का[illegible] के [illegible] फन लिखे हैं। भा० का०

(ग) हरिवंश ।

(घ) श्रीमद्भागवत ।

इनके सिवा और कोई ग्रंथ काममें लाना उचित नहीं है । महाभारतकी दूसरी और तीसरी तहें बेजड़ होनेके कारण निकम्मी हैं। पर उन्हें बेजड़ साबित करनेके लिये उनकी आलोचना भी कहीं कहीं की जायगी । ब्रह्मपुराणका कुछ प्रयोजन नहीं, क्योंकि जो विष्णुपुराणमें है वही इसमें भी है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण परित्यागके योग्य है, क्योंकि असली ब्रह्मवैवर्त नहीं मिलता है। पर तोभी श्रीराधाकी कथाके लिये एक बार उससे भी काम लेना होगा। और पुराणोंमें कृष्णकी कथा बहुत संक्षेपसे है, इसलिये उनसे कुछ मतलब नहीं। विष्णुपुराणके पांचवें अंशके सिवा चौथे अंशकी भी जरूरत स्यमन्तक मणि, सत्यभामा और जाम्बवतीकी कथाओंके कारण पड़ेगी।

पुराणोंके क्षेपकका निर्णय करना बड़ा कठिन है। महाभारतमें जो लक्षण मिले हैं, वह हरिवंश तथा पुराणोंमें पाना कठिन है। परन्तु महाभारतके लिये जो दो नियम (१) बनाये हैं कि जो स्वभावके विरुद्ध है उसे अनैतिहासिक और अलौकिक समझ छोड़ना होगा तथा जो स्वाभाविक है उसमें भी यदि मिथ्या होनेके लक्षण पाये जायं तो उसे भी छोड़ना होगा। बस वही पुराणोंके लिये भी होंगे।

अब कृष्णचरित्र लिखनेमें हाथ लगाता हूं।

---

(१) पृष्ठ ८४

द्वितीय खण्ड ।

या मोहयति भूतानि स्नेहपाशानुबन्धनैः ।

सर्गस्य रक्षणार्थाय तस्मै मोहात्मने नमः ॥

शान्ति पर्व ४७ अध्याय ५

वृन्दावन ।

पहला परिच्छेद ।

यदुवंश

प्रथम खण्डमें पुरूरवाके पुत्र आयुकी बात लिखी जा चुकी है। यजुर्वेदमें आयु यज्ञका घृत मात्र है। परन्तु ऋग्वेद संहिताके दसवें मण्डलमें वह ऐतिहासिक राजा है। दसवें मण्डलके उनचासवें सूक्तका ऋषि वैकुण्ठ इन्द्र है। इन्द्र कहता है, "मैंने वेशको आयुके वशीभूत कर दिया।"

आयुका पुत्र नहुष और नहुषका ययाति है। नहुष और ययाति इन दोनोंके नाम ऋग्वेद संहितामें हैं। इतिहास और पुराणोंमें लिखा है कि ययातिके पांच लड़के थे। बड़ेका नाम यदु और छोटेका पुरु था। बाकी तीनके नाम तुर्व्वसु, द्रुह्यु और अणु थे। इनमेंसे पुरु, यदु और तुर्व्वसुके नाम ऋग्वेद संहितामें हैं (मण्डल १०, सूक्त ४८। ४९)। पर इसमें यह नहीं लिखा है कि यह ययातिके पुत्र हैं और आपसमें भाई हैं।

लिखा है कि ययातिके चार पुत्रोंने पिताकी आज्ञा न मानी इसलिये ययातिने चार पुत्रोंको शाप दे सबसे छोटे पुत्र पुरुको राज्यका अधिकारी बनाया। इसी पुरुके वंशमें दुष्यन्त, भरत,

कुरु और अजमीढ़ आदि राजा हुए। दुर्योधन और युधिष्ठिरादि कौरव इसी पुरुवंशके हैं। और कृष्ण आदि यादव यदुके वंशके हैं। पुराणोंमें और इतिहासमें साधारण तौरसे यही लिखा है कि ययातिके पुत्र यदुसे मथुराके यादवोंकी उत्पत्ति हुई।

पर हरिवंशमें कुछ और ही लिखा है। हरिवंशके हरिवंश-पर्व्वमें जिस यदुवंशका वर्णन है वह ययातिपुत्र यदुके वंशका ही है। पर विष्णुपर्व्वमें कुछ दूसरी ही बात है। उसमें लिखा है कि इक्ष्वाकुवंशका हर्य्यश्व अयोध्याका राजा था। उसने मधु-वनके राजा मधुकी कन्या मधुवतीसे व्याह किया। मधुवन नाम मथुराका ही है। हर्य्यश्व किसी कारणसे अयोध्या छोड़ मथुरा जा बसा। उसका पुत्र यदु हुआ। पिताके मरनेपर यदु राजा हुआ। यदुका पुत्र माधव, माधवका सत्त्वत और सत्त्वतका भीम था। मधुके पुत्र लवणको रामके भाई शत्रुघ्नने जीतकर मथुरा नगर बसाया। हरिवंशमें लिखा है कि राघवोंके मथुरा छोड़ जानेपर भीमने फिर उसपर अधिकार जमाया और उसके वंशवाले यादव कहलाये।

ऋग्वेद संहिताके दसवें मण्डलके ६२ वें सूक्तमें यदु और तुर्वा (तुर्व्वसु) यह दो नाम हैं (१० ऋचा) पर वहां इन्हें दास जातिका राजा बताया है।

पर इसी मण्डलके ४६ वें सूक्तमें इन्द्र कहता है "तुर्व्वसु और यदु इन दोनोंको बलवान होनेके कारण मैंने प्रसिद्ध किया (६ ऋचा)" इस सूक्तकी तीसरी ऋचामें है "मैंने दस्यु जातिको

'आर्य्य' नामसे वञ्चित रखा।" (१) उन्होंने दास जातिके राजाओंको प्रसिद्ध किया इससे क्या मतलब निकलता है? यदु आर्य्य था या अनार्य्य, यह कुछ समझमें नहीं आया।

फिर प्रथम मण्डलके ३६वें सूक्तमें १८वीं ऋचाका अर्थ यों है—

"हम तुर्व्वसु, यदु और उग्रदेवको दूरसे अग्निके द्वारा आवाहन करते हैं।" आर्य्य ऋषियोंका अनार्य्य राजाओंसे ऐसा कहना क्या सम्भव है?

जो हो यदु नामके तीन मनुष्य मिलते हैं—

(क) ययातिका पुत्र यदु।

(ख) ईक्ष्वाकुवंशका यदु।

(ग) अनार्य्य राजा यदु।

कृष्ण किस यदुवंशमें हुए, यह निर्णय करना टेढ़ी खीर है। जब इनका ठिकाना मथुराके सिवा और कहीं नहीं मिलता और मथुरा इक्ष्वाकुवंशीयोंकी बसायी है तब यह जोरके साथ नहीं कहा जा सकता कि यह यादव ईक्ष्वाकुवंशके नहीं हैं।

चाहे जिस यदुके वंशमें कृष्ण हुए हों, पर मधु, सात्वत, वृष्णि अन्धक, कुक्कुर और भोज उसी वंशके थे जिसके कृष्ण हैं। वृष्णि, अन्धक, कुक्कुर और भोजवंशी मथुरामें मिलजुलकर रहते थे कृष्ण वृष्णिवंशी थे, कंस और देवकी भोजवंशी। कंस और देवकीके दादा एक ही थे।

---

(१) इन कई ऋचाओंका उल्था रमेश बाबूके उल्थेसे लिया गया है।

दूसरा परिच्छेद ।
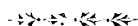
कृष्णका जन्म ।

कंसका पिता उग्रसेन यादवोंका राजा था। कृष्णका पिता वसुदेव देवकीका पति था।

ब्याह हो जानेपर वसुदेव देवकीको ले घर जाता था। कंस प्रेमके मारे बहनका रथ स्वयं हांकता जाता था। इतनेमें आकाशवाणी हुई कि देवकीका आठवां पुत्र कंसको मारेगा। बस कंस देवकीका वध करनेके लिये तय्यार हो गया, क्योंकि उसने सोचा कि न रहे बांस और न बजे बांसुरी। वसुदेवने समझा बुझाकर उसे शान्त किया और प्रतिज्ञा की कि देवकीके जितने पुत्र होंगे सब तुम्हें दे दूंगा। इसपर कंसने देवकीको मारा तो नहीं पर उसे और उसके पति वसुदेवको कैद कर रखा। देवकीके छ लड़के हुए। कंसने छओं लड़के मार डाले। सातवां लड़का गर्भमें ही नष्ट हो गया। पुराणोंमें लिखा है कि विष्णुके आज्ञानुसार योगनिद्राने वह गर्भ खींचकर वसुदेवकी दूसरी स्त्रीके गर्भमें डाल दिया।

उस दूसरी स्त्रीका नाम रोहिणी था। मथुराके पास ही नन्द नामक गोप रहता था। उससे वसुदेवका बड़ा हेल मेल था। वसुदेव रोहिणीको नन्दके घर छोड़ आया था। वहीं रोहिणीने पुत्र जना। उसका नाम बलराम हुआ।

देवकीके आठवें गर्भमें श्रीकृष्ण आविर्भूत हुए। यथासमय

रातको कृष्णका जन्म हुआ। वसुदेव उसी समय उन्हें नन्दके घर ले गया। नन्दकी स्त्री यशोदाने उसी दिन बेटी जनी थी। पुराणोंमें लिखा है कि वह वैष्णवीशक्ति योगनिद्रा थी। इसने यशोदाको मुग्ध कर रखा और वसुदेव पुत्रको वहां छोड़ कन्याको अपने घर ले आया। वसुदेवने वही कन्या कंसको दी। कंस इसे मार न सका। योगनिद्रा आकाशमें जाकर बोली कि तेरा मारनेवाला पैदा हो गया। इसके बाद कंसने बहनको छोड़ दिया। कृष्ण नन्दके घर रहने लगे।

यह सब बातें अस्वाभाविक हैं; जो नियम पहले बना आया हूं उनके अनुसार इन्हें छोड़नेके लिये मैं लाचार हूं। पर इसमें ऐतिहासिक तत्व भी कुछ है। मथुराके यदुकुलमें देवकीके गर्भ और वसुदेवके औरससे कृष्णने जन्म लिया। उनके पिता उन्हें बचपनमें नन्दके घर (१) पहुंचा आये थे। यह काम कुछ कंसके मारेजानेवाली आकाशवाणीके कारण था उसके प्राणोंके भयसे उन्हें नहीं करना पड़ा था। भागवत और महाभारतमें स्वयं कृष्णकी उक्ति है कि कंस उस समय बड़ा दुराचारी हो गया था।

(१) कृष्णचरित्रके पहले संस्करणमें कृष्णका नन्दके घर रहना मैंने नहीं माना था। इसके लिये महाभारतसे प्रमाण भी उद्धृत किया था। यह उपयुक्त स्थानपर फिर भी उद्धृत करूंगा। अभी कहना यही है कि विशेष विचार करने पर पहला मत बहुत कुछ बदल गया है। अपनी भ्रान्ति स्वीकार करनेमें मुझे आपत्ति नहीं। क्षुद्रबुद्धियोंको सदा भ्रान्ति होती है।

वह औरंगजेबकी तरह अपने पिता उग्रसेनको हटाकर आप राज-सिंहासनपर बैठ गया था। उसने यादवोंपर ऐसा अत्याचार किया कि वह लोग मथुरा छोड़ दूसरी जगह जा बसे। वसुदेवने भी अपनी दूसरी स्त्री रोहिणी और पुत्रको नन्दके घर रख दिया। श्रीकृष्णको भी कंसके भयसे नन्दके घर छिपा रखा था। यह सम्भव तथा ऐतिहासिक हो सकता है।

तीसरा परिच्छेद।

वचपन।

कृष्णके वचपनकी कितनी ही अस्वाभाविक कथाएं पुराणोंमें लिखी हैं। एक एक कर उनका वर्णन करता हूं।

(क) पूतनावध। पूतना कंसकी भेजी हुई राक्षसी थी। वह परम सुन्दरी बनकर कृष्णको मारनेके लिये नन्दके यहां पहुंची। उसके स्तनोंमें विष लगा था। वह कृष्णको दूध पिलाने लगी। कृष्णने ऐसे जोरसे दूध पीया कि पूतनाके प्राण निकल गये। मरनेके समय पूतनाने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। उसका शरीर छ कोस लम्बा हो गया था।

महाभारतके शिशुपालवध पर्व्वाध्यायमें भी पूतनावधकी चर्चा है। शिशुपालने पूतनाको शकुनी कहा है। शकुनी कहनेसे गिद्ध, चील तथा मांस खानेवाले पक्षी भी समझे जाते हैं।

जबरदस्त लड़केका छोटा मोटा पक्षी मार डालना कुछ बड़ी बात नहीं है। पूतनाका अर्थ जमूरा (जमोघा) भी है। यह जन्मते बालकका रोग है। यह सबको मालूम है कि जोरसे दूध पी लेनेपर यह रोग फिर नहीं ठहरता। शायद इसीका नाम पूतना-वध है।

(ख) शकटभञ्जन। यशोदाने कृष्णको एक शकटके नीचे सुला दिया। वह कृष्णके लात फटकारनेसे उलटकर गिर पड़ा। ऋग्वेद संहितामें ऐसी ही एक कथा है। उसमें इन्द्रने ऊषाका शकटभञ्जन किया था। कृष्णका शकट गिराना कदाचित् इसीका नया रूप है। कृष्णकी लीलाओंमें बहुतसे वैदिक उपाख्यान मिल गये हैं। ऐसा सोचनेका कारण है।

(ग) यशोदाकी गोदमें कृष्णका विश्वम्भर-मूर्ति धारण करना और उसे अपने मुंहमें सारा विश्व दिखाना। यह कथा पहले भागवतमें मिली है। यह भागवत बनानेवालेकी मनगढ़न्त बात है।

(घ) तृणावर्त्त। तृणावर्त्त नामका असुर कृष्णको लेकर आकाशमें उड़ गया था। इसका जैसा वर्णन है उससे तो यह साफ बवंडर मालूम होता है। भागवतमें ही लिखा है कि तृणावर्त्त बवंडर बनकर आया था। यह कथा भी पहले पहल भागवतमें ही मिलती है। इससे यह भी निस्सन्देह कल्पित है। बगूलेमें लड़केका उड़ जाना अचरजकी बात नहीं है।

(ङ) कृष्णने एक बार मिट्टी खा ली थी। यशोदाके पूछनेपर

कृष्णने अस्वीकार किया। तब उसने उनका मुंह देखना चाहा। कृष्णने मुंह वाकर दिखाया तो उसमें समस्त विश्व ब्रह्माण्ड दिखायी दिया। यह भी भागवतकारकी कल्पनामात्र है।

(च) भागवतकार कहते हैं कि जब कृष्ण पांव पांव चलना सीख गये तब गोपियोंके घरोंमें जाकर बहुत ऊधम मचाने लगे। मक्खन चुरा चुराकर खाने लगे। यह कथा न विष्णुपुराणमें है और न महाभारतमें।

हरिवंशपुराणमें मक्खनचोरीकी कथा प्रसंगवश आ गयी है। पर भागवतमें तो इसकी बड़ी धूमधाम है। जिस बालकको धर्म्म अधर्म्मका ज्ञान नहीं हुआ, वह खाने पीनेकी चीजें चुरावे तो कुछ दोष नहीं। यदि कोई यह कहे कि कृष्ण तो ईश्वरके अवतार हैं, उनमें कभी ज्ञानका अभाव नहीं हो सकता, तो इसके जवाबमें कृष्णके उपासक कह सकते हैं कि ईश्वर कभी चोर नहीं हो सकता। क्योंकि यह सारा जगत् ही उसका है—दूध, दही, मक्खन सब ही उसके बनाये हैं। वह किसको चोरी करेगा—सब कुछ तो उसीका है। और अगर कोई कहे कि वह तो मनुष्यधर्म्मावलम्बी है मनुष्यधर्म्ममें चोरी अवश्य पाप है। तो इसका उत्तर यही है कि मनुष्यधर्म्मावलम्बी बालकके लिये पाप नहीं है, क्योंकि बालकको धर्म्माधर्म्मका ज्ञान नहीं होता। पर इन बातोंसे मुझे कुछ मतलब नहीं क्योंकि यह कथा ही निर्मूल है। यदि मौलिक हो तो भागवत बनानेवालेने यह कथा जिस ढङ्गसे लिखी है वह बड़ा मनोहर है।

भागवतके रचनेवाले कहते हैं कि भगवान अपने लिये नहीं बन्दरोंके लिये मक्खन चुराते थे। बन्दरोंको खिलानेके लिये दूध, दही, मक्खन नहीं पाते तो मचल जाते और रोते थे। भागवतकार कह सकते थे कि कृष्ण सब जीवोंके लिये समदर्शी थे। उन्होंने सोचा कि गोपियोंको इतना दूध, दही मिले और बन्दरोंको कुछ भी नहीं। बस इसीसे वह गोपियोंका मक्खन लेकर बन्दरोंको दे देते थे। वह सब प्राणियोंके ईश्वर थे उनके आगे गोपियां और बन्दर दोनों समान नवनीतके अधिकारी हैं।

बालक कृष्ण सबके हितैषी थे और सबका दुःख दूर करनेके लिये सदा उद्यत रहते थे। बन्दर जैसे पशुओंके लिये भी उनकी कैसी ममता थी, यही भागवतकारने बताया है। एक दुखिया फल बेचनेवालीकी भी कथा लिखी है। वह कृष्णके सामने फल लेकर आयी, कृष्णने उसे अञ्जलीभर रत्न दे दिये। यह कथाएं भागवतके सिवा और कहीं नहीं है। पर आगे चलकर मैं दिखाऊंगा कि परोपकार ही कृष्णके जीवनका व्रत था।

(छ) यमलार्ज्जुन। कृष्णने एक बार बड़ा उधम मचाया तो यशोदाने ऊखलसे उन्हें बांध दिया। कृष्ण ऊखलको लुढ़काते हुए चले। यमलार्जुन नामके दो वृक्ष थे। इन्हीं वृक्षोंकी जड़में ऊखल अटक गया। कृष्णने जोर किया तो दोनों वृक्ष उखड़ गये।

यह कथा विष्णुपुराण और महाभारतमें है। शिशुपालके तिरस्कार-वाक्योंमें इसका उल्लेख है। पर इसका मतलब क्या

है? अर्जुन एक प्रकारका वृक्ष है। यमलार्जुका अर्थ जोड़ा पेड़ है। अर्जुनके पेड़ बहुत बड़े नहीं होते—अकसर छोटे ही देखनेमें आते हैं। नये पेड़ोंका यों उखड़ जाना असम्भव नहीं है।

भागवतके रचयिताने इस पुरानी कथाको अतिरञ्जित करनेमें कुछ भी त्रुटि न की। दोनों वृक्ष कुबेरके पुत्र थे; शापवश वृक्ष हो गये। कृष्णके स्पर्श करनेसे शापमुक्त हो स्वधाम चले गये। गोकुलमें जितनी रस्सियां थीं सब इकट्ठी करके भी नन्हा सा बालक कृष्ण नहीं बांधा जा सका। निदान दयाकर वह आप ही बंध गया।

विष्णुका एक नाम दामोदर भी है। बाहरकी इन्द्रियोंके निग्रहको दम कहते हैं। उद् ऊपर, ऋ गमने, इससे उदरका अर्थ उत्कृष्ट गति होता है। दमसे जिसने उच्च स्थान पाया है उसका नाम है दामोदर। वेदोंमें लिखा है कि विष्णुने तपस्या करके विष्णुत्व प्राप्त किया है, नहीं तो वह इन्द्रसे छोटे हैं। शंकराचार्य्यने दामोदरका यही अर्थ माना है। वह कहते हैं "दमादिसाधनेन उदरा उत्कृष्टा गतिर्या तया गम्यत इति दामोदरः।" महाभारतमें भी लिखा है "दमाद्दामोदरं विदुः।"

पर दामन् शब्दका अर्थ रस्सी भी है। जिसका उदर रस्सीसे बांधा गया वह भी दामोदर है। रस्सीमें बांधे जानेकी बात उठनेके पहले भी दामोदर नाम प्रचलित था। इससे क्या यह नहीं मालूम होता कि दामोदर नाम देखकर भागवतकारने रस्सीवाली बात अपने मनसे गढ़ी है?

नन्दादि गोप अपना पुराना स्थान छोड़कर वृन्दावन गये। पुराणोंमें लिखा है कि कृष्णपर अनेक विपत्तियां आयी थीं इसीसे गोप सब वृन्दावन चले गये। वृन्दावन बड़े सुखका स्थान है शायद इसीसे वह वहां गये हों। हरिवंशमें तो साफ लिखा है कि भेड़ियोंका उपद्रव बहुत बढ़ जानेके कारण उन्होंने गोकुल छोड़ा था।

चौथा परिच्छेद।

किशोरलीला।

बृन्दावन कवियोंकी सबसे प्यारी भूमि है, जहां हरियाली और फूलोंकी शोभा है, कलकल करती हुई कालिन्दी केलि करती है, केकी कोकिलोंकी कूकसे कुञ्जवन कूजित है ग्वालबाल मधुर सुरसे वंशी बजाते हैं, असंख्य सुमनोंकी सुगन्धसे दसों दिशाएं सुवासित हैं और विविध भूषण विभूषित विशालनयनी व्रजबालाएं विहार करती हैं। ऐसे बृन्दावनका स्मरण करते ही हृदय आनन्दसे पुलकित हो जाता है। पर अभी काव्यरस आस्वादन करनेका समय नहीं है क्योंकि बड़ाभारी तत्व अन्वेषण करना है।

भागवतका रचनेवाला कहता है कि बृन्दावन आनेपर कृष्णने एक एक कर वत्सासुर, बकासुर, और अघासुर नामके तीन

असुर मारे। पहला वत्सरूपी, दूसरा पक्षिरूपी और तीसरा सर्परूपी था। ग्वालबालोंका अनिष्ट करनेपर बलवान बालकका इन जन्तुओंको मारना अचरजकी बात नहीं है। परन्तु विष्णु-पुराण, महाभारत या हरिवंशमें इनके बारेमें एक शब्द भी नहीं है। इसलिये इन तीनों असुरोंकी कथा कल्पित समझ छोड़नी चाहिये।

वत्सासुर, बकासुर और अघासुरके इन उपाख्यानोंमें कुछ भी तत्व नहीं है, ऐसा नहीं। ढूंढ़नेसे कुछ मिल भी सकता है। वद् धातुसे वत्स, वन्क् धातुसे वक और अघ् धातुसे अघ बनता है। वद् प्रकाश, वन्क् कौटिल्ये और अघ् पापे अर्थमें व्यवहृत होता है। स्पष्टवक्ता या निन्दक वत्स है। कुटिल शत्रु वक और पापी अघ है। कृष्णने किशोरावस्थाके पहले ही इन तीनों प्रकारके शत्रुओंको परास्त किया था। यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखाके ग्यारहवें अध्यायके ८०वें कांडमें जहां अग्निचयनके मन्त्र हैं वहां शत्रु संहारके लिये इस प्रकार प्रार्थना है—"हे अग्नि, हमारे अराति, द्वेषी, निन्दक और जिघांसु इन चार प्रकारके शत्रुओंको भस्म कर दो।"

इस मन्त्रके अधिकांशमें अराति अर्थात् धन न देनेवालेके मारनेकी बात है। जान पड़ता है, भागवतकारने इस रूपककी रचनाके समय इस वेदमन्त्रका स्मरण अवश्य कर लिया था। अथवा यों कहिये कि इस रूपकका मूल यह मन्त्र ही है।

इसके बाद भागवतमें लिखा है कि ब्रह्म कृष्णकी परीक्षा

लेनेके लिये एक वार मायासे सब ग्वालबाल गाय बछड़े चुरा लिये। कृष्ण उनकी जगह और ग्वालबाल तथा गाय बछड़े बनाकर मौज करने लगे। इसका मतलब यह कि ब्रह्मा भी कृष्णकी महिमा न समझ सका। इसके बाद एक रोज कृष्णने दावानल पानकर लिया। शैवोंके शिव विष पान कर नीलकण्ठ हुए थे। इसलिये वैष्णवोंने श्रीकृष्णको भी अग्निपान कराकर छोड़ा।

विख्यात कालियदमनकी कथा कहनेका भी यही मौका है। महाभारतमें कालियदमनकी कुछ भी चर्चा नहीं है। हां, हरिवंश और विष्णुपुराणमें है। भागवतमें तो इसका विस्तार बहुत ही हुआ है। यह उपन्यास है और अनैसर्गिक घटनाओंसे परिपूर्ण है। केवल उपन्यास ही नहीं, रूपक है। रूपक भी बड़ा मनोहर है।

कथा यों है। यमुनाके एक दहमें कालिय नामका एक विषधर सर्प सपरिवार रहता था। उसके बहुत फन थे। विष्णुपुराणमें तीन, हरिवंशमें पांच और भागवतमें सहस्र फन लिखे हैं। उसके अनेक स्त्रियां, पुत्र और पौत्र थे। उनके विषसे उस दहका जल इतना विषैला हो गया था कि कोई उसके निकट ठहर भी न सकता था। ग्वालबाल और गाय बछड़े वह जल पीकर मर जाते थे। उस विषकी ज्वालासे किनारेके पेड़पत्ते, तृण लता सब सूख गये थे। पखेरू भी दहके ऊपरसे उड़कर जाते तो मरकर गिर पड़ते थे। श्रीकृष्णने कालियको दमनकर बृन्दावनके प्राणीमात्रकी रक्षा करना विचारा। वह एक दिन

दहमें कूद पड़े। कालिय उनपर झपटा। वह उसके फनोंपर चढ़ बैठे और लगे बंशी बजा बजाकर नाचने। इससे कालिय अधमरासा हो गया और रुधिर वमन करने लगा। कालियकी यह दशा देख उसकी स्त्रियां मनुष्यभाषामें कृष्णकी अस्तुति करने लगीं। भागवतकारने नागकन्याओंसे जो स्तुति करायी है, वह देखनेसे मालूम होता है कि नागकी स्त्रियां दर्शनशास्त्रकी अच्छी ज्ञाता थीं। विष्णुपुराणमें जो स्तव उन्होंने किया है वह बड़ा मधुर है। उसके पढ़नेसे यही जान पड़ता है कि मनुष्य-स्त्रियां भले ही विष उगलनेवाली कही जायं, पर नागकन्याएं तो सुधा सिञ्चन करने वाली ही हैं। पीछे कालिय स्वयं स्तुति करने लगा। श्रीकृष्णने प्रसन्न हो उसे छोड़ दिया और यमुना त्यागकर समुद्रमें वास करनेको कहा। वह बालबच्चोंको ले वहांसे निकल भागा। यमुनाका जल साफ हो गया।

यह तो हुआ उपन्यास, अब इसके भीतर जो रूपक है वह सुनिये। कलकल शब्दकर बहनेवाली यह कृष्णसलिला कालिन्दी ही काली काल-नदी है। इसके भंवर बड़े भयंकर हैं। हम जिसे दुःसमय या विपत्काल कहते हैं वही काल-नदीका भंवर है। इनमें मनुष्यके बड़े बड़े भयंकर और विषैले शत्रु छिपकर रहते हैं। सर्पोंकी तरह एकान्त स्थानमें उनका वास है, सर्पोंकी तरह उनकी कुटिल गति है, और सर्पोंकी तरह ही उनका अमोघ विष है। आधिभौतिक, आध्यात्मिक, और आधिदैविक यही उनके तीन फन हैं। अथवा यों समझिये कि हमारी पांचों इन्द्रियां ह पींच

फन हैं,क्योंकि यही सब अनर्थोंकी जड़ हैं। फिर अपने अमङ्गल-के असंख्य कारणोंका विचार करें तो उसके हजारों फन हैं। विपद्के गहरे भंवरमें इस भुजङ्गके फेरमें पड़ जानेपर जगदीश्वरके पादपद्मके सिवा हमारा उद्धार करनेवाला और कोई नहीं है। यह कृपाके वशीभूत हो विषधरको पददलित करता है और मनोहर मूर्त्ति धारण कर अभयकी वंशी बजाता है। उसकी वंशी सुन आशाका संचार होता है और जीव सुखसे संसारके कामोंमें लगता है। करालनादिनी काल-नदीका जल स्वच्छ हो जाता है। इस कृष्णसलिला, भीमनादिनी काल-नदीके भंवरमें अमंगलरूप भुजंगके मस्तकपर वंशीधरकी अभय मूर्त्ति पुराणकारोंकी अपूर्व सृष्टि है। ऐसी मूर्ति बनाकर जो पूजेगा उसे मूर्त्तिपूजक कहकर भला कौन हंस सकता है?

धेनुकासुर (गर्द्दभ) और प्रलम्बासुरके वधके विषयमें कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि इन्हें बलरामने मारा था, कृष्णने नहीं। चीरहरणके सम्बन्धमें जो कहना है वह किसी दूसरे परिच्छेदमें कहूंगा। अब गोवर्द्धनपूजाकी कथा लिखकर ही यह परिच्छेद पूरा करूंगा।

वृन्दावनमें गोवर्द्धन नामका एक पर्वत था, अब भी है। गोस्वामीजी महाराजोंने अभी जहां वृन्दावन बसाया है वह एक प्रान्तमें है और गिरी गोवर्द्धन दूसरेमें। परन्तु पुराणोंमें लिखा है कि वह वृन्दावनके सीमान्तपर है। यह पर्वत अभी जिस भावसे है उससे जान पड़ता है कि वह किसी समय

किसी प्राकृतिक विप्लवसे उखाड़ा जाकर फिर रखा गया है। मालूम होता है, हजारों वर्षोंसे यह इसी अवस्थामें है। इसीसे यह कल्पना की गयी कि श्रीकृष्णने उसे उठाकर एक सप्ताह धारण किया और फिर रख दिया।

उपन्यासकी कल्पना इस प्रकार है। वर्षाके अन्तमें नन्दादि गोप प्रतिवर्ष इन्द्रयज्ञ करते थे। नियमानुसार उसकी तय्यारियां हो रही थीं। कृष्णने देखकर पूछा कि यह यज्ञ क्यों होता है? इसपर नन्दने कहा, इन्द्र वृष्टि करता है, वृष्टिसे अन्न होता है, अन्नसे हम सब प्राण धारण करते हैं और गाएं दूध देती हैं। इसलिये इन्द्रकी पूजा करना हमारा कर्त्तव्य है। कृष्ण बोले, हमारा आधार कृषि नहीं, गोवंश है। इसलिये गोपूजन अर्थात् गायोंको अच्छी अच्छी चीजें खिलाना ही हमारा कर्त्तव्य है। और हम इस पहाड़के आश्रित हैं, इससे इसीकी पूजा कीजिये। ब्राह्मणों और भूखोंको खिलाइये। बस वही हुआ। बहुतेरे दीन दरिद्र भूखों और ब्राह्मणोंने (यह दरिद्रोंमें हैं) भोजन किया। गायोंने भी खूब खाया। गोवर्द्धनने भी प्रगट हो पूरी मिठाइयोंपर खूब हाथ साफ किया। लिखा है कि कृष्णने ही गोवर्द्धनका रूप धारणकर भकोसा था।

इन्द्रयज्ञ नहीं हुआ। पाठक जानते ही हैं कि हमारे पुराणोक्त देवता और ब्राह्मण बड़े बिगड़े दिल होते हैं। जरा जरा सी बातपर बिगड़ जाते हैं।

इन्द्र भी अपनेको सम्हाल न सका। तुरत जामेसे बाहर हो

गया । उसने चट मेघोंको आज्ञा दी कि वृन्दावनको बहा दो । बस फिर क्या था—मेघ उमड़ घुमड़कर वृन्दावनपर चढ़ दौड़े । वृन्दावन बह चला । ग्वालबाल और गौबछड़े त्राहि त्राहि करने लगे । श्रीकृष्णने गिरि गोवर्द्धन उठाकर वृन्दावनकी रक्षा की । सात दिन वृष्टि हुई । कृष्ण सातों दिन एक हाथसे पर्व्वतको उठाये रहे । वृन्दावनकी रक्षा हुई । इन्द्र हार मानकर कृष्णके चरणोंपर आ गिरा ।

महाभारतमें गोवर्द्धन-पूजाकी थोड़ी सी चर्चा है । शिशुपाल कहता है कि कृष्णने वल्मीकसा गोवर्द्धन पहाड़ उठा ही लिया तो क्या हो गया ? कृष्णके बहुत मिठाई खा जानेपर भी उसने जरा व्यङ्ग किया है । महाभारतमें बस इतना ही है और कुछ नहीं । पर गोवर्द्धन आज भी विद्यमान है—वह वल्मीक नहीं असली पर्व्वत है । कृष्णने क्या यही पर्व्वत सात रोजतक एक हाथमें उठा रखा था ? जो कृष्णको ईश्वरका अवतार मानते हैं वह कह सकते हैं कि ईश्वरके लिये कुछ असाध्य नहीं है ? यह मैं मानता हूं, पर साथही पूछता हूं कि अवतारको पर्व्वत धारण करनेकी आवश्यकता क्यों हुई ? जिसकी इच्छाके विना मेघ एक बूंद भी जल नहीं बरसा सकते वह सात दिन तक पहाड़ उठाकर बृन्दावनकी रक्षा क्यों करेगा ? जिसको इच्छामात्रसे सारे मेघ उड़ सकने, वृष्टि बन्द हो सकती और आकाश निर्मल हो सकता था, वह पर्व्वत उठाकर सात रोज तक क्यों खड़ा रहेगा?

इसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि यह भगवानकी लीला है, इच्छामयकी इच्छा है। हम क्षुद्रबुद्धि भला इसे क्या समझ सकते हैं? ठीक है, गोवर्द्धन उठानेकी बात तो पीछे है, पहले यही निश्चय हो जाय कि वह भगवान हैं। यह कैसे मालूम हो कि वह भगवान हैं? उनके कार्य्योंसे। जिस कार्य्यका उद्देश्य या युक्ति समझमें न आवे उसे ईश्वरका किया मान लेना क्या उचित है? विना समझे क्या कोई कुछ निश्चय कर सकता है? कदापि नहीं। फिर गोवर्द्धनधारणकी कथा अस्वाभाविक समझकर क्यों न छोड़ दी जाय? इसके लिये नियम भी तो बनाये जा चुके हैं। हां, इसमें इतना सत्य हो सकता है कि कृष्णने ग्वालबालोंका मन इन्द्रकी पूजासे फेरकर गोवर्द्धनपूजाकी ओर लगा दिया। गिरिगोवर्द्धनका उठाना और रखना आदि अस्वाभाविक बातें पीछे गढ़ी गयी हैं।

ऐसे कामोंका कुछ गूढ़ तात्पर्य्य प्रायः देखनेमें आता है। इसका मतलब मैंने जो कुछ समझा है वह कहता हूं।

इस जगत्का एक ही ईश्वर है। ईश्वरके सिवा और देवता नहीं। इन्द् धातुमें, जिसका अर्थ वर्षण अर्थात् बरसना है, रक् प्रत्यय लगानेसे इन्द्र शब्द बनता है। इसका अर्थ है वर्षा करनेवाला। वर्षा कौन करता है? जो सबका कर्ता, धर्त्ता, विधाता है, वही वृष्टि करता है। वृष्टिके लिये कोई पृथक् विधाता है, यह विश्वास नहीं किया जा सकता। हां, इन्द्रयज्ञ होता या साधारण यज्ञोंमें इन्द्रको भाग मिलता था। इस

प्रकारकी इन्द्रपूजाका अर्थ भी है। ईश्वरकी प्रकृति अनन्त है, उसके गुण अनन्त हैं, कार्य्य अनन्त हैं, शक्तियां अनन्त हैं। फिर अनन्तकी उपासना किस तरह हो? क्या अनन्तका ध्यान होता है? जिससे नहीं होता है वह ईश्वरकी भिन्न भिन्न शक्तियोंकी पृथक् पृथक् उपासना करता है। ऐसी शक्तियोंका विकाश-स्थल जड़ जगतमें जाज्वल्यमान है। सब जड़ पदार्थों में ही उसकी शक्तिका परिचय मिलता है। उससे अनन्तका ध्यान सहज ही हो जाता है। इसीसे प्राचीन आर्य्य लोग उसकी जगत् उत्पन्न करनेवाली शक्तिका स्मरण कर सूर्य्यरूपमें, सबको आच्छादित करनेवाली शक्तिका स्मरण कर वरुणरूपमें, उसे सब तेजोंका आधारभूत समझकर अग्निरूपमें, उसे जगत्प्राण समझकर वायुरूपमें और इसी प्रकार अन्यान्य जड़ पदार्थोंमें उसकी आराधना करते थे। (१) ईश्वरको वर्षा करनेवाली शक्तिकी

(१) पहले मैंने जब "प्रचार" नामक पत्रमें यह मत प्रकट किया था तब बहुतोंने नाक सकोड़ी थी। उन्होंने समझा था कि मैं अपने मनसे गढ़कर यह कहता हूं, पर अब उन्हें जान लेना चाहिये कि यह मेरा मत नहीं निरुक्तकार स्वयं यास्कका है। यास्कका वाक्य नीचे उद्धृत किये देता हूं--

'माहात्म्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।

* * * *

आत्मा एव एषां रथो भवति, आत्मा अश्वाः,
आत्मा आयुधम् आत्मा ईषवः आत्मासर्व्वदेवस्य।

उपासना इन्द्ररूपमें करते थे। समय पाकर लोग उपासनाका अर्थ तो भूल गये, पर उसका आकार ज्योंका त्यों बना रहा। ऐसा प्रायः होता है। ब्राह्मणोंकी त्रिसन्ध्याकी भी यही दशा हुई।

भागवद्गीता, महाभारतकी और और जगहोंमें देखा जाता है कि श्रीकृष्ण धर्म्मकी इस मृत देहको जला रहे हैं और उसके बदले लोगोंको ईश्वरकी उच्च उपासनामें लगानेकी चेष्टा कर रहे हैं।

कृष्णने बड़े होनेपर जो मत प्रचार किया था उसका श्रीगणेश गोवर्द्धन-पूजासे है। परमेश्वर सब प्राणियोंमें है, मेघोंमें जैसे है वैसे ही पर्व्वत और गाय बछड़ोंमें भी है। यदि मेघोंकी या आकाशकी पूजा करनेसे उसकी पूजा होती है तो पर्व्वत और गोवत्सोंकी पूजासे भी उसीकी पूजा होगी। वरञ्च आकाशादि जड़ पदार्थों की पूजाकी अपेक्षा दरिद्रों और गोवत्सोंको भली-भांति खिलाना अधिक धर्म्मसम्मत है। मेरी समझसे गोवर्द्धनकी पूजाका तात्पर्य्य यही है।

पांचवां परिच्छेद।
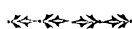
व्रजगोपी-विष्णुपुराण

अब मैं वह विषय उठाता हूं जिसे कृष्णके विद्रोही कृष्णके चरित्रमें बड़ा भारी कलङ्क मानते और कृष्णके आधुनिक भक्त जिसे कृष्णभक्तिका केन्द्र समझते हैं। मेरा तात्पर्य्य कृष्ण और व्रजकी गोपियोंके सम्बन्धसे है। कृष्णचरित्रकी समालोचनामें यह विषय बड़ा गुरुतर है इसलिये इसे अति विस्तार सहित लिखना पड़ेगा।

महाभारतमें व्रजबालाओंकी कुछ भी चर्चा नहीं है। सभापर्व्वके शिशुपालवध पर्व्वाध्यायमें शिशुपालने कृष्णकी भरपेट निन्दा की है। यदि महाभारत लिखे जानेके समय कृष्णपर गोपियोंका यह कलङ्क होता तो शिशुपाल या शिशुपालवधकी कथा लिखनेवाले इस कलङ्कका उल्लेख किये बिना कभी न रहते। इसलिये यह निश्चय है कि असली महाभारत बननेके समय गोपियोंकी कथा प्रचलित नहीं थी। यह पीछे गढ़ी गयी है।

महाभारतके सभापर्व्वमें केवल एक ठौर गोपी शब्द आया है। द्रौपदीने वस्त्र खेंचे जानेके समय कृष्णको "गोपीजनप्रिय" कहकर सम्बोधन किया है, यथा-

"आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः।
गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥

बृन्दावनमें गोपियां रहती थीं। गोप रहेंगे तो गोपियां

भी रहेंगी। कृष्ण बड़े सुन्दर, मनोहर और क्रीड़ाशील बालक थे। इसीसे ग्वालबाल और गोपियां उन्हें बहुत प्यार करती थीं। हरिवंशमें लिखा है कि बालिका, युवती, वृद्धा सबके ही प्रियपात्र श्रीकृष्ण थे। यह भी लिखा है कि यमलार्ज्जुनपतन आदि उत्पातोंके समय गोपियां श्रीकृष्णके लिये रोती थीं। इस हेतु "गोपीजनप्रिय" शब्दसे सुन्दर बालकपर स्त्रियोंके सहज स्नेहके अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम होता है।

पहले खण्डमें जो नियम बनाये गये हैं उनके अनुसार महाभारतके बाद विष्णुपुराण देखना होगा। पाठक पहले जैसा देख चुके हैं वैसा ही अब भी देखेंगे कि विष्णुपुराण, हरिवंश और भागवतमें उपन्यासकी उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि हुई है। महाभारतमें गोपियोंकी कथा नहीं है, विष्णुपुराणमें पवित्र भावसे है, हरिवंशमें बिलासिताकी कुछ गन्ध है, भागवतमें उसकी अधिकता है, पर ब्रह्मवैवर्तपुराणकी कुछ मत पूछिये उसमें तो विलासिताकी नदी उमड़ चली है।

यह सब बातें विस्तारपूर्व्वक अच्छी तरह समझानेके लिये विष्णुपुराणमें गोपियोंके बारेमें जो कुछ लिखा है वह नीचे दिया जाता है। दो एक शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ दो प्रकारसे हो सकता है। इसलिये मूल संस्कृत पहले देकर पीछे अर्थ दिया है।

कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम्।
तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥

वनराजिं तथा कुंजद्रुमालां मनोरमाम् ।
विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥
सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् ।
जगौ कलपदं शौरिर्नानातंत्रीकृतव्रतम् ॥१६॥
रम्यं गीतध्वनीं श्रुत्वा सन्तज्यावसथांस्तदा ।
आजग्मुस्त्वरिता गोप्या यत्रास्ते मधुसूदनः ॥१७॥
शनैः शनैर्जगौ गोपी काचित् तस्य लयानुगम् ।
दत्तावधाना काचित्तु तमेव मनसा स्मरन् ॥१८॥
काचित् कृष्णेति कृष्णेति प्रोक्त्वा लज्जामुपागता ।
ययौ च काचित् प्रेमान्धा तत्पार्श्वमविलज्जिता ॥१९॥
काचिदावसथस्यान्तःस्थिता दृष्ट्वा बहिर्गुरून् ।
तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०॥
तच्चिन्ताविपुलाह्लादक्षीणपुण्यचया तथा ।
तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका ॥२१॥
चिन्तयन्ती जगत्मूर्त्तिं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका ॥ २२ ॥
गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम् ।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२३॥
गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्त्तयः ।
अन्यदेशं गते कृष्णे चेरुर्वृन्दावान्तरम् ॥२४॥
कृष्णे निरुद्धहृदया इदमूचुः परस्परम् ।
कृष्णोऽहमेतल्ललितं व्रजाम्यालोक्यतां गतिः ।

अन्या ब्रवीति कृष्णस्य मम गीतिर्निशम्यताम् ॥ २५ ॥
दुष्ट कालिय ! तिष्ठात्र कृष्णोऽहमिति चापरा ।
बाहुमास्फोट्य कृष्णस्य लीलासर्व्वस्वमाददे ॥ २६ ॥
अन्या ब्रवीति भो गोपा निःशङ्कैः स्थीयतामिह ।
अलं वृष्टिभयेनात्र धृतो गोवर्द्धनो मया ॥ २७ ॥
धेनुकोऽयं मया क्षिप्तो विचरन्तु यथेच्छया ।
गोपी ब्रवीति वै चान्या कृष्णलीलानुकारिणी ॥ २८ ॥
एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तास्तदा ।
गोप्यौ व्यग्राः समञ्चेरू रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥ २९ ॥
विलोक्यैका भुवं प्राह गोपी गोपवराङ्गना ।
पुलकाञ्चितसर्व्वाङ्गी विकाशिनयनोत्पला ॥ ३० ॥
ध्वजवज्राङ्कुशाब्जाङ्करेखावन्तालि ! पश्यत ।
पादान्येतानि कृष्णस्य लीलालङ्कृतगामिनः ॥ ३१ ॥
कापि तेन समं याता कृतपुण्या मदालसा ।
पदानि तस्याश्चैतानि घनान्यल्पतनूनि च ॥ ३२ ॥
पुष्पावचयमत्रोच्चैश्चक्रे दामोदरो ध्रुवम् ।
येनाग्राक्रान्तिमात्राणि पदान्यत्र महात्मनः ॥३३॥
अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलंकृता ।
अन्यजन्मनि सर्व्वात्मा विष्णुरभ्यर्च्चितो मया ॥३४॥
पुष्पबन्धनसम्मानकृतमानामपास्यताम् ।
नन्दगोपसुतो यातो मार्गेणानेन पश्यत ॥३५॥
अनुयाने समर्थान्या नितम्बभारमन्थरा ।

या गन्तव्ये द्रुतं याति निम्नपादाग्रसंस्थितिः ॥३६॥
हस्तन्यस्ताग्रहस्तेयं तेन याति तथा सखि ।
अनायतपदन्यासा लक्ष्यते पदपद्धतिः ॥३७॥
हस्तसंस्पर्शमात्रेण धूर्त्तेनैषा विमानिता ।
नैराश्यमन्दगामिन्या निवृत्तं लक्ष्यते पदम् ॥३८॥
नूनमुक्ता त्वरामाति पुनरेष्यामि तेन्तिकम् ।
तेन कृष्णेन येनैषा त्वरिता पदपद्धतिः ॥३९॥
प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते ।
निवर्त्तध्वं शशाङ्कस्य नैतद्दीधितिगोचरे ॥४०॥
निवृत्तस्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने ।
यमुनातीरसमागत्य जगुस्तच्चरितं तदा ॥४१॥
ततो ददृशुरायान्तं विकाशिमुखपंकजम् ।
गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं कृष्णमक्लिष्टचेष्टितम् ॥४२॥
काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहर्षिता ।
कृष्ण ! कृष्णेति कृष्णेति प्राह नान्यमुदैरयत् ॥४३॥
काचिद्भ्रूभंगरं कृत्वा ललाटफलकं हरिम् ।
विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्यां पपौ तन्मुखपङ्कजम् ॥४४॥
काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना ।
तस्यैव रूपं ध्यायन्ती योगारूढेव चाबभौ ॥४५॥
ततः काश्चित् प्रियालापैः काश्चिद्भ्रूभंगवीक्षणैः ।
निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥ ४६ ॥
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सहसादरम् ।

रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥ ४७ ॥
रासमण्डलबन्धोपि कृष्णपार्श्वमनुज्झता ।
गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥ ४८ ॥
हस्ते प्रगृह्य चैकैकां गोपिकां रासमण्डलीम् ।
चकार तत्करस्पर्शनिमीलितदृशां हरिः ॥४६॥
ततः स ववृते रासश्चलद्वलयनिस्वनः ।
अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥ ५० ॥
कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम् ।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः ॥ ५१ ॥
परिवर्त्तश्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम् ।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः ॥ ५२ ॥
काचित् प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्बतम् ।
गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम् ॥ ५३ ॥
गोपीकपोलसंश्लेषमभिपत्य हरेर्भुजौ ।
पलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बु घनतां गतौ ॥ ५४ ॥
रासगेयं जगौ कृष्णो यावत् तारतरध्वनिः ।
साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत् वा द्विगुणं जगुः ॥५५॥
गते तु गमनं चक्रुर्वलने संमुखं ययुः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥ ५६ ॥
स तथा सह गोपीभीरराम मधुसूदनः ।
यथाब्दकोटिप्रमितः क्षणस्तेन विनाभवत् ॥ ५७ ॥
ता वार्य्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।

कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥ ५८ ॥
सोऽपि कैशोरकवयो मानयन् मधुसूदनः ।
रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥ ५९ ॥

विष्णुपुराणम् पञ्चमांशः, १३ अ०

"निर्म्मल आकाश, शरच्चन्द्रकी चन्द्रिका, कुमुदनीके फूलोंसे सब दिशाएं सुगन्धित, भृङ्गोंके शब्दसे वन मनोरम देखकर कृष्णने गोपियोंके संग क्रीड़ा करनेकी इच्छा की। कृष्णने बलरामके सहित अनेक बाजोंसे मिलकर स्त्रियोंके प्रिय अति मधुर अस्फुट पद गाये। सुन्दर गीत सुन गोपियां घरबार छोड़कर जहां मधुसूदन थे वहां उतावली हो आ पहुंची। कोई गोपी उसी लयमें धीरे धीरे गाने लगी और कोई कृष्णको स्मरण कर उनमें लीन हो गयी। कोई कृष्ण, कृष्ण कहकर लज्जित हो गयी और कोई लज्जा त्याग, प्रेमान्ध हो कृष्णकी बगलमें जा पहुंची। कोई गुरुजनोंको बाहर देख घरमें रह गयी और नेत्र बन्दकर गोविन्दके ध्यानमें तन्मय हो गयी। दूसरी गोपी कृष्णका स्मरण कर अत्यानन्दसे पुण्यरहित हो कृष्णविरहके महादुःखमें अपने सब पापोंको धोकर पवित्र हो गयी और परमब्रह्मस्वरूप जगत्कारणका ध्यान धर पारमार्थिक ज्ञान प्राप्तकर मुक्त हुई। गोविन्द शरच्चन्द्रकी मनोरम रात्रिको गोपियोंसे परिवेष्टित हो रासारम्भरस (१) के लिये समुत्सुक हुए। कृष्णके अन्यत्र

रासका अर्थ नृत्य विशेष है 'अन्योन्यव्यतिषक्तहस्तानां स्त्रीपुंसां गायतां मण्डलीरूपेण भ्रमतां नृत्यविनोदो रासो नाम'। इति श्रीधरः।

चले जानेपर गोपियां टोली बांधकर कृष्णलीलाओंका अनुकरण करती हुईं बृन्दावनमें इधर उधर घूमने लगीं। कृष्णमें हृदय निरुद्ध कर आपसमें यों बोलने लगीं "मैं कृष्ण हूं, देखो, मैं ललित गतिसे चलता हूं।" दूसरीने कहा "मैं कृष्ण हूं मेरा गाना सुनो।" तीसरी बोली--"दुष्ट कालिय? यहां ठहर, मैं कृष्ण, हूं।" ताल ठोंककर कृष्णकी लीलाका अनुकरण करने लगी। चौथी बोल उठी "गोपगण, तुम निर्भय हो यहां रहो, वृष्टिसे व्यर्थ मत डरो, मैंने गोवर्द्धन धारण कर लिया है।" कृष्णलीलाका अनुकरण करनेवाली दूसरी बोल उठी "इस धेनुकासुरको मैंने मार डाला, तुम जहां चाहो विचरण करो।" इस प्रकार गोपियां कृष्णकी लीलाएं करती हुईं, व्यग्र भावसे रम्य बृन्दावनमें विचरने लगीं। एक गोपी भूमिकी ओर देखते ही पुलकित हो और कमलनयन खोलकर कहने लगी "हे सखी! देखो, यह ध्वज, वज्राङ्कुशयुक्त पदचिह्न लीलाविहारी कृष्णके ही हैं। कोई भाग्यवती मदसे अलसानी उनके संग गयी है उसीके यह छोटे छोटे और पास पास पदचिह्न हैं। उस महात्मा (कृष्ण)के पदचिह्नोंके केवल अग्र भाग देखनेमें आते हैं। इससे निश्चय ही दामोदरने यहां ऊंचे वृक्षोंके फूल तोड़े हैं। उन्होंने यहां बैठकर किसी गोपीका फूलोंसे शृंगार किया है। उसने पूर्व्वजन्ममें सर्व्वात्मा विष्णुकी पूजा की होगी। इस सम्मानसे उसे गर्व्व हुआ होगा। इसलिये नन्दनन्दन उसे छोड़कर इस राहसे गये हैं। देखा! पंजेके निशानकी गहराई देखनेसे जान पड़ता है

कि नितम्बके बोझसे चलनेमें असमर्थ होकर कोई स्त्री दौड़कर चली है। सखी, यहां पैरोंके निशान देखकर मालूम होता है कि चलनेमें असमर्थ उस गोपीका हाथ पकड़कर वह चले हैं। हाथ पकड़ने ही वह धूर्त उसे छोड़ गया है, क्योंकि इन पद्चिह्नोंके देखनेसे मालूम होता है कि वह निराश हो जल्दी जल्दी न चल सकी तब पीछे लौटी है। और कृष्णने अवश्यही उससे कहा होगा कि तुरत हो लौटकर मैं तुम्हारे पास आता हूं। इसीसे वह फिर दौड़कर चली है। जान पड़ता है, अब कृष्ण घने वनमें घुसे हैं, क्योंकि पैरोंके निशान अब दिखायी नहीं देते। यहां चद्रमाकी किरणें प्रवेश नहीं करती हैं। चलो लौट चलें।"

"कृष्णके दर्शनसे निराश होकर गोपियां लौट पड़ीं और यमुना किनारे पहुंचकर उनके चरित गाने लगीं। अनन्तर गोपियोंने देखा कि विकसित पंकजके समान मुखवाले, त्रैलोक्यकी रक्षा करनेवाले, कर्म्म करके न थकनेवाले कृष्ण आगये। कोई कृष्णको आया देख अत्यन्त हर्षित हो कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कहने लगी और कोई कुछ भी न बोल सकी। कोई भौंहें चढ़ा, हरिको देख, उनका मुखपङ्कज दोनों नेत्रभृङ्गोंसे पान करने लगी। कोई गोविन्दको देख आंखें मून्दकर योगियोंकी तरह उनके रूपका ध्यान करने लगी। अनन्तर माधव किसीको प्रिय वचनोंसे, किसीको भ्रूभंगसे देखकर, किसीको हाथोंसे छूकर अनुनयके साथ सबकी सान्त्वना करने लगे। पीछे उदारचरित हरि

प्रसन्नचित्त गोपियोंके साथ रासमण्डलमें सादर क्रीडा करने लगे। पर गोपियां कृष्णकी बगलसे हटती नहीं थीं, एक ठौर स्थिर हो गयीं, इसलिये इनके साथ रासमण्डल पूरा नहीं हुआ। पीछे एक एक गोपीका हाथ पकड़ने और उनके छूनेसे आंखें बन्द करनेपर कृष्णने रासमण्डली तय्यार की। इसके बाद गोपियोंकी चञ्चल चूड़ियोंके शब्दके और गोपियोंके गाये हुए शरद् काव्यके अनुगत हो वह रासक्रीड़ामें प्रवृत्त हुए।"

"कृष्णने शरच्चन्द्र, कौमुदी और कुमुदके बारेमें गाया। गोपियोंने बारंबार कृष्णके ही नामके गीत गाये। एक गोपीने नाचते नाचते थककर चञ्चलवलयध्वनिविशिष्ट बाहुलता मधुसूदनके कन्धेपर रख दी। कपटतामें निपुण एक गोपीने कृष्णके गीतकी स्तुति करनेके छलसे बाहुसे आलिङ्गन कर मधुसूदनका चुम्बन कर लिया। कृष्णकी दोनों भुजाएं किसी गोपीके कपोलोंसे छू जानेपर पुलकोद्गमस्वरूप अन्नादि उत्पादन करनेके लिये स्वेदाम्बु मेघ बन गया। कृष्णने ऊंचे सुरमें जबतक रास गीत गाये तबतक गोपियां भी साधु कृष्ण, साधु कृष्ण कहकर चिल्लाती रहीं। कृष्णके जानेपर उनके साथ जाने लगीं और लौट आनेपर उनके सामने आने लगीं। इसी प्रकार प्रतिलोम अनुलोम गतिसे गोपाङ्गनाएं हरिका भजन करने लगीं। मधुसूदनने गोपियोंके साथ उसी स्थानमें क्रीड़ा की। गोपियोंको कृष्णके बिना एक एक क्षण करोड़ वर्षोंके समान मालूम होने लगा। क्रीड़ामें अनुराग रखनेवाली गोपियोंने

पति, पिता, भ्राताके मना करनेपर भी रातको कृष्णके साथ क्रीड़ा की। शत्रुसंहारी अमेयात्मा मधुसूदनने भी अपनेको किशोरवयस्क समझकर रातको उनके साथ क्रीड़ा की।"

इस भाषान्तरके सम्बन्धमें एक बात कहनी है। वह यह कि "रम्" धातुसे सिद्ध शब्दोंमें मैंने रम् धातुका अर्थ क्रीड़ा किया है। "रतिप्रिया" का अर्थ मैंने "क्रीड़ामें अनुराग रखनेवाली" समझा है। आरम्भसे "रम्" धातु क्रीड़ाके अर्थमें व्यवहृत है। उसका जो दूसरा अर्थ है वह क्रीड़ा अर्थसे ही पीछे निकला है। 'रति' और 'रतिप्रिये' इसी अर्थमें कृष्णकी लीलामें बराबर व्यवहृत हुआ है, इसके अनेक उदाहरण हैं। हरिवंशके सड़सठवें (कोसी किसी पुस्तकमें अड़सठवें) अध्यायमें इसी तरहका प्रयोग है (१)। वहां क्रीड़ाशील ग्वालबालोंको

(१) "स तत्र वयसा तुल्यै र्वत्सपालैः सहानघः।
रेमे वै दिवसं कृष्णः पुरा स्वर्गगतो यथा॥
तं क्रीड़मानं गोपालाः कृष्णं भाण्डीरवासिनम्।
रमयन्तिस्म वहवो वन्यैः क्रीड़नकैस्तदा॥
अन्यैस्म परिगायन्ति गोपा मुदितमानसाः।
गोपालाः कृष्णमेवान्ये गायन्तिस्म रतिप्रियाः।"

इन तीन श्लोकोंमें "रम्" धातुसे सिद्ध शब्द तीन वार व्यवहृत हुए हैं। जैसे रेमे, रमयन्ति और रतिप्रिया। तीनों वार ही क्रीड़ा अर्थ है, दूसरा हो नहीं सकता। क्योंकि यहां ग्वालबालोंकी बात है।

'रतिप्रिय' गोपाल लिखा है । और यही अर्थ यहां सङ्गत है, क्योंकि 'रास' एक क्रीड़ाविशेष है। आज भी भारतवर्षके किसी किसी स्थानमें ऐसी क्रीड़ा या नृत्य प्रचलित है। रासका क्या अर्थ है, यह श्रीधरस्वामीने बताया है। वह कहते हैं–

"अन्योन्यव्यतिपक्तहस्तनां स्त्रीपुंसां गायतां मण्डलीरूपेण भ्रमतां नृत्यविनोदः रासोनाम ।"

अर्थात् स्त्रीपुरुष परस्पर हाथ पकड़कर गाते और मण्डली बनाकर घूमते हुए जो नृत्य करते हैं उसका नाम रास है । लड़के लड़कियोंको इस तरह नाचते हमने देखा है। और सुना है, स्याने होनेपर भी कहीं कहीं लोग ऐसा नाच नाचते हैं । इसमें शृङ्गाररसकी गन्ध भी नहीं है।

'रास' एक खेल है और 'रति' का शब्दार्थ खेल है। इस-लिये रासवर्णनमें 'रति' शब्द आ जाय, तो उल्थेमें उसका प्रतिशब्द 'क्रीड़ा' ही व्यवहृत करना चाहिये।

इस रासलीलाका वृत्तान्त कुछ दुर्बोध है । इसका गूढ़ तात्पर्य्य मैं दूसरी पुस्तकमें लिख चुका हूं। पर यहां इसका भेद न बताना अनुचित है, इसलिये यह विषय मुझे दुबारा लिखना पड़ता है।

मैंने "धर्म्मतत्व" में लिखा है कि मनुष्यत्व ही मनुष्यका धर्म्म है। इस मनुष्यत्व या धर्म्मका उपादान हमारी सारी वृत्तियोंका अनुशीलन, प्रस्फुरन और चरितार्थता है। मैंने इन वृत्तियोंको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है, जैसे शारीरिकी,

ज्ञानार्ज्जनी, कार्य्यकारिणी और चित्तरञ्जिनी। जिन वृत्तियोंसे सौन्दर्य्यादिकी पर्य्यालोचना कर हम निर्म्मल और अतुलनीय आनन्दका अनुभव करते हैं उनका नाम मैंने चित्तरञ्जिनी वृत्ति रखा है। इनका भली भांति अनुशीलन करनेसे सच्चिदानन्द-मय जगत् और जगन्मय सच्चिदानन्दके सम्पूर्ण स्वरूपका अनु-भव हो सकता है। चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंका अनुशीलन न होनेसे धर्म्मकी हानि होती है। जो आदर्श मनुष्य हैं, उनकी किसी वृत्तिका अनुशीलनहीन या विकाशहीन होना सम्भव नहीं है। यह रासलीला कृष्ण और गोपियोंकी उसी चित्तरञ्जिनी वृत्तिके अनुशीलनका उदाहरण है।

कृष्णके लिये यह उपभोग मात्र है, पर गोपियोंके लिये ईश्वरकी उपासना है। एक ओर अनन्त सुन्दरके सौन्दर्य्यका विकाश और दूसरी ओर अनन्त सुन्दरीकी उपासना। चित्त-रञ्जिनी वृत्तिका परम अनुशीलन उन वृत्तियोंको ईश्वरमुखी करना अर्थात् ईश्वरकी ओर लगाना ही है। प्राचीन समयमें स्त्रियोंके लिये ज्ञानमार्ग निषिद्ध था, क्योंकि वेदादि पढ़नेका उन्हें अधिकार नहीं है। उनके लिये कर्म्ममार्ग कष्टसाध्य है, पर भक्तिमार्गमें उन्हें विशेष अधिकार है। भक्तिका अर्थ है, "परानुरक्तिरीश्वरे।" अनुराग बहुतेरे कारणोंसे उत्पन्न हो सकता है। परन्तु सौन्दर्य्यके कारण जो अनुराग उत्पन्न होता है, वह सबसे बलवान है। इसलिये अनन्त सुन्दरके सौन्दर्य्यका विकाश और उसकी आराधना ही स्त्रियोंके लिये जीवन सार्थक

करनेका मुख्य उपाय है। इस तत्वका रूपक ही रासलीला है। जड़ प्रकृतिका समस्त सौन्दर्य्य उसमें वर्त्तमान है। शरत्काल-का पूर्णचन्द्र, शरत्कालकी श्यामसलिला यमुना, प्रफुल्ल कुसुमोंसे सुवासित और कुञ्जविहंगमकूजित वृन्दावनस्थली और फिर अनन्त सुन्दरका शरीर धारण कर विकशित होना; उसपर विश्वको विमोहन करनेवाले कृष्णके गीत! इस प्रकार चित्तरञ्जन होनेसे गोपियोंकी भक्ति उमड़ आयी, और उनका कृष्णपर ऐसा अनुराग हुआ कि वह अपनेको ही कृष्ण समझने लगीं और जो बातें कृष्णको कहनी चाहिये वह कहने लगीं। केवल जगदीश्वरके सौन्दर्य्यके अनुरागी होनेसे जीवात्मा और परमात्मामें जो अभेदज्ञान होता है, जो ज्ञान योगियोंके योगका और ज्ञानियोंके ज्ञानका चरमोद्देश्य है, वही ज्ञान प्राप्त कर गोपियां ईश्वरमें लीन हो गयीं।

यह मैं स्वीकार करता हूं कि आजकल हम लोग युवक युवतियोंका मिलकर नाचना गाना बुरा समझते हैं। पर यूरोप-वाले नहीं समझते हैं। जान पड़ता है, विष्णुपुराण जिस समय बना था, उस समय भी यही अवस्था थी। पुराण बनानेवाले भी इसे बुरा समझते थे। इसीसे उन्होंने लिख रखा है कि—

"ता वार्य्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।"

और इसीलिये अध्यायके अन्तमें कृष्णके दोष छुड़ानेके लिये लिखा है—

"तद्भर्त्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः।
आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य वायुरिव स्थितः॥
यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवो जलम्।
वायुश्चात्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः॥

वह (कृष्ण) उनके (गोपियोंके) पतियों और उनमें तथा सर्व भूतोंमें व्याप्त है; ईश्वर भी आत्मस्वरूप रूपमें वायुकी तरह सर्वत्र व्याप्त है। जैसे सब भूतोंमें आकाश, अग्नि, पृथिवी, जल और वायु हैं वैसे ही वह भी है।

इस तरह उनके दोष धोनेकी कुछ जरूरत न थी। युवक युवतियोंके मिलकर नाचनेमें धर्म्मकी दृष्टिसे कुछ दोष नहीं है। केवल हमारी समाजमें सामाजिक दोष है। जान पड़ता है, कृष्णके समयमें यह सामाजिक दोष भी नहीं था।

छठा परिच्छेद।

व्रजगोपी—हरिवंश।

पिछले परिच्छेदमें जो श्लोक उद्धृत कर आया हूं वह विष्णुपुराणके पांचवें अंशके तेरहवें अध्यायके हैं। इस अध्यायको छोड़ और कहीं व्रजगोपियोंकी कथा विष्णुपुराणमें नहीं है। हां, कृष्णके मथुरा जाते समय उनकी केवल खेदोक्तियां हैं।

इसी प्रकार गोपियोंकी कथा हरिवंशमें भी विष्णुपर्व्वके

७७ वें अध्यायके सिवा और कहीं नहीं है (१)। जो कुछ है वह नीचे दिये देता हूं। पर इसके पहले यह कह देना उचित है कि हरिवंशमें 'रास' शब्दका व्यवहार कहीं नहीं हुआ है। उसके बदले "हल्लीष" शब्द आया है। इस अध्यायका नाम "हल्लीषक्रीड़नम्" है। यथा, "इति श्रीमहाभारतेखिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्व्वणि हल्लीषक्रीड़ने सप्तसप्ततमोध्यायः।" हेमचन्द्रके अभिधानमें 'हल्लीष'का अर्थ लिखा है—

"मण्डलेन तु यन्नृत्यं स्त्रीणां हल्लीषस्तु तत्।"

वाचस्पत्यमें तारानाथ लिखते हैं

"स्त्रीणां मण्डलीकाकार नृत्ये।"

इसलिये 'हल्लीष' और 'रास'का एक ही अर्थ नृत्यविशेष है।

अच्छा, अब हरिवंशकी भी चाशनी देख लीजिये।

कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो नवम्।
शारदीञ्च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिम्प्रति॥
स करीषांगरागासु ब्रजरथ्यासु वीर्य्यवान्।
वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत्॥
गोपालांश्च बलोदग्रान् योधयामास वीर्य्यवान्।
वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद्विभुः॥
युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ सङ्काल्य कालवित्।
कैशोरकं मानयन् वै सह ताभिर्मुमोद ह॥
तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि।

(१) किसी किसीमें ७६ वां अध्याय है।

पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गांकृतिं शशिनं यथा ॥
हरितालार्द्रपीतेन सकौशेयेन वाससा ।
वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत् ॥
स बद्धाङ्गदनिर्यूहश्चित्रया वनमालया ।
शोभमानो हि गोविन्दः शोभयामास तं व्रजम् ॥
नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवन् ।
विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत्तस्य भासनः ॥
तास्तं पयोधरोत्तानैरुरोभिः समपीडयन् ।
भ्रामिताक्षैश्चवदनैर्निरैक्षन्त वरांगनाः ॥
ता वार्य्यमाणाः पितृभिर्भ्रातृभिर्मातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपांगना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः ॥
तास्तु पंक्तीकृताः सर्व्वा रमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्तः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः ॥
कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः ।
कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वरांगनाः ॥
वनेषु तालहस्ताग्रैः कुट्टयन्तस्तथापराः ।
चेरुर्व्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रजयोषितः ॥
तास्तस्य नृत्यं गीतञ्च विलासस्मितवीक्षितम् ।
मुदिताश्चानुकुर्व्वन्त्यः क्रीड़न्त्यो व्रजयोषितः ॥
भावनिस्यन्दमधुरं गायन्त्यस्ता वरांगनाः ।
व्रजं गता सुखं चेरुर्दामोदरपरायणाः ॥
कारीषपांशुदिग्धांगास्ताः कृष्णमनुवव्रिरे ।

रमयन्त्यो तथा नागं सम्भ्रमतं करेणवः॥
तमन्या भावविकचैर्नेत्रैः प्रहसिताननाः।
पिबन्त्यतृप्ता वनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः॥
मुखमास्याब्जसङ्काशं तृषिता गोपकन्यकाः।
रत्यन्तरगता रात्रौ पिबन्ति रतिलालसाः॥
हाहेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता वरांगनाः।
जगृहुर्निसृतां वाणीं साम्रा दामोदरेरिताम्॥
तासां ग्रथितसीमन्ता रतिश्रान्त्याकुलीकृताः।
चारु विस्रसिरे केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम्॥
एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः।
शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी॥"

हरिवंशे ७७ अध्याय

रातको चन्द्रमाका नवयौवन और रम्य शारदीय निशा देखकर कृष्णको क्रीड़ा करनेकी अभिलाषा हुई। वीर्य्यवान् कृष्ण कभी सूखे गोबरसे भरे व्रजके राजपथपर मस्त बैलोंको और कभी बलवान् ग्वालबालोंको लड़ाते और कभी घड़ियालकी तरह वनमें गायोंको पकड़ लेते थे। कालज्ञ कृष्णने अपनी किशोरावस्थाके सम्मानार्थ युवती गोपिकाओंके साथ रातको समय स्थिर कर आनन्द किया। गोपियोंने भी नयनाक्षेपसे पृथिवीपर उतरे हुए चन्द्रमाकी तरह सुन्दर कृष्णके मुखका पान किया। सुन्दर वसन पहननेवाले कृष्ण पीताम्बर पहन और भी सुन्दर हो गये। बाजू पहनकर तथा विचित्र वनमालासे शोभित हो गोविन्द व्रजको

सुशोभित करने लगे। सुवक्ता कृष्णके विचित्र चरित्र देखकर ग्वालटोलेमें गोपिकाएं उन्हें दामोदर कहने लगीं। उन्नत उरोजोंसे स्पर्श कर वह वरांगनाएं चञ्चल नयनोंसे उन्हें देखने लगीं। क्रीड़ामें अनुराग रखनेवाली गोपाङ्गनाएं पिता, भ्राता और माताके निषेध करनेपर भी रातको कृष्णके पास चली गयीं। उन सबने मनोहर क्रीड़ाएं कीं और दो दो मिलकर कृष्णचरित्रके गीत गाये। तरुण वराङ्गनाओंने कृष्णकी लीलाओंका अनुकरण किया, कृष्णको एक टक देखा, और वह सब कृष्णके पीछे पीछे चलीं। कई गोपियां ताली बजाकर कृष्णकी लीलाएं करने लगीं। व्रजबालाएं कृष्णके नृत्य, गीत, मन्दहासका अनुकरण कर सानन्द क्रीड़ा करने लगीं। कृष्णपरायण वरांगनाएं भावपूर्ण मधुर गीत गाती व्रज जाकर सुखसे विचरण करने लगीं। मस्त हाथीको जिस प्रकार हथनियां खिलाती हैं उसी प्रकार सूखे गोबरसे भरी हुई गोपियां कृष्णके पीछे पीछे जाने लगीं। अन्य हंसमुख मृगलोचनी स्त्रियां भावपूर्ण लोचनोंसे कृष्णको अतृप्त हो पान करने (देखने) लगीं। क्रीड़ाकी लालसासे तृषित गोपियां रातको अनन्य क्रीड़ासक्त हो कृष्णका कमल सदृश मुख देखने लगीं। कृष्णके हा हा कहकर गान करनेपर, वरांगना प्रसन्न हो कृष्णके मुखसे निकले वाक्य आनन्दित हो दुहराने लगीं। उन गोपियोंकी कसी हुई चोटियां क्रीड़ाकी थकावटसे ढीली हो गयीं और बाल बिखरकर कुचोंके अग्र भागपर लटकने लगे। गोपियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण इस प्रकार शरदकी चांदनीमें सुखपूर्वक गोपियोंके साथ आनन्द करने लगे।"

विष्णुपुराणकी रासलीलाके प्रसंगमें "रम्" धातुसे बने हुए शब्दोंका उल्था जैसे क्रीड़ाके अर्थमें मैंने किया है वैसे ही यहां भी क्रीड़ार्थवाची प्रतिशब्द दिये हैं। यह मैं जोर देकर कह सकता हूं कि और किसी तरहके प्रतिशब्द यहां व्यवहृत नहीं हो सकते यथा—

"तास्तु पंक्तीकृताः सर्व्वा रमयन्ति मनोरमम्"

"रमयन्ति" शब्दका अर्थ क्रीड़ा ही यहां हो सकता है, रति नहीं हो सकता। जिन लोगोंने दूसरा अर्थ किया है उन्होंने पूर्व्वप्रचलित कुसंस्कारके वश ही किया है।

यह हल्लीषक्रीड़ा विष्णुपुराणके रासकी नकल है। नकल यहांतक की गयी कि उसका एक श्लोक हरिवंशमें ज्योंका त्यों जा पहुंचा। हां, कसम खानेके लिये कुछ हेरफेर जरूर कर दिया गया है। विष्णुपुराणमें है—

"ता वार्य्यमाणाः पतिभिर्भ्रातृभिः मातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपांगना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः॥

और हरिवंशमें है—

"ता वार्य्यमाणाः पितृभिःर्भ्रातृभिर्मातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपांगना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः।"

हां, यह अवश्य है कि विष्णुपुराणकी अपेक्षा हरिवंशका वर्णन संक्षिप्त है, पर और विषयोंमें ऐसा नहीं हुआ है। साधारण रीतिपर तो यही देखनेमें आता है कि विष्णुपुराणमें जिस विषयका वर्णन संक्षेपसे है हरिवंशमें वह विस्तारपूर्व्वक

है और उसमें बहुतसी मनगढ़न्त बातें जोड़ी गयी हैं। हरिवंशमें रासलीलाका संक्षिप्त वर्णन होनेका कारण है। दोनों ग्रन्थ मिलाकर देखनेसे मालूम हो जाता है कि कविता, गम्भीरता, विद्वत्ता और उदारतामें हरिवंशकार विष्णुपुराणकारसे बहुत न्यून है।

वह विष्णुपुराणके रासवर्णनका गूढ़ तात्पर्य्य और गोपियोंका भक्तियोगसे कृष्णमें लीन होना न समझ सका। इसीसे विष्णु-पुराणकारने जहां लिखा है –

"काचित् प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्ब तम्।"

वहां हरिवंशकारजी लिखते हैं—

"तास्तं पयोधरोत्तानैरुरोभिः समपीड़यन्।"

इत्यादि।

अन्तर बस इतना ही है कि विष्णुपुराणकी चपल बालिकाएं आनन्द और हरिवंशकी गोपियां विलासिताका भाव प्रगट करती हैं। हरिवंशकारकी विलासप्रियता कई ठौर अधिक देखी जाती है।

विष्णुपुराणकी रासलीलाके बारेमें जो जो बातें कही जा चुकी हैं हरिवंशकी हल्लीषक्रीड़ाके सम्बन्धमें भी वही समझनी चाहिये।

ऊपरके श्लोकोंको छोड़ हरिवंशमें गोपियोंके बारेमें और कुछ नहीं है।

सातवां परिच्छेद ।

ब्रजगोपी—भागवत ।

वस्त्रहरण ।

श्रीमद्भागवतमें गोपियोंके साथ श्रीकृष्णका सम्बन्ध केवल रास और नृत्यतक ही समाप्त नहीं है । भागवतकारने गोपियोंके साथ कृष्णकी लीलाओंको बहुत बढ़ा दिया है । कहीं कहीं तो उन्होंने आजकलकी रुचिके विरुद्ध कर दिया है । ऊपर से वह भले ही आजकलकी रुचिके विरुद्ध हो, पर उसके भीतर अति पवित्र भक्तितत्व छिपा हुआ है । हरिवंशकारकी तरह भागवतकार विलासप्रियताके दोषसे दूषित नहीं है । उसका तात्पर्य्य बड़ा गूढ़ और बड़ा ही विशुद्ध है ।

दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें पहले पहल गोपियोंके पूर्व्व रागका वर्णन है । गोपियां श्रीकृष्णको वंशीध्वनि सुन मोहित हो गयी और आपसमें कृष्णानुराग वर्णन करने लगीं । इस पूर्व्वानुरागवर्णनमें कविने अपना असाधारण कवित्व प्रकाश किया है । पीछे उसे व्यक्त करनेके लिये उन्होंने एक उपन्यास रचा है । वही "चीरहरण" नामसे प्रसिद्ध है । चीरहरणकी चर्चा महाभारत, विष्णुपुराण या हरिवंशमें बिलकुल नहीं है । अतः इसे भागवत बनानेवालेकी ही कल्पना समझनी चाहिये । आजकलकी रुचिके विरुद्ध होनेपर भी मैं

इस कथाको छोड़ नहीं सकता। क्योंकि भागवतकी रासलीला-पर कुछ कहना है और इससे चीरहरणका विशेष सम्बन्ध है।

कृष्णके अनुरागमें भरी हुई गोपियोंने कृष्णको पतिरूपसे पानेके लिये कात्यायनी व्रत किया। यह व्रत एक महीनेतक किया जाता है। गोपियां टोली बांधकर रोज सवेरे यमुना नहाती थीं। औरतोंकी एक बुरी बान है। वह नहानेके समय कपड़े किनारेपर रख जलमें नंगी उतर जाती हैं। भारतवर्षके कई प्रदेशोमें आज भी यह चाल है। गोपियां भी सारियां तीर-पर रख जलमें उतर जाती थीं। जिस दिन व्रत समाप्त होता उस दिन भी उन्होंने वही किया। उस दिन उन्हें कर्म्मफल (दोनों अर्थमें) देनेके लिये श्रीकृष्ण वहां पहुंच गये। वह घाटपर रखे हुए कपड़े उठाकर किनारेके कदम्बपर जा चढ़े।

गोपियां बड़ी मूशकिलमें पड़ीं। न बाहर निकल सकती थीं और न जलमें रह सकती थीं। इधर लाज और उधर ठंढ। सवेरेकी ठंढी हवा उन्हें और भी सताने लगी। वह गलेतक पानीमें डूबकर जाड़ेसे कांपती हुई कृष्णसे कपड़े मांगने लगीं। कृष्ण यों सहज ही क्यों देने लगे थे। वह तो "कर्म्मफल" देने आये थे। पीछे जो कुछ हुआ, वह मैं स्त्री और बालकोंके समझने योग्य भाषामें किसी तरह नहीं लिख सकता। हां, मूल संस्कृत दिये देता हूं—

गोपियां कृष्णसे कहने लगीं—

"माऽनय भोः कृथास्त्वान्तु नन्दगोपसुतं प्रियम्।

जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपितः ॥
श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदिम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नोचेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥

श्रीभगवानुवाच

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तञ्च करिष्यथ ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छत शुचिस्मिताः ।
नोचेन्नाहं पदास्ये किं क्रुद्धो राजा करिष्यति ॥
ततो जलाशयात् सर्व्वा दारिकाः शीतवेपिताः ।
पणिभ्यां * आच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥
भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ।
स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥
यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।
बद्धाञ्जलिं मूर्द्धन्यपनुत्तमेहसः कृत्वा नमो*वसनं प्रगृह्यताम् ॥
इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ।
तत्पूर्त्तिकामास्तदशेषकर्म्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥
तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः ।
वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत् करुणस्तेन तोषितः ॥

श्रीमद्भागवतम् १० म स्कन्ध, २२ अध्याय ।

भक्तिका यही छिपा हुआ तत्व है । भक्तिसे ईश्वरको पानेका प्रधान साधन उसके चरणोंमें सब कुछ अर्पण करना है ।

भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं—

"यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।"

गोपियोंने कृष्णको सब कुछ अर्पण कर दिया। स्त्रियां सब छोड़ सकती हैं, पर लज्जा नहीं छोड़ सकतीं। धन, धर्म्म, कर्म्म, सौभाग्य सब कुछ जा सकता है, पर उनकी लज्जा नहीं जाती है। लज्जा ही स्त्रियोंका सबसे श्रेष्ठ रत्न है। जिसने लज्जा छोड़ दी, समझ लीजिये, उसने सब कुछ छोड़ दिया। गोपियोंने कृष्णके लिये लज्जातक छोड़ दी। यह कामातुर स्त्रियोंका लज्जा-त्याग नहीं है। यह लज्जावतियोंका है। तात्पर्य्य यह कि गोपियोंने ईश्वरको सर्व्वस्व अर्पण कर दिया। कृष्णने भी उसे भक्तिका उपहार समझ ग्रहण किया। उन्होंने कहा, "जिनकी बुद्धि मुझमें आरोपित हुई है उनकी कामना कामार्थमें कल्पित नहीं होती है। भूनने और सिझानेपर जौका बीजत्व नष्ट हो जाता है।" भूना और सीझा जौ नहीं जम सकता है। अर्थात् जो कृष्णकी कामना करती हैं, वह कामके वश नहीं हैं। उन्होंने और भी कहा है "तुमने जिस लिये व्रत किया, वह मैं रातको पूरा करूंगा।"

गोपियोंने कृष्णको पतिरूपमें पानेके लिये ही व्रत किया था। इस हेतु कृष्णने उनको कामना पूरी करनेके लिये उनका पति होना स्वीकार किया। अब बीचमें नीतिका बड़ा भारी झगड़ा आ खड़ा हुआ। गोपियां परायी स्त्री हैं, उनका पति होना परस्त्रीग्रहण करना है। भला कृष्णपर यह दोषारोपण क्यों ?

मेरे पास इसका बड़ा सहज उत्तर है। मैं अनेक प्रमाणोंसे समझा चुका हूं कि यह सब पुराणकारोंकी मनगढ़न्त कथाएं हैं, इनमें कुछ भी सत्यता नहीं है। परन्तु पुराणकारोंके पास इसका सहज उत्तर नहीं है। उन्होंने परीक्षितके पूछनेपर शुक-देवजीसे इसका उत्तर दिलाया है। यथास्थान इसकी बात कहूंगा। पर यहां मुझे भी कहना पड़ेगा कि हिन्दूधर्म्मके भक्ति-वादके अनुसार कृष्णको इन गोपियोंका पति अवश्य होना चाहिये। स्वयं कृष्ण भगवद्गीतामें कहते हैं—

"ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।"

"जो जिस भावसे मेरा भजन करता है मैं उसी भावसे उस-पर कृपा करता हूं। अर्थात् जो मुझसे विषयभोग चाहता है उसे विषयभोग देता हूं; जो मोक्ष चाहता है उसे मोक्ष देता हूं।" विष्णुपुराणमें लिखा है कि देवताओंकी माता दिति कृष्ण (विष्णु) से कहती हैं कि मैंने तुम्हारी कामना पुत्रभावसे की थी, इसीलिये मैंने तुम्हें पुत्ररूपमें पाया है। इस भागवतमें ही है कि वसुदेव-देवकीने ईश्वरकी पुत्रभावसे कामना की थी, इससे उन्होंने उन्हें पुत्ररूपसे पाया। गोपियोंने भी पति-भावसे उन्हें चाहा और उसके लिये जैसी चाहिये वैसी साधना की, बस कृष्ण उन्हें पतिरूपसे मिल गये।

यदि यही बात है तो इसमें अधर्म्म क्या हुआ? ईश्वरकी प्राप्तिमें फिर अधर्म कैसा? पुण्यका आदिभूत, पुण्यमय जग-दीश्वर क्या पाप करनेसे मिलता है? पापपुण्य क्या है?

जिससे जगदीश्वरकी प्राप्ति हो वही पुण्य है, वही धर्म्म है। इसके विपरीत जो कुछ है वह पाप है, वह अधर्म्म है।

पुराणकारने यह तत्व भली भांति समझानेके लिये इसमें पापकी गन्धतक नहीं आने दी है। वह २६वें अध्यायमें कहते हैं जिन्होंने कृष्णको पतिभावसे न चाहकर उपपतिभावसे चाहा था उन्होंने इस शरीरसे कृष्णको नहीं पाया। जिन्हें घरवालोंने रोक रखा उन्होंने कृष्णमें मन लगा प्राण छोड़ दिये।

"त्वमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः॥"

१०-२६-१०

जिन्हें कृष्णको छोड़ दूसरे पतिका स्मरणतक था उन्होंने कृष्णको अवश्य ही उपपति समझा। दूसरे पतिके स्मरणमात्रसे वह कृष्णमें अनन्य ध्यान न कर सकीं। इससे वह सब सिद्ध या ईश्वरप्राप्तिकी अधिकारिणी नहीं हुईं। जारके पीछे दौड़ना पाप है। इसलिये जारबुद्धि पाप है। जबतक जारबुद्धि रहेगी तबतक वह कृष्णको ईश्वर नहीं समझ सकतीं। क्योंकि ईश्वरको कोई जार नहीं समझता और तबतक कृष्णके पानेकी उनकी इच्छा केवल कामेच्छा ही है। ऐसी गोपियां कृष्णमें सदा रत रहनेपर भी इसी देहसे कृष्णको पानेके योग्य नहीं है।

इसलिये पतिभावसे परमेश्वरको पानेकी कामना करनेमें गोपियोंको कुछ भी पाप नहीं है। गोपियोंको नहीं, पर कृष्णको

तो है? इसका उत्तर विष्णुपुराणमें जो कुछ है वही भागवतमें भी है। ईश्वरको पापपुण्यसे मतलब? वह तो हमारी तरह शरीरी नहीं है। शरीरी हुए बिना इन्द्रियपरता या इन्द्रियजनित दोष नहीं होते हैं। सब प्राणियोमें वह है, गोपियोमें भी वह है, गोपियोंके पतियोंमें भी है। इसलिये परदारस्पर्शका दोष उसे लग नहीं सकता।

इस बातपर एक आपत्ति है। ईश्वर यहां शरीरी और इन्द्रियविशिष्ट है। ईश्वरने अपनी इच्छासे मानवशरीर धारण किया है, तो मनुष्यधर्म्मावलम्बी होकर कार्य्य करनेके लिये ही उसने शरीर धारण किया है। मानवधर्म्मोके लिये गोपियां परस्त्री हैं, और उनके साथ अभिगमन पाप है। कृष्ण ही गीतामें कहते हैं कि लोगोंकी शिक्षाके लिये ही मैं कर्म्म करता रहता हूं। लोकशिक्षक परदाररत हो,तो वह पापाचारी और पापका शिक्षक है। इसलिये पुराणकारोंने जिस ढंगसे दोष धोना चाहा वह ठीक नहीं हुआ। इस प्रकार दोष धोनेकी जरूरत भी नहीं है। स्वयं भागवतकारने कृष्णको रासमण्डलमें जितेन्द्रिय कहा है—

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशा
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।
शिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्व्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः॥

श्रीमद्भागवतम् १० स्क० ३३अ० २६।

गूढ़ता और भक्तितत्वकी पारदर्शितामें विष्णुपुराणकारसे

भागवतकार बहुत बढ़ेचढ़े हैं। स्त्रियां संसारमें पतिको ही सबसे प्रिय समझती हैं। जो स्त्री परमेश्वरके परम भक्त है वह पतिभावसे ही परमेश्वरको चाहती है। अंग्रेजी पढ़कर हम चाहे जो कहें, पर बात यह बड़ी सुन्दर है। इससे मानवहृदयकी अभिज्ञताका तथा भगवद्भक्तिकी सौन्दर्य्यग्राहिताका कितना परिचय मिलता है! खैर, जिसने पतिभावसे देखा उसीने उसे पाया। जिसकी जारबुद्धि हुई, उसमे नहीं पाया। भक्तिकी अनन्यता समझानेका यह भी क्या सुन्दर उदाहरण है। पर पुराणकारोंने और एक बातमें गड़बड़ मचायी है। पतित्वमें इन्द्रियसम्बन्ध है। इससे यह इन्द्रियसम्बन्ध भागवतके रासवर्णनमें प्रवेश कर गया है। भागवतका रास विष्णुपुराण और हरिवंशके रासकी तरह केवल नृत्य गीत नहीं है। कैलास शिखरपर जो तपस्वी भोलानाथके क्रोधानलसे भस्म हुआ था वह वृन्दावनमें किशोर रासविहारीकी शरणमें पुनर्जीवित होनेके लिये भ्रूमित है।

वहां अनङ्गने प्रवेश किया है। पुराणकारका अभिप्राय बुरा नहीं है।

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"

स्मरण करके ही उन्होंने मुक्त जीवोंका ईश्वरप्राप्तिजनित जो आनन्द है उसे अच्छी तरह प्रगट करनेका प्रयत्न किया था। पर लोग उसे नहीं समझे। उनके लगाये हुए भगवत्-भक्ति-पङ्कज-का मूल अतल जलमें डूब गया और केवल विकसित काम-कुसुम-दाम ऊपर उतराता रह गया। जो ऊपर ही ऊपर तैरते,

नीचे गोते नहीं लगाते, उन्होंने केवल विषयभोगसे पूर्ण वैष्णव धर्म्म प्रस्तुत किया। भागवतमें भक्तिका जो गूढ़ तत्व है वह जयदेव गोस्वामीके हाथोंमें जाकर मदनधर्म्मोत्सव बन गया। तबसे हमारी जन्मभूमि मदनधर्म्मोत्सवके बोझसे दबी चली आती है। इस हेतु कृष्ण-चरित्रकी नूतन व्याख्याकी आवश्यकता हुई। संसारमें कृष्णचरित्र विशुद्धता और सर्वगुणसम्पन्नतामें अतुलनीय है। मेरे जैसे अयोग्य और अधम जनके कहनेपर भी लोग वह पवित्र चरित्र सुनेंगे, यह सोचकर ही मैंने यह नवीन कृष्णचरित्र रचनेका साहस किया है।

आठवां परिच्छेद ।

व्रजगोपी-भागवत

ब्राह्मणकन्या

वस्त्रहरणका गूढ़ तात्पर्य्य जो कुछ मैंने समझा है उसके बारेमें एक बात कहनी बाकी है।

"यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥"

इस वाक्यके अनुसार जगदीश्वरको जो सर्व्वस्व अर्पण कर सकता है वही ईश्वरके पानेका अधिकारी है। वस्त्रहरणके समय व्रजकी गोपियोंने भी कृष्णको सब कुछ अर्पण कर देनेकी

क्षमता दिखायी थी, इसीसे वह श्रीकृष्णको पानेकी अधिकारिणी हुईं। भागवतकारने और एक कथा रचकर इस भक्तितत्वको और भी परिष्कृत कर दिया है। वह इस तरह है—

एक बार गौ चरानेके समय वनमें ग्वालबालोंको भूख लगी। उन्होंने कृष्णसे खानेके लिये कुछ मांगा। पास ही कुछ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। कृष्णने उन्हें ब्राह्मणोंके पास भेजा और कहा कि मेरा नाम लेकर उनसे खानेको मांगना। ग्वालबालोंने वहां जाकर मांगा, पर ब्राह्मणोंने कुछ नहीं दिया। उन्होंने आकर कृष्णसे सब बातें कहीं। कृष्णने उन्हें फिर ब्राह्मणकी कन्याओंके पास जानेके लिये कहा। उन्होंने वही किया। ब्राह्मणियोंने कृष्णका नाम सुनते ही उन्हें भरपेट खानेके लिये दिया और कृष्ण पास ही है, सुनकर उनके दर्शनोंके लिये सब दौड़ पड़ीं। वह सब कृष्णको ईश्वर समझती थीं। कृष्णने उन्हें घर लौट जानेको कहा। ब्राह्मणियोंने कहा,—"हम आपकी भक्त हैं, हम अपने पिता, माता, भ्राता, पुत्रादि छोड़कर आयी हैं—वह अब हमें घरमें घुसने नहीं देंगे। हम आपके चरणोंमें गिरती हैं, आप अब और कुछ उपाय बतावें।" कृष्णने उन्हें ग्रहण नहीं किया। वह बोले, "अंगोंका मिलन ही अनुरागका केवल कारण नहीं है। तुम पहले अपना चित्त मुझमें लगाओ। फिर तुम जल्द ही मुझे पाओगी। मेरा श्रवण, दर्शन, ध्यान, कीर्त्तन करनेसे तुम मुझे पाओगी, पास रहनेसे नहीं। इसलिये तुम घर चली जाओ।" वह सब चली गयीं।

इन ब्राह्मणियोंने कृष्णको पानेके योग्य कौनसा काम किया था ? वह सब केवल माता पिता कुटुम्ब छोड़कर आयी थीं। कुलटाएं भी अपने जारोंके लिये ऐसा करती हैं। भगवानको उन्होंने सर्वस्व अर्पण नहीं किया। वह सिद्ध होनेकी अधिकारिणी नहीं हुईं। इसलिये कृष्णने सिद्ध होनेकी पहली सीढ़ी श्रवण, मनन, निदिध्यासनादिका उपदेश देकर उन्हें बिदा किया। पवित्र ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होनेवाली साधनाके अभावसे ईश्वरप्राप्तिकी अधिकारिणी नहीं हुईं और साधनाके प्रभावसे गोपियां हो गयीं। प्रथम अनुरागवर्णनके समय भागवतके प्रणेताने गोपियोंका श्रवण, मनन, निदिध्यासन विस्तारसहित समझाया है।

अब मैं भागवतके विख्यात रासपंचाध्यायके पास आ पहुंचा हूं। पर वस्त्रहरणकी आलोचनामें रासलीलाका तत्व मैंने इतना बढ़ाकर लिखा कि अब उसके सम्बन्धमें कुछ थोड़ासा कह देनेसे ही काम चल जायगा।

नवां परिच्छेद

—:○※○—

व्रजगोपी—भागवत।

रासलीला।

भागवतके दसवें स्कन्धके २९।३०।३१।३२।३३। यह पांच अध्याय ही रासपञ्चाध्याय हैं। पहले अर्थात् उनतीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णने सरद पूनोंकी रातको मधुर वंशी बजायी। पाठकोंको स्मरण होगा कि विष्णुपुराणमें लिखा है कि उन्होंने कलपद अर्थात् अस्फुट पद गाये। भागवतकारने वह "कल" शब्द रखा है, जैसे "जगौ कलम्"। टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्तीने इस "कल" शब्दसे कृष्णमन्त्रका बीज "क्लीं" शब्द सिद्ध किया है। उन्होंने उसे कामगीत कहा है। टीकाकारोंकी महिमा अनन्त है। स्वयं पुराणकारने इस गीतको "अनङ्गवर्द्धनम्" कहा है।

वंशीकी ध्वनि सुनकर गोपियां कृष्णके दर्शनोंके लिये दौड़ीं। पुराणकारने गोपियोंके उतावलेपन और बावलेपनका जो वर्णन किया है वह देखकर कालिदासकृत पुरस्त्रियोंकी शीघ्रता और विभ्रम स्मरण होता है। किसने किसका अनुकरण किया यह मैं नहीं कहा चाहता।

गोपियोंके आ जानेपर कृष्णने ऐसे ढंगसे यह कहा, मानों वह कुछ जानते ही नहीं हैं—"कुशल तो है? तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य्य मैं करूं? व्रजमें कुशल तो है न? तुम सब यहां

क्यों आयीं ?" यह कह फिर कहने लगे—"यह रात बड़ी भयङ्कर है, बड़े बड़े भयानक पशु यहां रहते हैं, स्त्रियोंके रहने योग्य यह स्थान नहीं है। तुम सब घर लौट जाओ। तुम्हारी माता, तुम्हारे पिता, पुत्र, भ्राता, पति तुम्हें न देखकर ढूंढ रहे हैं। तुम अपने बन्धुबान्धवोंको भयभीत करनेका कारण मत हो। पूर्ण-चन्द्रसे प्रकाशित वन तुमने देख लिया तो? अब तुम जल्द जाकर पतिकी सेवा करो। बालक और बछड़े रो रहे हैं, उन्हें दूध पिलाओ। अथवा स्नेहवश तुम यहां आयीं होंगी। सब प्राणी ही मुझपर इस तरह स्नेह करते हैं। पर हे कल्याणियो, पतिकी निष्कपट सेवा और बन्धु तथा सन्तानोंका पालनपोषण ही स्त्रियोंका प्रधान धर्म्म है। जो स्त्रियां पवित्र हो दोनों लोकोंकी मङ्गलकामना करती हैं वह अपने पतिको परित्याग नहीं कर सकतीं। चाहे वह दुष्ट, अभागा, मूर्ख, रोगी और पराधीन क्यों न हो। कुलस्त्रियोंके लिये जारकर्म्म बड़ा भयङ्कर है। इससे अपयश और निन्दा होती है तथा नरक मिलता है। श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्त्तनसे तुम्हारे चित्तमें मेरा भाव उदय हो सकता है, पर निकट रहनेसे नहीं होगा। इसलिये तुम सब घर फिर जाओ।"

पुराणकार कृष्णसे यह कहलाकर दिखलाया चाहते हैं कि पातिव्रत्य धर्म्मकी महिमासे अनभिज्ञ हो अथवा उसकी अवज्ञा कर कृष्ण और गोपियोंके इन्द्रियसम्बन्धका वर्णन हमने नहीं किया है। इनका अभिप्राय मैं पहले ही समझा चुका हूं। कृष्णने

ब्राह्मणियोंको भी इसी प्रकार समझाया था। वह सुनकर फिर गयीं। पर गोपियां न फिरीं, रोने लगीं, बोलीं "ऐसी बात मत कहो, हमने तुम्हारे चरणोंमें सर्वस्व समर्पण कर दिया है। आदि पुरुष जिस तरह मुमुक्ष (मोक्ष चाहनेवाले) को नहीं छोड़ते हैं, उसी तरह तुम भी हमें मत छोड़ो, हम चाहे ग्रहणके अयोग्य ही क्यों न हों। तुम धर्म्मज्ञ हो, पति, पुत्र, बन्धु आदिकी सेवा स्त्रियोंका जो धर्म्म तुम बताते हो वह तुममें ही हो जाय। क्योंकि तुम ईश्वर हो, तुम देहधारियोंके प्रिय बन्धु और आत्मा हो। हे आत्मा! जो चतुर हैं वह तुममें ही रति (आत्मरति) करते हैं। क्योंकि तुम नित्यप्रिय हो, दुखदायी पतिपुत्रोंसे क्या होगा?" इत्यादि। इन वाक्योंसे पुराणकारने समझाया है कि गोपियोंने ईश्वर समझकर श्रीकृष्णकी उपासना की थी और ईश्वरके लिये ही पतिपुत्रोंका त्याग किया था। इसके बाद और भी बहुत सी बातें हैं जिनसे पुराणकार यह समझाते हैं कि कृष्णके अनन्त सौन्दर्य्यपर मुग्ध होकर ही गोपियां उनके पीछे दौड़ी थीं। पीछे वह कथन करते हैं कि श्रीकृष्ण स्वयं आत्माराम हैं अर्थात् अपनेसे भिन्न किसीमें उनकी रति, विरति कुछ नहीं है। तो भी उन्होंने गोपियोंके बचनोंसे सन्तुष्ट हो उनके साथ क्रीड़ा की और उनके साथ गाते हुए यमुना तटपर परिभ्रमण किया।

कुछ लोग कहते हैं कि भागवतमें कही हुई रासलीलासे इन्द्रियोंका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यदि वास्तवमें ऐसा हो,

तो मैंने इस लीलाका जैसा अर्थ किया है वह किसी तरह ठीक न होता, पर यह लीला वैसी नहीं है। इसके प्रमाणके लिये वहींसे एक श्लोक लिखे देता हूं ।

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरू
नीवीस्तनालभननर्म्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुतम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥

अन्यान्य स्थानोंसे भी इस प्रकारके दो चार प्रमाण दूंगा। इन सबका हिन्दी अनुवाद देना उचित न होगा।

इसके बाद गोपियोंने कृष्णको पाकर बड़ा मान किया। उनका मान तोड़नेके लिये कृष्ण अन्तर्द्धान हो गये। यह हुई उनतीसवें अध्यायकी कथा।

तीसवें अध्यायमें गोपियोंने कृष्णको ढूंढा, इसका वर्णन है। यह स्थूल रूपसे विष्णुपुराणका अनुकरण है। हां, भागवतकारने काव्यको जरा और सरस कर दिया है।

इसलिये इस अध्यायके बारेमें और कुछ कहना आवश्यक नहीं। एकतीसवें अध्यायमें गोपियां कृष्णसम्बन्धी गीत गा गाकर उन्हें पुकारती हैं। इसमें भक्ति और शृंगार दोनों रस हैं। इसमें समझानेकी विशेष कुछ बात नहीं है। बत्तीसवें अध्यायमें कृष्ण पुनः प्रकट होते हैं। इन्द्रियोंका सम्बन्ध प्रमाणित करनेके लिये एक श्लोक और यहां उद्धृत करता हूं—

"काचिदञ्जलिना गृह्णात् तन्वी ताम्बूलचर्व्वितम् ।

एका तदङ्घ्रिकमलं सन्तप्ता स्तनयोर्न्यधात् ॥"

इस अध्यायके अन्तमें कृष्ण और गोपियोंसे कुछ आध्यात्मिक वार्त्तालाप हुआ। उसे यहां लिखनेकी कुछ जरूरत नहीं मालूम होती। पीछे तेंतीसवें अध्यायमें रासक्रीड़ा और विहारवर्णन है। विष्णुपुराणकी रासक्रीड़ाकी तरह यहांकी रासक्रीड़ा भी केवल नृत्य गीत है। परन्तु है क्या कि गोपियोंने यहां कृष्णको पतिभावसे पाया है, इसलिये किञ्चिन्मात्र इन्द्रियसम्बन्ध भी है। यथा—

"कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विष मण्डितम्।
गण्डं गण्डे संदधत्याः प्रादात्ताम्बूलचर्व्वितम् ॥ १३ ॥
नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताऽधात् स्तनयोः शिवम् ॥१४॥

× × × × ×

तदङ्गसंगप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा।
नाञ्जः प्रतिव्योढ़मलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरुद्वह॥१८॥

इसमें ऐसी बातोंके सिवा और कुछ नहीं है। स्वयं पुराणकारने कृष्णको जितेन्द्रिय लिखा है, यह मैं पहले कह चुका हूं और इसका प्रमाण भी दे चुका हूं।

दसवां परिच्छेद ।

श्रीराधा ।

भागवतके इन रासपञ्चाध्यायोंमें "राधा" का नाम कहीं नहीं मिलता है। पर वैष्णव आचार्योंकी अस्थिमज्जाके भीतर राधाका नाम घुसा हुआ है। उन लोगोंने टीका टिप्पणियोंमें राधाका नाम वारंवार घुसेड़ा है, पर मूलमें कहीं नहीं है। गोपियोंके अधिक अनुरागसे उत्पन्न ईर्षाके प्रमाणमें कविने लिखा है कि गोपियोंने पदचिह्न देख अनुमान किया था कि कृष्ण किसी गोपीको लेकर विजन वनमें चले गये हैं। पर वह भी गोपियोंका ईर्षाजनित भ्रममात्र है। कृष्ण अन्तर्द्धान हुए, बस इतना ही लिखा है। किसके साथ हुए, इसकी कोई चर्चा नहीं है और न राधाका नाम ही है।

रासपञ्चाध्यायमें ही क्यों सारी भागवतमें कहीं राधाका नाम नहीं है। भागवतमें ही क्या, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण या महाभारतमें भी राधाका नाम नहीं है। पर तो भी आजकल कृष्णकी उपासनाका प्रधान अङ्ग राधा है। राधाके बिना कृष्णका नाम ही आधा हो जाता है। राधाके बिना न कृष्णकी मूर्त्ति है और न मन्दिर है। वैष्णवोंकी बहुतेरी पुस्तकोंमें तो राधाजी कृष्णसे बहुत ऊंची चढ़ गयी हैं। महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण या भागवतमें 'राधा' नहीं हैं, फिर यह आयीं कहांसे ?

राधाका नाम पहले पहल ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें मिलता है। विलसन साहब इसे सब पुराणोंसे छोटा समझते हैं। इसकी रचनाप्रणाली आजकलके पण्डितोंकी सी है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि आदि ब्रह्मवैवर्त्तपुराण लुप्त हो गया है। इसका प्रमाण भी दे चुका हूं। जो अभी मिलता है उसमें एक नया देवतत्व संस्थापित हुआ है। पहलेसे यही प्रसिद्ध है कि कृष्ण विष्णुके अवतार हैं। पर ब्रह्मवैवर्त्तवाले कहते हैं कि कृष्ण विष्णुके अवतार नहीं हैं। कृष्णने ही विष्णुकी सृष्टि की है। विष्णु रहते हैं वैकुण्ठमें और कृष्ण रहते हैं गोलोकके रासमंडलमें। वैकुण्ठ गोलोकसे बहुत नीचे है, कृष्णने केवल विष्णुको ही नहीं ब्रह्मा, रुद्र, लक्ष्मी, दुर्गा आदि समस्त देवदेवियो तथा जीवोंको बनाया है। इनका वास गोकुलधाममें है। वहां गौ, गोप और गोपियां रहती हैं। वह देवदेवियोंसे बढ़कर हैं। इस गोलोकधामको अधिष्ठात्री कृष्णकी प्यारी देवी ही राधा हैं। राधाके आगे रासमण्डल है। उसीमें इन्होंने राधाको उत्पन्न किया है। इन्होंने रासके रा और धा धातुके धासे राधा नाम सिद्ध किया है। (१) यह गोलोकधाम पूर्व्व कवियोंके वर्णित

(१) रासे सम्भूय गोलोके, सा दधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता, पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

ब्रह्मखण्डे ५ अध्यायः

फिर दूसरी जगह लिखा है—

* * * * राकारो दानवाचकः।

वृन्दावनकी हूबहू नकल है। आजकलकी रासमण्डलीमें जैसे राधाकी सौत चन्द्रावली नामकी सखी है वैसे ही गोलोकधाममें भी विरजा सखी है। मानभंगलीलामें रासवाले जैसे कृष्णको चन्द्रावलीकी कुञ्जमें ले जाते हैं, वैसे ही गोलोकधाममें भी श्रीकृष्ण विरजाकी कुञ्जमें जाते हैं। इससे रासमण्डलीकी राधिकाको जिस तरह ईर्षा तथा कोप होता है, उसी तरह ब्रह्म-वैवर्त्तकी राधाको भी होता है। इससे मामला बड़ा बेढब हो जाता है। कृष्णको विरजाके मन्दिरमें पकड़नेके लिये राधाजी रथपर विरजाके मन्दिरमें पहुंचती हैं। विरजाके द्वारपाल हैं श्रीदामा या श्रीदाम। श्रीदामा राधिकाको रोकते हैं। उधर राधिकाके भयसे विरजा गलकर जल हो जाती है और नदी हो बह चलती है। श्रीकृष्ण इससे बड़े दुःखी होते हैं। वह विरजा-को जिलाकर फिर ज्योंकी त्यों बना देते हैं। विरजा गोलोक-नाथके साथ अविरत आनन्दानुभव करने लगती है। क्रमसे उसके सात पुत्र होते हैं। पर उनसे आनन्दमें विघ्न पड़ता है। इससे माता उन्हें शाप देती है और वह सात समुद्र हो जाते हैं। इधर कृष्ण और विरजाका वृत्तान्त सुनकर राधा कृष्णको डांट डपट बताती और शाप देती है कि पृथ्वीपर जाकर बास करो। इसपर कृष्णका किङ्कर श्रीदामा क्रुद्ध हो राधिकाको उलटी सीधी सुनाता है। राधा उसे भी शाप देती है कि जा

धा निर्वाणञ्च तद्दात्री तेन राधा प्रकीर्त्तिता॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डे २३ अ०।

असुर हो जा। दामा भला क्यों चुप रहने लगा था। वह भी कहता है, जा तू भी मनुष्यकुलमें जन्म ले, रायानकी स्त्री बन और तुझे कलङ्क लगे।

अन्तमें दोनों कृष्णके निकट आकर रोते हैं। कृष्ण श्रीदामाको वर देते हैं कि तू असुरोंका राजा होगा, युद्धमें तुझे कोई न हरा सकेगा। शङ्करका शूल छूकर तेरी मुक्ति होगी। राधाको भी आश्वासन कर कहते हैं, "चलो, मैं भी चलता हूं।" बस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वह पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी बातें नवीन और आधुनिक होनेपर भी उसका रङ्ग बंगालके वैष्णवधर्मपर खूब जम गया। जयदेव आदि बंगाली वैष्णव कवियोंका, बङ्गालके जातीय सङ्गीतका और बङ्गालकी रासमण्डली महोत्सवादिका मूल ब्रह्मवैवर्त्त ही है। बंगाली वैष्णवोंने ब्रह्मवैवर्त्तकी एक मूल कथा नहीं ली। इसीसे उनमें उसका उतना प्रचार भी नहीं है। वह यह राधिकाको लोग रायानकी पत्नी जानते हैं, परन्तु ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है कि राधिका विधिके विधानानुसार कृष्णकी विवाहिता पत्नी हैं। विवाहका वृत्तान्त विस्तारसहित लिखता हूं। लिखनेके पहले .गीतगोविन्दके प्रथम श्लोकका स्मरण कराता हूं-

"मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः।
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय॥
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्व कुञ्जद्रुमं।

राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केळयः ॥"

अर्थात् हे राधे ! आकाशमें मेघ छाये हैं, तमाल द्रुमोंसे सारी वनभूमि श्याम हो गयी है, इसलिये तू ही इन्हें घर पहुंचा दे, नन्दके यह कहनेपर राधा और माधव रास्ते परके कुञ्जद्रुमकी ओर चलते हुए, इन दोनोंकी यमुनाकूलकी गुप्त केलियोंकी जय हो ।

इसका क्या अर्थ है ? टीकाकार या भाषान्तरकार कोई भी अच्छी तरहसे इसका अर्थ समझा नहीं सकता । एक भाषान्तर-कार कहता है, "गीतगोविन्दका पहला श्लोक कुछ अस्पष्ट है, कविने नायक नायिकाकी कौनसी अवस्था स्मरण कर यह लिखा है, ठीक नहीं कहा जा सकता । टीकाकारकी रायसे यह राधिकाकी सखीकी उक्ती है । इससे भाव एक तरहसे मधुर हो जाता है सही, पर शब्दार्थ असंगत रहता है ।" वास्तवमें यह सखीकी उक्ति नहीं है । जयदेव गोस्वामीने ब्रह्मवैवर्त्तकी कथाके आधारपर ही यह श्लोक बनाया है । अब मैं ब्रह्म-वैवर्त्तकी कथा यहां लिखता हूं । एक बात कह छोड़ता हूं कि श्रीदामाके शापके अनुसार राधिकाको श्रीकृष्णके कई वर्ष पहले पृथ्वीपर आना पड़ा था । इस हेतु वह कृष्णसे बहुत बड़ी थी । जब वह युवती थी तब यह बालक थे ।

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ ।
तत्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोकुलम् ॥१॥
सरः सुस्वादु तोयञ्च पययामास तत् पयौ ।

उवास वटमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायाबालकविग्रहः।
चकार मायया कस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने ॥३॥
मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम्।
झंझावातं मेघशब्दं वज्रशब्दञ्च दारुणम् ॥ ४ ॥
वृष्टिधारामतिस्थूलां कम्पमानांश्च पादपान्।
दृष्ट्वैवं पतितस्कन्धान् नन्दो भयमवाप ह ॥५॥
कथं यास्यामि गोवत्सं विहाय स्वाश्रमं प्रति।
गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम् ॥६॥
एवं नन्दे प्रवदति रुरोद श्रीहरिस्तदा।
मायाभिया भयेभ्यश्च पितुः कण्ठं दधार सः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्णसन्निधिम्।

ब्रह्मवैवर्त्त, श्रीकृष्णजन्मखण्डे १५ अ०।

अर्थ—एक बार नन्द कृष्णको लेकर वृन्दावन गये। वहांके भाण्डीरवनमें गायोंको चराते थे। उन्होंने सरोवरका सुन्दर जल गायोंको पिलाया और आप भी पीया। वह बालकको गोदमें लेकर वटवृक्षके नीचे बैठे। हे मुने, इसके बाद मायासे बालकरूपधारी कृष्णने अकस्मात् अपनी मायासे आकाश मेघाच्छन्न कर दिया। मेघोंसे आकाशका घिरना, वनका अन्धकार, आंधी, बादलोंकी कड़क और गरज, मूसलधार वृष्टि और वृक्षोंका कांपकर झुकना देखकर नन्द डर गये। गोबछड़ोंको छोड़कर कैसे घर जाऊं, यदि न जाऊं तो इस बालककी क्या

दशा होगी, यह जब नन्द सोच रहे थे तब श्रीहरि रोने लगे, मायासे भयभीत हो पिताके गलेमें लिपट गये। उसी समय राधिका कृष्णके निकट आ पहुंची।

नन्द राधाका अपूर्व्व लावण्य देखकर विस्मित हो गये। वह राधिकासे बोले—"मैंने गर्गसे सुना है कि तू लक्ष्मीसे भी अधिक हरिकी प्यारी है। और यह परम निर्गुण अच्युत महाविष्णु है। मैं तो मनुष्य हूं, विष्णुकी मायासे मोहित हूं। हे भद्रे, तू अपने प्राणनाथको ग्रहण कर, तेरी जहां इच्छा हो वहां जा। अपना मनोरथ पूर्ण करके मेरा पुत्र मुझे लौटा दे।"

नन्दने यह कह कृष्णको राधाके हाथमें सौंप दिया। राधा भी कृष्णको गोदमें ले चल दी। कुछ दूर जाकर राधाने रासमण्डलका स्मरण किया। स्मरण करते ही सुन्दर विहारभूमि बन गयी। कृष्णने वहां पहुंचकर किशोरमूर्त्ति धारण की। वह राधासे बोले. "यदि गोलोककी बात याद हो तो जो कह चुका हूं वह पूरा करूंगा।" जब दोनों प्रेमालाप कर रहे थे तब ब्रह्मा आ उपस्थित हुए। उन्होंने राधाकी बड़ी स्तुति की। पीछे उन्होंने यथाविहित वेद विधिके अनुसार राधाका विवाह कृष्णके साथ कर दिया। पीछे वह चल दिये। रायानके साथ राधाका विवाह शास्त्रानुसार हुआ या नहीं, अगर हुआ था तो इसके पहले हुआ या पीछे, इसका ब्योरा ब्रह्मवैवर्त्तमें कुछ नहीं मिला। राधाकृष्णके ब्याहके बाद विहारवर्णन है। यह कहना व्यर्थ है कि ब्रह्मवैवर्त्तकी रासलीला भी बस यथैव च है।

जी हां, पाठक देखेंगे कि ब्रह्मवैवर्त्तकारने बिलकुल नये वैष्णव धर्म्मको सृष्टि की है। इस वैष्णवधर्म्मकी गन्ध भी विष्णु, भागवत या और किसी पुराणमें नहीं है। इस नये वैष्णवधर्म्मका केन्द्रस्वरूप राधा ही है। जयदेव कविने इस नूतन वैष्णवधर्म्मका अवलम्बन करके ही गीतगोविन्दकी रचना की। बंगालके विद्यापति * चण्डीदास आदि वैष्णव कवियोंने जयदेवका अनुकरण कर कृष्णके गीत बनाये हैं। श्रीचैतन्यदेवने भी इसी नूतन धर्म्मका अवलम्बन कर मधुररसपूर्ण नवीन भक्तिवादका प्रचार किया। तात्पर्य्य यह कि ब्रह्मवैवर्त्तकारने सब कवियोंसे, सब ऋषियोंसे, सब पुराणोंसे और सब शास्त्रोंसे बढ़कर अधिकार बंगालियोंके जीवनपर जमाया है। अच्छा अब यह देखना है कि यह नूतन धर्म्म कहांसे आया और इसका तात्पर्य्य क्या है? भारतवर्षमें जितने दर्शनशास्त्र बने हैं उनमें साधारण रीतिसे छःकी ही प्रधानता है। इन छः शास्त्रोंमें वेदान्त और सांख्य इन दोकी प्रधानता अधिक है। बहुतोंका विश्वास है कि व्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्रसे वेदान्तदर्शन बना है। पर वास्तवमें वेदान्तदर्शनका मूल ब्रह्मसूत्र नहीं, उपनिषद् है। उपनिषदोंका भी नाम वेदान्त है। उपनिषदोंमें कहे हुए ब्रह्मतत्वका निचोड़ बस यही है कि ईश्वरके सिवा और कुछ नहीं है। यह जगत् और जीव ईश्वरके ही अंश हैं। वह एक था, सृष्टिकी इच्छासे बहुत हो गया। वह परमात्मा है। जीवात्मा परमात्माका

* विद्यापति मैथिल कवि हैं, बंगाली नहीं। भाषान्तरकार।

अंश है। ईश्वरकी मायासे वह जीव हो गया है। मायासे मुक्त होते ही वह फिर ईश्वरमें लीन हो जायगा। वह अद्वैतवादसे परिपूर्ण है।

पहलेके वैष्णवधर्म्मकी दीवार इसी वेदान्तके ईश्वरवादके ऊपर खड़ी हुई थी। विष्णु और विष्णुके अवतार कृष्ण वेदान्तके ईश्वर हैं। विष्णुपुराण, भागवत तथा ऐसे ही और और ग्रन्थोंमें जो विष्णुस्तोत्र या कृष्णस्तोत्र हैं वह पूर्णरूपसे या अपूर्णरूपसे अद्वैतवादात्मक हैं। इसका प्रधान उदाहरण शान्तिपर्व्वका भीष्मकृत कृष्णस्तोत्र है।

परन्तु अद्वैतवाद और द्वैतवाद भी बहुत तरहके हो सकते हैं। आधुनिक समयमें शङ्कराचार्य्य, रामानुजाचार्य्य, माध्वाचार्य्य, और वल्लभाचार्य्य, इन चारोंने अद्वैतवादकी भिन्न २ व्याख्या करके अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद और विशुद्धाद्वैतवाद, यह चार प्रकारके मत प्रचार किये हैं। पर प्राचीन समयमें इतने मत नहीं थे। ईश्वर और ईश्वरस्थित जगत्‌के सम्बन्धमें उस समयके दो मत मिलते हैं। पहला तो यह है कि ईश्वरके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ईश्वर ही जगत् है, उसके सिवा और कोई पदार्थ जगतमें नहीं है। दूसरा यह है कि जगत् ईश्वर या ईश्वर जगत् नहीं है, पर ईश्वरमें जगत् है "सूत्रे मणिगणा इव" ईश्वर भी जगत्‌के सब पदार्थोंमें है। किन्तु उनसे भिन्न है। प्राचीन वैष्णव धर्म्म इसी दूसरे मतपर निर्भर है।

दूसरा प्रधान दर्शनशास्त्र सांख्य है। कपिलका सांख्य

ईश्वर नहीं मानता है। परन्तु पीछेके सांख्य ईश्वर मानते हैं। सांख्यकी मोटी बात यही है कि जड़ जगत् या जड़ जगन्मयी शक्ति परमात्मासे बिलकुल पृथक् है। परमात्मा या पुरुष सब तरहसे अकेला है। वह कुछ नहीं करता है और न जगत्से उसका कुछ सम्बन्ध है। जड़ जगत् और जड़ जगन्मयी शक्तिका नाम सांख्यकारोंने 'प्रकृति' रखा है। यह प्रकृति ही सबका सृजन करती है, सबका संधारण तथा संचालन करती है और सबका संहार करती है। इसी प्रकृति-पुरुष तत्वसे प्रकृति-प्रधान तान्त्रिक धर्म्मकी उत्पत्ति हुई है। इस तान्त्रिक धर्म्ममें प्रकृति पुरुषकी एकता अथवा उनका अति घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाया गया है। इसमें प्रकृतिकी प्रधानता होनेसे ही यह धर्म्म लोकप्रिय हुआ था। जो वैष्णवोंके अद्वैतवादसे असन्तुष्ट थे वह तान्त्रिक धर्म्ममें आ गये। ब्रह्मवैवर्त्तके रचयिताने वैष्णवधर्म्मको पुनरुज्ज्वल करनेके लिये वैष्णव धर्म्ममें तान्त्रिक धर्म्मका सारांश मिलाकर यह नया वैष्णव धर्म्म चलाया अथवा उसका पुनः संस्कार किया। उनकी राधा वही है जो सांख्यकारकी मूल प्रकृति है। ब्रह्मवैवर्त्तके ब्रह्मखण्डमें यद्यपि लिखा है कि कृष्णने मूलप्रकृतिको बनाकर राधाको बनाया तथापि श्रीकृष्ण-जन्मखण्डमें स्वयं कृष्ण राधिकाको बार बार मूलप्रकृति कहकर सम्बोधन करते हैं।

"ममार्द्धांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी"

श्रीकृष्णजन्मखण्ड १५ अ० ६७ श्लो०।

परमात्माके सङ्ग प्रकृतिका और कृष्णके साथ राधाका क्या सम्बन्ध है, यह पुराणकारने बताया है । श्रीकृष्ण कहते हैं,

"यथा त्वञ्च तथाहञ्च भेदौ हि नावयोर्ध्रुवम् ।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिकासती ॥५७॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि सन्ततम् ।
विना मृदा घटं कर्त्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम् ॥५८॥
कुलालः स्वर्णकारश्च नहि शक्तः कदाचन ।
तथा त्वया विना सृष्टिं नच कर्त्तुमहं क्षमः ॥५९॥
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः॥६०॥
कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा ।
श्रीकृष्णञ्च तदा तेहि त्वयैव सहितं परम् ॥६२॥
त्वञ्च श्रीस्त्वञ्च सम्पत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी ।
सर्व्वशक्तिस्वरूपाऽसि सर्व्वेषाञ्च ममापि च ॥६३॥
त्वं स्त्री पुमानहं राधे नेति वेदेषु निर्णयः ।
त्वं च सर्व्वस्वरूपाऽसि सर्व्वरूपोऽहमक्षरे ॥६४॥
यदा तेजःस्वरूपोऽहं तेजोरूपाऽसि त्वं तदा ।
न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी ॥६५॥
सर्व्वबीजस्वरूपोऽहं यथा योगेन सुन्दरी ।
त्वं च शक्तिस्वरूपाऽसि सर्व्वस्त्रीरूपधारिणी ॥६६॥"

ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मखण्ड १५ अध्याय ।

अर्थ।

"जहां तू, वहां मैं, निश्चय ही हम दोनोंमें कुछ भेद नहीं है। दूधमें जैसे धवलता, अग्निमें जैसे दाहकता, पृथिवीमें जैसे गन्ध है, वैसे ही मैं सदा तुझमें हूं। कुम्हार मिट्टी विना घड़ा बना नहीं सकता, सुनार सोना विना कुण्डल नहीं बना सकता, वैसे ही मैं भी तेरे विना सृष्टि नहीं कर सकता हूं। तू सृष्टिकी आधार है, मैं अच्युत बीजरूपी हूं। मैं जब तेरे विना रहता हूं, तब लोग मुझे कृष्ण कहते हैं और तेरे साथ होनेसे श्रीकृष्ण कहते हैं। तू श्री, तू सम्पत्ति, तू आधारस्वरूपिणी है, तू मेरी तथा सबकी सर्व्वशक्ति है। हे राधे ! मैं पुरुष और तू स्त्री है, यह वेद भी निर्णय नहीं कर सके। हे अक्षरे ! तू सर्व्वस्व-रूप, मैं सर्व्वरूप। मैं तेजःस्वरूप हूं तो तू तेजोरूपा है। मैं शरीरी नहीं तो तू भी नहीं। हे सुन्दरि ! मैं योगसे सर्व्वबीजस्वरूप होता हूं, तो तू शक्तिस्वरूपा सर्व्वस्त्रीरूपधारिणी हो जाती है।"

और सुनिये-

यथाहञ्च तथा त्वञ्च यथा धावल्यदुग्धयोः।
भेदः कदापि न भवेन्निश्चितञ्च तथावयोः॥ ७६॥

*　　*　　*　　*

त्वत्कलांशांशकलया विश्वेषु सर्व्वयोषितः।
या योषितः सा च भवती यः पुमान् सोऽहमेव च॥९८॥
अहञ्च कलया वह्निस्त्वं स्वाहा दाहिका प्रिया।
त्वया सह समर्थोऽहं नालं दग्धुंच त्वां विना॥९९॥
अहं दीप्तिमतां सूर्य्यः कलया त्वं प्रभात्मिका।

सङ्गतश्च त्वया सार्कं त्वां विनाहं न दीप्तिमान् ॥७०॥
अहञ्च कलया चन्द्रस्त्वं च शोभा च रोहिणी।
मनोहरस्त्वया सार्द्धं त्वां विना च न सुन्दरि ॥७१॥
अहमिन्द्रश्च कलया स्वर्गलक्ष्मीश्च त्वंसति।
त्वया सार्द्धं देवराजो हतश्रीश्च त्वया विना ॥७२॥
अहं धर्म्म च कलया त्वं च मूर्तिश्च धर्म्मिणी।
नाहं शक्तो धर्मकृत्ये त्वां च धर्म्मक्रिया विना ॥७३॥
अहं यज्ञश्च कलया त्वं च स्वांशेन दक्षिणा।
त्वया सार्द्धश्च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना ॥७४॥
कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सति।
त्वयालं कव्यदाने च सदा नालं त्वया विना ॥७५॥
त्वं च सम्पत्स्वरूपाऽहमीश्वरश्च त्वया सह।
लक्ष्मीयुक्तस्त्वया लक्ष्म्यानिःश्रीकश्चापि त्वां विना ॥७६॥
अहं पुमांस्त्वं प्रकृतिर्न स्रष्टाऽहं त्वया विना।
यथा नाऽलं कुलालश्च घटंकर्त्तुं मृदा विना ॥७७॥
अहं शेषश्च कलया स्वांशेन त्वं वसुन्धरा।
त्वां शस्यरत्नाधाराञ्च बिभर्मि मूर्ध्नि सुन्दरि ॥७८॥
त्वं च शान्तिश्च कान्तिश्च मूर्त्तिर्मूर्त्तिमती सति।
तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुत्तृष्णा च परा दया ॥७९॥
निद्रा शुद्धा च तन्द्रा च मूर्छा च सन्ततिः क्रिया।
मुक्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां दुःखरूपिणी ॥८०॥
ममाधारा सदा त्वं च तवात्माऽहं परस्परम्।

यथा त्वं च तथाऽहं च समौ प्रकृतिपूरुषौ।
नहि सृष्टिर्भवेद्द् विद्वयोरेकतरं विना॥८१॥

ब्रह्म० श्रीकृष्णजन्मखंडे ६७ अ० (१)

अर्थ

"जैसे दूध और उजलापन, वैसे ही जहां मैं वहां तू। हम दोनोंमें कभी भेद नहीं होगा, यह निश्चय है। इस विश्वकी सब स्त्रियां तेरे कलांशकी अंशकला हैं, जो स्त्रियां हैं वह तू है और जो पुरुष हैं वह मैं हूं। कलासे मैं अग्नि और तू प्रिया दाहिका स्वाहा, तेरे साथ रहनेसे मैं दग्ध कर सकता हूं, तेरे न रहनेसे नहीं कर सकता। मैं दीप्तिमानोंमें सूर्य्य और तू कलांशसे प्रभा है। तेरे संग रहनेसे मैं दीप्तिमान होता हूं और तेरे न होनेसे नहीं। कलासे मैं चन्द्र, तू शोभा और रोहिणी है। तेरे सङ्ग मैं मनोहर हूं। हे सुन्दरि, तेरे न होनेसे नहीं। हे सति, मैं कलासे इन्द्र, तू स्वर्गलक्ष्मी है। तेरे होनेसे मैं देवराज, नहीं तो हतश्री हो जाता हूं। मैं कलासे धर्म्म, तू धर्म्मिणी मूर्त्ति है। तू धर्म्मक्रियाकी मूर्त्ति है। तेरे बिना मैं धर्म्मकार्य्यमें असमर्थ हूं। कलासे मैं यज्ञ, तू अपने अंशसे दक्षिणा, तेरे रहनेसे मैं फल देता हूं, तेरे न रहनेसे नहीं देता। कलासे मैं पितृलोक हूं। हे सति, तू अपने अंशसे स्वधा, तेरे बिना पिण्डदान वृथा है। तू संपत्स्वरूपा है, तेरे रहनेसे

(१) वङ्गवासी कार्य्यालयसे प्रकाशित संस्करणसे उद्धृत। मूलमें कुछ गड़बड़ मालूम होती है।

मैं प्रभु हूं। तू लक्ष्मी, तेरे रहनेसे मैं लक्ष्मीयुक्त हूं, तेरे बिना निःश्रीक। मैं पुरुष तू प्रकृति, तेरे विना मैं सृष्टिकर्त्ता नहीं। कुम्हार मिट्टीके विना जैसे घट नहीं बना सकता वैसे ही तेरे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता। मैं कलासे शेष हूं, तू अपने अंशसे वसुन्धरा है। हे सुन्दरि, शस्यरत्नाधारस्वरूपा तू है, तुझे मैं मस्तकपर धारण करता हूं। हे सति, तू शान्ति, कान्ति, मूर्त्ति, मूर्त्तिमती, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, परा, दया, शुद्धा, निद्रा, तन्द्रा, मूर्छा, सन्तति, क्रिया, मुक्तिरूपा, भक्तिरूपा और देहधारियोंकी दुःखरूपिणी है। तू सदा मेरा आधार, मैं तेरी आत्मा, जहां तू वहीं मैं, हम दोनों समान प्रकृति पुरुष हैं। हे देवि, दोनोंमेंसे एकके विना सृष्टि नहीं होती।"

इस प्रकार और भी बहुतसी बातें उद्धृत की जा सकती हैं। यह सांख्यका ठीक प्रकृतिवाद नहीं है। सांख्यकी प्रकृति तन्त्रशास्त्रमें शक्ति बन गयी है। प्रकृतिवाद और शक्तिवादमें बस इतना ही भेद है कि प्रकृति पुरुषसे विलकुल भिन्न है। सांख्यकारने प्रकृतिपुरुषका सम्बन्ध स्फटिकपात्रमें उड़हुलके फूलकी छायाके समान बताया है। स्फटिकपात्र और उड़हुलका फूल परस्पर बिलकुल भिन्न हैं। पर पुष्पकी छाया स्फटिकपर पड़ती है। बस इतनी ही घनिष्ठता है। परन्तु शक्तिके साथ आत्माका सम्बन्ध यही है कि आत्मा ही शक्तिका आधार है। जिस प्रकार आधारसे आधेय भिन्न नहीं रह सकता,

उसी प्रकार आत्मा और शक्ति पृथक् नहीं रह सकती। यह शक्तिवाद केवल तन्त्रमें ही है, ऐसा नहीं। वैष्णव पौराणिकोंने भी सांख्यकी प्रकृतिको वैष्णवी शक्तिमें परिणत किया है। प्रमाणमें विष्णुपुराण देखिये:—

"नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम! ॥१५॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्म्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम् ॥१६॥
स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रीर्भूमिर्भूधरो हरिः।
सन्तोषो भगवान् लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय! शाश्वती ॥१७॥
इच्छा श्रीर्भगवान् कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा तु सा।
आज्याहुतिरसौ देवो पुरोडाशो जनार्दनः ॥१८॥
पत्नीशाला मुने! लक्ष्मीः प्राग्वंशो मधुसूदनः।
क्षितिर्लक्ष्मीर्हरिर्यूपो इध्मा श्रीर्भगवान् कुशः ॥१९॥
सामस्वरूपो भगवान् उद्गीतिः कमलालया।
स्वाहा लक्ष्मीर्जगन्नाथो वासुदेवो हुताशनः ॥ २०॥
शङ्करो भगवान् शौरिर्भूतिर्गौरी द्विजोत्तम!
मैत्रेय! केशवः सूर्य्यस्तत्प्रभा कमलालया ॥२१॥
विष्णुः पितृगणः पद्मा स्वधा शाश्वततुष्टिदा।
द्यौः श्रीः सर्व्वात्मको विष्णुरवकाशोऽतिविस्तरः ॥२२॥
शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः श्रीस्तस्यैवानपायिनी।
धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्व्वत्रगो हरिः ॥२३॥

जलधिर्द्विज ! गोविन्दस्तद्वेला श्रीर्महामते !
लक्ष्मीस्वरूपमिन्द्राणी देवेन्द्रो मधुसूदनः ॥२४॥
यमश्चक्रधरः साक्षाद् धूमोर्णा कमलालया ।
ऋद्धिः श्रीः श्रीधरो देवः स्वयमेव धनेश्वरः ॥२५॥
गौरी लक्ष्मीर्महाभागा केशवो वरुणः स्वयम् ।
श्रीर्देवसेना विप्रेन्द्र ! देवसेनापतिर्हरिः ॥२६॥
अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम !
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहुर्त्तोऽसौ कला तु सा ॥२७॥
ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ।
लताभूता जगन्माता श्रीर्विष्णुर्द्रुमसंस्थितः ॥२८॥
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः ।
वरप्रदो वरो विष्णुर्वधुः पद्मवनालया ॥२९॥
नदस्वरूपा भगवान् श्रीर्नदीरूपसंस्थितिः ।
ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया ॥३०॥
तृष्णाः लक्ष्मीर्जगत्स्वामी लोभो नारायणः परः ।
रतिरागौ च धर्मज्ञ ! लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ॥३१॥
किञ्चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते ।
देवतिर्य्यङ्मनुष्यादौ पुंनाम्नि भगवान् हरिः ।
स्त्रीनाम्नि लक्ष्मीर्मैत्रेय ! नानयोर्विद्यते परम् ॥३२॥"

श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेऽंशे अष्टमोऽध्यायः ।

"विष्णुकी श्री वह जगन्माता अक्षय और नित्य है। हे द्विजोत्तम ! विष्णु सर्व्वगत है, यह भी वैसी ही है। यह वाक्य

है, विष्णु अर्थ है; यह नीति है, हरि नय है; यह बुद्धि है, विष्णु बोध है; विष्णु धर्म्म है, यह सत्क्रिया है; विष्णु स्रष्टा, यह सृष्टि है; श्रीभूमि, हरि भूधर है; भगवान् सन्तोष हैं, हे मैत्रेय! लक्ष्मी सदैव तुष्टि है। श्री इच्छा, भगवान् काम हैं; भगवान् यज्ञ, श्री दक्षिणा है। जनार्द्दन पुरोडाश, देवी आद्याहुति है। हे मुने! लक्ष्मी पत्नीशाला, मधुसूदन प्राग्वंश हैं। हरि यूप, लक्ष्मी क्षिति है; भगवान् कुश, श्री इध्या; भगवान् साम, कमला उद्गीति; लक्ष्मी स्वाहा, जगत्पति वासुदेव अग्नि; भगवान श्रीकृष्ण शङ्कर हैं, हे द्विजोत्तम! लक्ष्मी गौरी है। हे मैत्रेय! केशव सूर्य्य, लक्ष्मी उसकी प्रभा है। विष्णु पितृगण, पद्मा नित्य तुष्टिदा स्वधा; श्री स्वर्ग, सर्व्वात्मक विष्णु अतिविस्तृत आकाशस्वरूप है। श्रीधर चन्द्र, श्री उसकी अक्षय कान्ति; लक्ष्मी जगच्चेष्टा धृति, विष्णु सर्वत्र जानेवाली वायु। हे द्विज! गोविन्द जलधि, हे महामते! श्री वेला (समुद्रतट); लक्ष्मी इन्द्राणी, मधुसूदन इन्द्र हैं। चक्रधर विष्णु साक्षात् यम, लक्ष्मी धूमोर्णा है; श्री ऋद्धि, श्रीधर स्वयं धनेश्वर हैं। केशव स्वयं वरुण, महाभागा लक्ष्मी गौरी; हे विप्रेन्द्र! श्री देवसेना, हरि देवसेनापति हैं। गदाधर पुरुषकार, हे द्विजोत्तम! लक्ष्मी शक्ति है। लक्ष्मी काष्ठा है, हरि निमेष हैं; यह मुहूर्त और वह कला है। लक्ष्मी आलोक और सर्व्वेश्वर हरि प्रदीप हैं। जगन्माता श्री लता और विष्णु द्रुम हैं। श्री रात्रि और चक्रधर दिवस हैं। विष्णु वरप्रद वर, लक्ष्मी वधू है। भगवान् नद, श्री नदी; पुण्डरीकाक्ष विष्णु ध्वज और

कमला पताका है। लक्ष्मी तृष्णा, जगत्स्वामी नारायण परम लोभ हैं, हे धर्मज्ञ ! लक्ष्मी रति, गोविन्द राग हैं। अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं, संक्षेपसे कहता हूं कि देव तिर्यक् मनुष्यादिमें हरि पुरुष और लक्ष्मी स्त्री है। हे मैत्रेय ! इन दोनोंके सिवा और कुछ भी नहीं है।"

वेदान्तमें जो मायावाद है, सांख्यमें वही प्रकृतिवाद है। प्रकृतिसे शक्तिवाद हुआ। इन कई श्लोकोंमें शक्तिवाद और अद्वैतवाद मिल गये हैं। मालूम होता है, इन्हें ही स्मरण कर ब्रम्हवैवर्त्तकारने कृष्णसे राधाको कहलाया है कि तेरे बिना मैं कृष्ण और तेरे रहनेसे श्रीकृष्ण कहलाता हूं। विष्णुपुराणकी श्री लेकर वह श्रीकृष्ण हुए हैं। विष्णुपुराणमें श्रीके सम्बन्धमें जो कहा गया है ब्रह्मवैवर्त्तमें ठीक वही राधाके सम्बन्धमें कहा गया है। वही श्री राधा है। इस परिच्छेदका शीर्षक मैंने लिखा है श्रीराधा। राधा ईश्वरकी शक्ति है, दोनोंका परिणय विधिसम्पादित है। वह शक्तिमान्‌की शक्तिकी स्फूर्त्ति है। दोनोंका विहार उसी शक्तिका विकाश है।

प्रचलित ब्रह्मवैवर्त्तमें "राधाका तत्व" क्या है, क्या यह शायद इतनी देरमें पाठकोंको समझा सका हूं। परन्तु आदिम ब्रह्मवैवर्त्तमें भी कुछ "राधा तत्व" था ?

मालूम होता है था, पर ऐसा नहीं। वर्त्तमान ब्रह्मवैवर्तमें राधा शब्दकी व्युत्पत्ति अनेक प्रकारसे दी हुई है। उनमेंसे दो टिप्पणीमें पहले दे चुका हूं। और एक यहां देता हूं-

रेफो हि कोटिजन्मानं कर्मभोगशुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासञ्च मृत्युञ्च रोगमुत्सृजेत् ॥१०६॥
धकार आयुषो हानिराकारो भवबन्धनम्।
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः ॥१०७॥
राकारो निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे।
सर्व्वेप्सितं सदानन्दं सर्व्वसिद्धत्रोघमीश्वरम् ॥१०८॥
धकारः सहवासञ्च तत्तुल्यं कालमेव च।
ददार्ष्टि साष्टिं सारूप्यं तत्वज्ञानं हरेः समम् ॥१०९॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण कृष्ण जन्मखण्ड १३ अ०

इनमें राधा शब्दकी यथार्थ व्युत्पत्ति एक भी नहीं है। राधा धातु आराधना या पूजाके अर्थमें व्यवहृत होता है। कृष्णकी जो आराधिका है, वही राधा या राधिका है। प्रचलित ब्रह्मवैवर्त्तमें व्युत्पत्ति नहीं है। जिन्होंने इस राधा शब्दकी वास्तविक व्युत्पत्ति छिपाकर व्याकरण-विरोधी कितने ही छलकपटोंसे भ्रान्ति उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया है और उसे पुष्ट करनेके लिये सामवेदकी भूठी दुहाई दी है (१) उन्होंने राधा शब्दकी सृष्टि कदापि नहीं की थी। जिन्होंने राधा शब्दकी वास्तविक व्युत्पत्तिका अनुसरण कर राधाका रूपक नहीं बनाया, वह राधाके सृष्टिकर्त्ता नहीं हैं। इससे मेरी राय है कि आदिम ब्रह्मवैवर्त्तमें ही राधाकी पहले पहल सृष्टि हुई है। और उसमें राधा कृष्णाराधिका (कृष्ण प्रिया) एक आदर्श गोपी थी, इसमें सन्देह नहीं।

(१) राधा शब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता। १३ अ० १५३।

राधा शब्दका एक और अर्थ है। विशाखा नक्षत्रका एक नाम राधा (१) भी है। कृत्तिकासे विशाखा चौदहवां नक्षत्र है। पहले कृत्तिकासे वर्षकी गिनती होती थी। कृत्तिकासे राशि गणना करनेपर विशाखा ठीक बीचमें आ जाती है। इसलिये राधा रासमण्डलके मध्यमें चाहे न हो पर राशिमण्डल या राशमण्डलके मध्यमें अवश्य है। इस राशिमण्डलके मध्यमें रहनेवाली राधासे रासमण्डलकी राधाका कुछ सम्बन्ध है या नहीं, यह असली ब्रह्मवैवर्त्तके विना स्थिर करना असाध्य है।

अथर्व्ववेदकी उपनिषदोंमें एकका नाम गोपालतापनी है। इसका विषय कृष्णकी गोपमूर्त्तिकी उपासना है। इसकी रचना देखनेसे मालूम होता है कि वह अधिकांश उपनिषदोंसे नयी है। इसमें लिखा है कि कृष्ण गोपगोपियोंसे परिवृत्त थे। पर गोपियोंका जो अर्थ इसमें लिखा है वह प्रचलित अर्थसे भिन्न है। गोपीका अर्थ अविद्या कला है। टीकाकार कहता है,

गोपायन्तीति गोप्यः पालनशक्तयः।

गोपीजनबल्लभका अर्थ गोपीनां पालनशक्तिनां जनः समूहः तद्वाचया अविद्या कलाश्च तासां बल्लभः स्वामी प्रेरक ईश्वरः।

उपनिषद्में इसी तरह गोपीका अर्थ है। पर रासलीलाकी कुछ चर्चा नहीं है। राधाका नामतक नहीं है। एक प्रधान

(१) राधा विशाखा पुष्येतु सिद्ध तिष्यौ प्रविष्ठया। अमरकोष।

गोपीकी कथा है, पर वह राधा नहीं है। उसका नाम गान्धर्व्वी है। उसकी प्रधानता भी काम केलिमें नहीं तत्वजिज्ञासामें है। ब्रह्मवैवर्तपुराण और जयदेवके गीतगोविन्दके सिवा किसी प्राचीन ग्रन्थमें राधाका नाम नहीं है।

ग्यारहवां परिच्छेद।

:o:

वृन्दावनकी लीलाओंकी समाप्ति।

भागवतमें वृन्दावनकी लीलाओंके बारेमें और भी कई बातें हैं।

(क) नन्द एक रोज स्नानके लिये यमुनामें उतरे। वरुणके दूत उनको पकड़कर वरुण देवताके निकट ले गये। कृष्ण वहांसे नन्दको ले आये। सारांश यह है कि नन्द एक रोज जलमें डूबते थे कृष्णने उन्हें बचा लिया।

(ख) एक दिन एक सांपने नन्दको पकड़ लिया। कृष्णने सांपको मारकर नन्दको बचाया। वह सर्प विद्याधर था। कृष्णके स्पर्शसे वह शापमुक्त हो अपने स्थान चला गया। मतलब यह कि कृष्णने एक रोज नन्दको सांपसे बचाया था।

(ग) शंखचूर नामक असुर एक बार गोपियोंको पकड़कर ले गया। कृष्ण बलदेव असुरके पीछे दौड़े। उसे मारकर गोपियोंको छुड़ा लाये। ब्रह्मवैवर्त्तमें शंखचूरकी कथा और ढंगसे है। इसका कुछ अंश पहले कहा जा चुका है।

(घ) यह तीनों कथाएं विष्णुपुराण, हरिवंश और महाभारतमें नहीं हैं। पर अरिष्टासुर और केशीके वधका वृत्तान्त हरिवंश और विष्णुपुराणमें है और महाभारतमें भी है। शिशुपालने कृष्णकी निन्दा करते समय इनका जिक्र किया है। अरिष्ट वृष रूपमें और केशी अश्व रूपमें था। शिशुपालने इन दोनोंको वृष और अश्व ही कहा है।

ऊपर लिखी हुई तीनों कथाएं भागवतकारकी कपोलकल्पना कही जा सकती है, पर अरिष्टवध तथा केशीवध वैसी कथा नहीं हैं। कह चुका हूं कि केशीवध-वृत्तान्त अथर्व्वसंहितामें है। वहां केशीको कृष्णकेशी लिखा है। कृष्णकेशीका अर्थ है काले केशवाला। ऋग्वेदसंहितामें एक केशिसूक्त है (दसवें मण्डलका १३६ वां सूक्त देखो)। यह केशी कौन है, इसका पता नहीं है। इसकी चौथी और पांचवीं ऋचाओंसे जान पड़ता है कि मुनि ही केशी देवता हैं। मुनिके लम्बे लम्बे बाल थे। इन दोनों ऋचाओंमें मुनियोंकी ही प्रशंसा की गयी है। म्यूर (Muir) साहबने भी यही समझा है। पर पहली ऋचामें कुछ और ही लिखा पहली ऋचाका उल्था रमेश बाबूने यों किया है।

"केशी नामक जो देवता है वह अग्निको, जलको, भूलोक और द्युलोकको धारण करता है। समस्त संसारको केशी ही आलोकसे देखने योग्य बनाता है। ज्योतिका नाम केशी है।"

यह होगा तो जगद्व्यञ्जक ज्योति केशी है और जगत्को

छिपानेवाली ज्योति कृष्णकेशी है। कृष्णने उसका वध किया अर्थात् जगत्‌को आच्छादित करनेवाले अन्धकारका नाश किया।

वृन्दावनकी लीलाओंकी इतिश्री बस यहीं होती है। अब देखना यह है कि, इन लीलाओंमें क्या सार है? ऐतिहासिक बातें तो इनमें कुछ नहीं है, पुराणोंकी कथाएं सब अलौकिक घटनाओंसे परिपूर्ण हैं। उनमें भला ऐतिहासिक तत्व कहां? हां, इतना अवश्य सिद्ध हुआ कि कृष्णपर चोरी और व्यभिचार आदिके जो दोष लगाये जाते हैं वह निर्मूल और मिथ्या हैं। इसीलिये व्रजकी लीलाओंकी इतनी विस्तृत समालोचना की गयी है। ऐतिहासिक तत्व यदि कुछ है, तो बस इतना ही है कि अत्याचारी कंसके भयसे वसुदेवने अपनी स्त्री रोहिणी तथा राम और कृष्ण दोनों पुत्रोंको नन्दके घर छिपाकर रखा था। कृष्णने बचपन और किशोरपन वहीं बिताये थे। कृष्णको बचपनमें लोग बहुत प्यार करते थे, क्योंकि वह रूप रंगमें सुन्दर थे और लड़कोंमें जो गुण होने चाहिये वह भी उनमें थे। किशोरावस्थामें वह बड़े बलवान् थे। वह वृन्दावनके अनिष्टकारी पशु आदिको मारकर ग्वालबालोंकी सदा रक्षा करते थे। वह लड़कपनसे ही सब जीवोंपर दया करते और सबका उपकार करते थे। ग्वालबाल तथा गोपियोंको बहुत मानते थे। सबके साथ हंसते खेलते और सबको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। किशोरावस्थामें ही उनके हृदयमें वास्तविक धर्मतत्व प्रदीप्त हो

उठा था। इतना भी ऐतिहासिक तत्व यह मिला, कहनेका साहस नहीं होता है। पर इतना अवश्य कह सकता हूं कि इससे अधिक कुछ है भी नहीं।

इति द्वितीय खण्ड।

तृतीय खण्ड

यश्चिनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना ।
धर्मार्थव्यवहारार्थं तस्मै सत्यात्मने नमः ।

शान्तिपर्व ४७ अध्याय ।

॥ श्रीः ॥

मथुरा-द्वारका ।

पहला परिच्छेद ।

कंसवध ।

इधर कंसके पास खबर पहुंची कि वृन्दावनमें कृष्ण और बलरामने बेतरह सिर उठाया है। उन्होंने पूतनासे लेकर अरिष्ट तकको मार डाला। देवर्षि नारदने भी आकर कंससे कह दिया कि "राम और कृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं। तुमने जिस कन्याको देवकीके आठवें गर्भकी समझकर मारा था वह वास्तवमें नन्द-यशोदाकी थी। वसुदेव कृष्णको नन्दके यहां छिपाकर उसकी कन्या उठा लाया था।" यह सुन कंस मन ही मन डरा और गुस्सा हो वसुदेवको मार डालनेके लिये तैयार हो गया। उसने धनुर्यज्ञका बहाना कर राम और कृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको वृन्दावन भेजा और इधर इन दोनोंका काम तमाम करनेके लिये अपने बड़े बड़े मल्लोंको ठीक कर रखा। अक्रूर रामकृष्णको मथुरा लिवा लाया (१)। रामकृष्णने रंगभूमिमें पहुंचकर कंसके सिखाये हुए हाथी कुवलयापीड़ और प्रसिद्ध

(१) रास्तेमें कुब्जाकी लीला हुई। विष्णुपुराणमें इसका वर्णन निन्दाके योग्य नहीं है। कुब्जाने अपनेको सुन्दरी होने देख

मल्ल चाणूर और मुष्टिकको मार गिराया। यह देखकर कंसने नन्दको कैद करने, वसुदेवको मार डालने और रामकृष्णको निकाल देनेका हुक्म दिया। इतनेमें कृष्ण कूदकर कंसके मचानपर जा पहुंचे और उन्होंने चोटी पकड़ उसे जमीनपर दे मारा। बस, उसके प्राण निकल गये। फिर कृष्णने वसुदेव देवकी तथा और गुरुजनोंको प्रणाम कर कंसके पिता उग्रसेनको राजसिंहासनपर बिठाया। आप राजा नहीं हुए।

हरिवंश तथा और सब पुराणोंमें कंसबधका वर्णन इसी प्रकारका है। कंसवध ऐतिहासिक घटना है सही, पर इसमें ऐतिहासिकता नहीं है। इसे विश्वास करना, अलौकिक कृष्णसे अपने घर चलनेकी प्रार्थना की। कृष्ण हंसते हंसते लौट गये। विष्णुपुराणमें बस इतना ही लिखा है। कृष्णका यह व्यवहार मानवोचित और सज्जनोचित है। पर भागवत-कार और ब्रह्मवैवर्तकार इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कुब्जाको भक्तिका तुरत पुरस्कार दे उसे चटपट पटरानी बना दिया।

अब मैं भागवतको यहीं प्रणाम करता हूं। आगे इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी क्योंकि भागवतमें ऐतिहासिक बातें कुछ नहीं हैं। जो कुछ है वह विष्णुपुराणमें भी हैं। इसके सिवा जो है वह अलौकिक है। हां, भागवतकी कही हुई बाल-लीला बड़ी प्रसिद्ध है। इसीसे उसकी चर्चा करनी पड़ी। अब भागवतसे बिदा होता हूं।

बातोंका विश्वास करना है। फिर देववाणीको भी विश्वास करना पड़ेगा, क्योंकि कंसका भय उसीसे उत्पन्न हुआ है। इसके सिवा दो गोपबालकोंका विना युद्धके भरी सभामें मथुराके राजाको मार डालना सहजमें विश्वास कर लेने योग्य बात नहीं है। इसलिये अब देखना होगा कि सबसे प्राचीन ग्रंथ महाभारतमें इसका कैसा वर्णन है। सभापर्व्वके जरासन्धवध पर्व्वाध्यायमें श्रीकृष्ण स्वयं अपनी रामकहानी युधिष्ठिरसे कहते हैं कि :

"कुछ समय बीत जानेपर कंसने (१) यादवोंको परास्त कर बार्हद्रथकी सहदेवा और अनुजा नामकी दो कन्याओंसे ब्याह कर लिया। यह दुरात्मा अपने बाहुबलसे भाईबन्दोंको जीतकर सबका प्रधान बन बैठा। भोजवंशी बूढ़े क्षत्रिय मतिमन्द कंसके अत्याचारसे बड़े दुःखी हुए। उन्होंने भाईबन्दोंको छोड़ भाग जानेके लिये मुझसे कहा। मैंने तुरत अक्रूरको आहुककी कन्या प्रदान कर भाईबन्दोंकी भलाईके लिये बलभद्रके साथ कंस और सुनामाका संहार किया।"

इसमें कृष्ण बलरामको वृन्दावनसे बुला लानेकी कुछ बात नहीं है। बल्कि इससे यह जान पड़ता है कि कंसवधके पहले-

(१) कालीप्रसन्न सिंह महोदयका यह भाषान्तर है। उसमें उन्होंने "दानवराज कंस" लिखा है, पर मूलमें ऐसा नहीं है। यथा "कस्यचित्वथ कालस्य कंसो निर्मथ्य यादवान्।" इसलिये उद्धृत करनेमें "दानवराज" शब्द मैंने छोड़ दिया है।

से कृष्ण बलराम मथुरामें थे । और यह भी मालूम होता है कि बूढ़े यादवोंने कृष्णसे भाईबन्दोंको छोड़कर भाग जानेके लिये कहा था । पर उन्होंने ऐसा न कर भाईबन्दोंके हितके लिये कंसको ही मार डाला । इसमें बलरामके सिवा और कोई उनका सहाय था या नहीं, यह प्रगट नहीं होता है । पर यह साफ समझमें आता है कि अन्यान्य यादवोंने खुलकर उनका साथ चाहे न दिया हो पर कंसकी रक्षा किसीने नहीं की । कंस यादवोंपर अत्याचार करता था, इससे मालूम होता है कि उन लोगोंने ही रामकृष्णको बलवान् देख उन्हें अपना नेता बनाया और उनसे कंसका वध कराया । इसके सिवा और कुछ ऐतिहासिक तत्व दिखायी नहीं देता ।

हां, यह ऐतिहासिक तत्व अवश्य मिलता है कि कृष्णने कंसको मारकर कंसके पिता उग्रसेनको ही यादवोंका राजा बनाया । क्योंकि महाभारतमें भी उग्रसेन ही यादवोंका राजा लिखा है । इस देशकी पुरानी रीति यह है कि जो राजाका वध करता है वही राजगद्दीपर बैठता है । कंसको मारनेवाले कृष्ण अनायास ही मथुराका राजसिंहासन ले सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि धर्मसे वह राज्य उग्रसेनका था । उग्रसेनको गद्दीसे उतारकर ही कंस राजा बन बैठा था । कृष्णके लिये धर्म ही प्रधान वस्तु थी । वह बचपनसे ही धर्मात्मा थे । इसलिये जिसका राज्य था उसे ही उन्होंने दे दिया । उन्होंने धर्मके अनुरोधसे ही कंसको मारा था । यह आगे चल

कर दिखाऊंगा कि कृष्ण डङ्केकी चोट कहा करते थे कि जिससे दूसरोंकी भलाई हो वही धर्म है। अत्याचारी कंसके वधसे सारे यादवोंका हितसाधन होता था, इसीसे श्रीकृष्णने कंसका वध किया। केवल धर्मके लिये ही उन्होंने यह काम किया था। यह भी ग्रन्थोंमें लिखा है कि वध करके करूण-हृदय आदर्श पुरुष कृष्णने कंसके लिये विलाप किया था, इस कंस-वधमें ही हमें वास्तविक इतिहाससे पहले साक्षात् होता है। फिर देखते हैं कि कृष्ण परम बलशाली, परम कार्यदक्ष, परम न्यायी, परम धर्मात्मा, परहितरत और परदुःखकातर हैं। यहींसे प्रतीत होता है कि वह आदर्श पुरुष थे।

दूसरा परिच्छेद।

शिक्षा।

पुराणोंमें लिखा है कि कंसवधके बाद कृष्ण बलराम शिक्षा पानेके लिये सान्दीपनि ऋषिके पास काशी गये। चौंसठ दिनोंमें शस्त्रविद्या सीख और गुरुदक्षिणा दे मथुरा वापिस आ गये।

कृष्णकी शिक्षाके बारेमें इसके सिवा और कहीं कुछ नहीं लिखा है। नन्दके घर उनको किसी प्रकारकी भी शिक्षा मिली थी, इसकी चर्चा किसी ग्रन्थमें नहीं है। नन्द वैश्य था और

वैश्योंको वेद पढ़नेका अधिकार है। फिर वैश्योंके घर रहकर भी रामकृष्णको विद्याकी शिक्षा न मिलनी विचित्र बात है। मालूम होता है, शिक्षाका समय आनेके पहले हो वह मथुरा चले आये थे। पिछले परिच्छेदमें महाभारतसे कृष्णके जो वाक्य दिये गये हैं उनसे यही अनुमान होता है कि कंसवधके बहुत पहलेसे वह मथुरामें रहते थे। महाभारतके सभापर्व्वमें शिशुपालने कंसका टुकड़खोर कहकर कृष्णको गालियां दी हैं, यथा—

"यस्य चानेन धर्मज्ञ भुक्तमन्नं बलीयसः।
स चानेन हतः कंसः इत्येतन्न महाद्भुतम्॥"

महाभारत, सभापर्व्व ४० अध्याय।

इससे यही मालूम होता है कि शिक्षाका समय आनेके पहले ही कृष्ण मथुरा लाये गये थे। वृन्दावनमें गोपियोंके संगकी लीला मनगढ़न्त है, उसका यह एक प्रमाण है।

मथुरामें रहनेके समय उनकी किस प्रकारकी शिक्षा हुई, इसका भी कोई विशेष वर्णन नहीं है। हां, सान्दीपनि मुनिके पास जाकर चौंसठ रोजमें अस्त्रविद्या सीख आनेकी कथा है। जो कृष्णको ईश्वर मानते हैं उनमेंसे कुछ कह सकते हैं कि सर्व्वज्ञ ईश्वरके लिये शिक्षाकी क्या आवश्यकता है? उसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि फिर सान्दीपनिके घर जाकर चौंसठ दिनोंतक पढ़नेकी ही क्या आवश्यकता थी? बात यह है कृष्ण ईश्वरके अवतार होनेपर भी मानव धर्म्मके अवलम्बी थे और मानुषी शक्तिसे ही सब काम करते थे। यह मैं पहले

ही कह चुका हूं। अब उसके प्रमाण देता हूं। मानुषी-शक्तिसे काम करनेके लिये मानुषी-शक्तिको अनुशीलित और विकसित करना पड़ेगा। यदि मानुषी-शक्ति स्वयं विकसित हो, सब काम करनेके योग्य हो जाय तो वह ईश्वरीय शक्ति है, मानुषी नहीं। कृष्णको शिक्षा मनुष्योंकी तरह हुई थी, इसका प्रमाण सान्दीपनि कथाके सिवा और भी है। कृष्णने समस्त वेद पढ़े थे। महाभारतके सभापर्व्वमें भीष्मने कृष्णके पूजनीय होनेका एक कारण यह भी बताया है कि वह निखिल वेदवेदाङ्गके पारदर्शी हैं। उनके सदृश वेदवेदाङ्गका जाननेवाला दूसरा मनुष्य दुर्लभ है।

"वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्यस्ति विशिष्टः केशवादृते॥"

महाभारत, सभापर्व्व, ३८ अध्याय।

कृष्णकी वेदज्ञताके प्रमाण महाभारतमें भरे पड़े हैं। यह वेदज्ञान उन्हें आपही आप नहीं हो गया था, उन्होंने आङ्गिरस वंशके घोर ऋषिसे वेदाध्ययन किया था। इसका प्रमाण छान्दोग्य उपनिषद्में है।

अच्छे अच्छे ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी उच्च शिक्षाका उच्चांश उस समय तपस्या कहलाता था। बड़े बड़े राजर्षियोंने किसी न किसी समय तपस्या की थी, ऐसी कथा प्रायः मिलती है। इस समय हम तपस्याका जो अर्थ समझते हैं वेदोंके अधिकांश स्थानोंमें उसका वह अर्थ नहीं है। हम तपस्याका अर्थ समझते हैं, वनमें आंखें मून्द, सांस रोक और खानापीना छोड़कर ईश्वरका

ध्यान करना। किन्तु किसी किसी ग्रन्थमें लिखा है कि दो एक देवताओंने और महादेवने भी तपस्या की है। विशेषकर शतपथ ब्राह्मणमें है कि स्वयं परब्रह्मको सृष्टि करनेकी इच्छा हुई तो उसने तपस्याके बलसे ही सृष्टि की थी, यथा :—

"सोऽकामयत। बहुःस्यां प्रजायेति।

स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्व्वमसृजत॥"

२ वल्ली, ६ अनुवाक।

अर्थ—उसने इच्छा की, मैं प्रजाकी सृष्टि कर बहुत हूंगा। उसने तपस्या की। उसने तपस्या करके यह सारी सृष्टि की।

इन सब स्थानोंमें तपस्याका अर्थ चित्त एकाग्र कर अपनी सब शक्तियोंका अनुशीलन तथा विकाश करना है। महाभारतमें कहा है कि कृष्णने हिमालय पर्व्वतपर दस वर्ष तपस्या की थी। महाभारतके ऐशिक पर्व्वमें लिखा है कि अश्वत्थामाके छोड़े हुए ब्रह्मशिरा अस्त्रसे उत्तराका जब गर्भपात होने लगा तब उस मरे हुए बच्चेको फिर जिलानेकी प्रतिज्ञा कर कृष्णने अश्वत्थामासे कहा था, लो मेरा तपोबल देखो।

आदर्श मनुष्यकी शिक्षा भी आदर्श ही होगी। फल भी वैसा ही होगा। पर प्राचीन कालकी आदर्श शिक्षा कैसी थी, यह मालूम न हो सका। सचमुच इसका बड़ा दुःख है।

*

तीसरा परिच्छेद ।

जरासन्ध ।

हम देखते हैं कि भारतवर्षमें विशेषकर उत्तर भारतमें, बराबर कोई न कोई चक्रवर्त्ती राजा होता आया है, जिसको प्रधानता अन्यान्य राजा स्वीकार करते थे। कोई कर देता था, कोई सदा आज्ञा पालन करता था और युद्धके समय सब ही सहायता देते थे। ऐतिहासिक समयमें चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, अशोक, महा प्रतापशाली गुप्तवंशी नृपतिगण, हर्षवर्द्धन, शिलादित्य, और आधुनिक समयमें पठान और मुगल यह सब ही इसी प्रकारके सम्राट् थे। हिन्दू राज्यके समय मगधाधिपति ही प्रायः सम्राट् होते थे। मैं जिस समयका वर्णन करता हूं उस समय भी मगधाधिपति ही उत्तर भारतका सम्राट् था। उसका नाम जरासन्ध था। वह बहुत प्रसिद्ध था। महाभारत, हरिवंश तथा पुराणोंमें जरासन्धके बल और प्रतापका वर्णन बहुत विस्तारसे है। लिखा है कि कुरुक्षेत्रके युद्धमें समस्त क्षत्रिय एकत्र हुए थे। वहां दोनों ओरकी सेनाओंकी संख्या लगभग अठारह अक्षौहिणी थी। पर लिखा है कि अकेले जरासन्धके पास बीस अक्षौहिणी (१) सेना थी।

---

(१) एक अक्षौहिणीमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० हाथी और २१८७० रथ होते हैं। भाषान्तरकार।

कंस इसी जरासन्धका जामाता था। कंसने जरासन्धकी दोनों कन्याओंसे व्याह किया था। कंसके मारे जानेपर उसकी दोनों स्त्रियां रोती पीटती अपने बापके पास पहुंचीं। जरासन्धने अपनी बेटियोंकी दुर्दशा देख कृष्णके वधके लिये बड़ी भारी सेना ले मथुराको जा घेरा। जरासन्धकी असंख्य सेनाके सामने यादवोंकी सेना नहींके बराबर थी। पर तो भी कृष्णके सेनापति होनेके कारण यादवोंने जरासन्धको मार भगाया। जरासंधका जोर घटाना उनके लिये असाध्य था, क्योंकि उसकी सेना अनगिन्ती थी। इसलिये जरासन्ध वारंवार मथुरापर आक्रमण करने लगा। यद्यपि जरासन्ध बार बार आक्रमण करके भी विजयी नहीं हुआ, तथापि यादवोंके अञ्जर पञ्जर ढीले हो गये। बार बारकी चढ़ाइयोंसे यादवोंकी मुट्ठीभर सेना छीजने लगी, छीजते छीजते बिल्कुल ही न रहनेका सामान हो गया। परन्तु समुद्रकी तरंगोंकी तरह जरासन्धकी अगाध सेनाकी क्षयवृद्धिका कुछ भी पता न चला। इस तरह सतरह बार घेरे जानेपर यादवोंने कृष्णके परामर्शसे मथुरा छोड़कर दुराक्रम्य प्रदेशमें दुर्ग बनाकर रहनेका विचार किया। बस, द्वारका नामक द्वीपमें यादवोंके लिये पुरी बनी और दुरारोह रैवतक पर्व्वतपर द्वारकाकी रक्षाके लिये दुर्ग बनाये गये। पर द्वारका जानेके पहले ही जरासन्धने अठारहवीं बार फिर मथुरापर चढ़ाई की।

उसी समय जरासन्धके उकसानेसे एक और प्रबल शत्रुने मथुरापर आक्रमण किया। अनेक ग्रन्थोंसे पता लगता है कि

प्राचीन समयमें भारतवर्षके स्थान स्थानपर यवनोंका राज्य था। आजकलके विद्वानोंने सिद्धान्त निकाला है कि भारतवासी प्राचीन ग्रीसवासियोंको ही यवन कहते थे। पर यह सिद्धान्त ठीक है या नहीं, इसमें बड़ा सन्देह है। वह लोग शायद शक, हूण, ग्रीक प्रभृति सब अहिन्दू सभ्य जातियोंको ही यवन कहते थे। जो हो, कालयवन नामके एक यवन राजाका उस समय भारतवर्षमें बड़ा प्रताप था। उसने आकर मथुराको घेर लिया। परन्तु समरविद्याविशारद कृष्णने उससे युद्ध करना नहीं चाहा, क्योंकि यादवोंकी क्षुद्र सेना उसे युद्धमें परास्त करनेपर भी संख्यामें बहुत न्यून हो जाती। और जो कुछ बच रहती उससे जरासन्धको न हटा सकती। फिर सब प्राणियोंपर दया करनेवाले श्रीकृष्ण धर्म्मरक्षाके सिवा और कहीं नरहत्या करना पसन्द नहीं करते थे। धर्म्मानुमोदित युद्धसे पराङ्मुख होना अधर्म्म है। श्रीकृष्णने गीतामें यही बात कही है। कालयवन और जरासन्ध मथुरापर चढ़ आये हैं। उनसे लड़ना धर्म्मयुद्ध है। आत्मरक्षाके लिये, स्वजनोंकी रक्षाके लिये, और प्रजाओंकी रक्षाके लिये युद्ध न करना घोरतर अधर्म्म है। जहांतक बने युद्धमें नरहत्या कम कर काम निकालना चाहिये। यदि न निकल सके तो लाचारी है। महाभारतके (सभापर्व्व) जरासन्ध-वध-पर्व्वाध्यायमें कृष्णने ऐसा सदुपाय निकाला है जिससे जरासन्धका वध हो जाय और किसी दूसरे मनुष्यके प्राण न जायं। कालयवनके युद्धमें भी उन्होंने वैसा ही किया। उन्होंने कालयवनसे

सम्मुख संग्राम न कर उसके वधके लिये कौशल रचा। श्रीकृष्ण अकेले कालयवनके शिविरमें जा पहुंचे। कालयवनने उन्हें पहचान लिया। उसने श्रीकृष्णको पकड़नेके लिये हाथ बढ़ाया, कृष्ण पकड़ाई न दे भाग चले। कालयवन उनके पीछे दौड़ा। कृष्ण जैसे वेद और युद्धविद्यामें सुपण्डित थे वैसेही शारीरिक व्यायाममें भी सुदक्ष थे। आदर्श मनुष्यको ऐसा ही होना चाहिये, यह मैंने "धर्म्मतत्त्व" में दिखाया है। कालयवन श्रीकृष्णको न पकड़ सका। कृष्ण दौड़ते हुए एक कन्दरामें घुस गये। लिखा है, वहां मुचुकुन्द नामके ऋषि सोये थे। कालयवनने वहां कृष्णको न देख ऋषिको ही कृष्ण समझ एक लात मारी। लात लगते ही ऋषिने उठकर उसकी ओर देखा। देखते ही कालयवन वहीं जलकर भस्म हो गया।

इस अलौकिक घटनाको सत्य माननेके लिये मैं तय्यार नहीं हूं। असल बात यह जान पड़ती है कि कृष्ण छल करके कालयवनको उसकी सेनासे दूर ले गये और एकान्तमें उन्होंने लड़कर उसे मार डाला। कालयवनके मरते ही उसकी सेना मथुरा छोड़ भाग गयी। फिर जरासन्धकी अठारहवीं चढ़ाई हुई, पर इस बार भी वह अपनासा मुंह लेकर लौट गया।

ऊपर जैसा वर्णन है वैसाही हरिवंश और विष्णुपुराणादिमें है। महाभारतमें स्वयं श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके आगे जरासन्धका जो परिचय दिया है उसमें इस अठारहवीं चढ़ाईका नामतक नहीं है। जरासन्धके साथ यादवोंका युद्ध हुआ था, इसकी

भी कोई स्पष्ट बात उसमें नहीं है। जो कुछ है उससे यही मालूम होता है कि जरासन्ध एक बार मथुरापर चढ़ आया था, पर बलरामने हंस नामक उसके किसी सेवकको मार डाला, जिससे वह खिन्न हो अपने घर लौट गया। अच्छा महाभारतसे वह प्रसंग नीचे उद्धृत कर देता हूं :—

"कुछ समय बीत जानेपर कंसने यादवोंको परास्त कर वार्हद्रथकी सहदेवा और अनुजा नामकी दो कन्याओंसे व्याह कर लिया। यह दुरात्मा अपने बाहुबलसे भाईवन्दोंको जीतकर सबका प्रधान बन बैठा। भोजवंशी बूढ़े क्षत्रियोंने मतिमन्द कंसके अत्याचारसे अति दुखी हो मुझसे भाईबन्दोंके छोड़नेके लिये अनुरोध किया। मैंने तुरत अक्रूरको आहुककी कन्या प्रदान कर भाईबन्दोंकी भलाईके लिये बलभद्रके साथ कंस और सुनामाका संहार किया। इससे कंसका भय तो छूट गया, पर कुछ रोजके बाद ही जरासन्धने बहुत जोर पकड़ा। हमने एकत्र हो ज्ञातिबन्धुओंसे परामर्श किया कि हम लोग शत्रुनाशक महास्त्रसे तीन सौ वर्षतक निरन्तर जरासन्धकी सेनाका नाश करते रहें तो भी वह नहीं घटेगी। देवताओंके तुल्य तेजस्वी, महाबली हंस और डिम्बक उसके अनुगत हैं वह दोनों अस्त्र-शस्त्रोंसे कदापि न मारे जायंगे। हमारा निश्चय है कि वह दोनों वीर और जरासन्ध मिलकर त्रिभुवन विजय कर सकते हैं। हे धर्म्मराज, यह परामर्श केवल हमारा ही ऐसा नहीं, अन्यान्य राजा भी इसका अनुमोदन करेंगे।

हस नामक एक विख्यात राजा था। बलदेवने संग्राममें उसका संहार किया। डिम्बकने लोगोंसे हंसका मारा जाना सुनकर एक ही नाम होनेके कारण अपने मित्र हंसका मारा जाना समझ लिया। हंसके विना जीना व्यर्थ है, यह सोचकर वह यमुनामें डूब मरा। इधर हंसने सुना कि डिम्बक मेरी मृत्युकी झूठी खबर सुनकर डूब मरा, तो वह भी डूबकर मर गया। जरासन्ध इन दोनों वीरोंके मरनेका संवाद सुन अत्यन्त दुखी हुआ और उदास हो अपने नगरको लौट गया। जरासन्धके लौट जानेपर हम लोग सानन्द मथुरामें रहने लगे।

कुछ दिनोंके बाद कंसके मारे जानेसे दुखी हो जरासन्धकी कन्याएं अपने पिताके पास पहुंचीं और बार बार पितासे अनुरोध करने लगीं कि "हमारे पतिके मारनेवालेको मार डालिये।" हमने पहले ही जरासन्धकी शक्ति और सामर्थ्यका अनुमान कर लिया था। उसका स्मरण कर मन बहुत चंचल हो गया। उस समय हम लोग अपनी विपुल धनसम्पत्ति आपसमें बांट मथुरा छोड़ पश्चिमकी ओर भाग गये। अब हम लोग रैवतक पर्व्वतसे शोभित परम रमणीय कुशस्थली नामकी पुरीमें वास करते हैं — वहां ऐसा किला बनाया है कि उसमें रहकर वृष्णि-वंशके महारथियोंकी बात तो दूर रही, स्त्रियां भी अनायास युद्ध कर सकती हैं। हे राजन्! अब हम निर्भय हो वास करते हैं। माधवगण सारे मगध देशमें (१) व्याप्त सबसे श्रेष्ठ रैवतक

(१) पर मूलमें ऐसा नहीं है—यथा

पर्व्वतको देखकर परम सुखी हुए। हम लोगोंने समर्थ होकर भी जरासन्धके उपद्रवके भयसे पर्व्वतपर आश्रय लिया है। वह पर्व्वत तीन योजन लम्बा, एक योजनसे अधिक चौड़ा और उसमें इक्कीस चोटियां हैं। उसमें एक एक योजनपर सौ सौ द्वार हैं और बड़े सुन्दर ऊंचे ऊंचे तोरण हैं। युद्धदुर्म्मद महाबली क्षत्रिय उसमें सदा रहते हैं। हे राजन्, हमारे कुलमें अठारह हजार भाई हैं। आहुकके एक सौ पुत्र हैं, वह सब ही अमरतुल्य हैं। चारुदेष्ण और उनके भ्राता, चक्रदेव, सात्यकि, मैं, बलभद्र और युद्धविशारद शाम्ब यह सातों रथी हैं। कृतवर्म्मा, अनाधृष्टि, समोक, समितिञ्जय, कङ्क, शङ्कु और कुन्ति यह सात महारथी हैं। अन्धक भोजके दो वृद्ध पुत्र और राजा यह दस दृढ़ शरीरवाले महावीर हैं—यह सब ही जरासन्धके मध्यम देशका स्मरण कर यदुवंशियोंके साथ मिल गये हैं।"

यह जरासन्ध वध-पर्व्वाध्याय मौलिक महाभारतका अंश मालूम होता है। एकाध बात क्षेपक हो सकती है, पर अधिकांश मौलिक ही है। यदि यह सत्य हो, तो कृष्ण और जरासन्धके विरोधका ऊपर लिखा वृत्तान्त ही प्रामाणिक मानना पड़ेगा, क्योंकि पहले ही कह चुका हूं कि हरिवंश तथा पुराणोंसे

"आलोच्य गिरिमुख्यं तं मागधं तीर्णमेव च।"

अर्थात् यादवोंके उस गिरिवरकी संस्थापनादिकी आलोचना तथा इस समझसे कि हम मगधनाथके हाथके बाहर आगये हैं, बड़ा हर्ष हुआ। हिन्दी महाभारत भा० का०

महाभारतका मौलिक अंश बहुत प्राचीन है। यदि यह बात ठीक हो, तो जरासन्धका अठारह बार मथुरापर चढ़ना और हारकर लौटना आदि सब ही मिथ्या है। सच्ची बात यही हो सकती है कि जरासन्ध एक बार मथुरापर चढ आया, पर हारकर लौट गया। दूसरी बार फिर उसके आक्रमणकी सम्भावना थी, पर कृष्णने देखा कि चारों ओरसे समतल भूमिके बीच मथुरा नगरीमें वास कर जरासन्धकी असंख्य सेनाका बार बार सामना करना असम्भव है। इसलिये जहां किला बनाकर अपनी थोड़ीसी सेनाकी रक्षा और जरासन्धके दांत खट्टे कर सकें वहीं राजधानी उठाकर वह ले गये। जरासन्ध फिर उधर नहीं गया। जयपराजयकी इसमें कुछ चर्चा नहीं है। इससे केवल यही समझा जाता है कि कृष्ण युद्धकौशलमें पारदर्शी थे, वह परम राजनीतिज्ञ थे और व्यर्थकी मनुष्य हत्याके बड़े विरोधी थे। आदर्श मनुष्यके समस्त गुण उनमें क्रमशः परिस्फुट हो रहे हैं।

चौथा परिच्छेद।

कृष्णका विवाह।

कृष्णकी पहली भार्य्या रुक्मिणी थी। वह विदर्भके राजा भीष्मककी कन्या थी। रुक्मिणी बड़ी रूपवती और गुणवती थी। कृष्णने रुक्मिणीके रूपगुणकी प्रशंसा सुन विवाहका प्रस्ताव भीष्मकसे किया। रुक्मिणी भी कृष्णको चाहती थी। पर भीष्मकने कृष्णके शत्रु जरासन्धके बहकानेसे कृष्णका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसने कृष्णके विद्वेषी शिशुपालके साथ रुक्मिणीका ब्याह ठीक कर सब राजाओंको निमंत्रित किया। पर यादवोंको निमंत्रण नहीं दिया। इसपर कृष्णने यादवोंको संग ले भीष्मककी राजधानीमें जाना और रुक्मिणीसे ब्याह करना स्थिर किया।

कृष्णने जो विचारा वही किया। विवाहके दिन रुक्मिणी देवता पूजकर ज्योंही निकली त्योंही कृष्णने उसे रथपर बिठा लिया। भीष्मक और उसके लड़कोंने तथा जरासन्ध आदि भीष्मकके मित्र राजाओंने कृष्णका आना सुनकर ही समझ लिया था कि कुछ उपद्रव होगा। इसलिये वह पहलेसे ही तैयार थे। सबके सब सेना ले कृष्णके पीछे दौड़े। पर कोई कृष्ण या यादवोंका बाल भी बांका न कर सका। कृष्णने रुक्मिणीको द्वारका लाकर उसके साथ शास्त्रानुसार ब्याह किया।

इसीका नाम हरण है। हरण कहनेसे कन्याके ऊपर किसी प्रकारका अत्याचार होना मालूम नहीं होता है। यदि कन्याके मनके लायक वर हो और उसमें उसकी सम्मति हो, तो उसपर क्या अत्याचार हुआ? रुक्मिणी कृष्णको चाहती थी। पीछे यह भी दिखाऊंगा कि अर्ज्जुनके सुभद्राहरणमें भी कोई दोष नहीं है और वह कृष्णका अनुमोदित था। हां, यह मैं स्वीकार करता हूं कि ऐसे कन्या-हरणमें दोष है या नहीं, इसका विशेष विचार करना आवश्यक है। मैं इसका विचार सुभद्राहरणके समय करूंगा, क्योंकि कृष्णने स्वयं उस समय इसका विचार किया है। इस कारण अभी उस विषयमें कुछ न कहूंगा।

इसके भीतर एक बात और है। उस समय क्षत्रिय राजाओंमें विवाहकी दो प्रशस्त पद्धतियां थीं- एक स्वयंवर और दूसरा हरण। पर कभी कभी दोनोंसे काम लिया जाता था। जैसा कि काशीके राजाकी कन्या अम्बिकादिके व्याहमें हुआ। इनका स्वयंवर हुआ था। पर आदर्श क्षत्रिय देवव्रत भीष्म स्वयंवरकी परवा न कर तीनों कन्याओंको हर ले गये। स्वयंवर हो चाहे हरण, कन्या किसी एकके हाथ लगते ही उद्धत स्वभाववाले रणप्रिय क्षत्रिय विना युद्ध किये नहीं मानते थे। इतिहासमें द्रौपदीका स्वयंवर और काव्यमें इन्दुमतीका स्वयंवर लीजिये। इनमें कन्याओंका हरण नहीं हुआ, तोभी युद्धसे पिण्ड नहीं छूटा। महाभारतके मौलिक अंशमें रुक्मिणीका हरण नहीं है। शिशुपालवधपर्व्वाध्यायमें कृष्ण कहते हैं:—

"रुक्मिण्यामस्य मूढस्य पार्थ नासीन्मुमूर्षतः ।
न च तां प्राप्तवान् मूढः शुद्रो वेदश्रुतीमिव ॥"

शिशुपालवध-पर्व्वाध्याय ४५ अ० १५ श्लो०

इसपर शिशुपाल उत्तर देता है ।

मत्पूर्व्वां रुक्मिणीं कृष्ण संसत्सु परिकीर्त्तयन् ।
विशेषतः पार्थिवेषु व्रीडां न कुरुषे कथम् ॥
मान्यमानो हि कः सत्सु पुरुषः परिकीर्त्तयेत् ।
अन्यपूर्व्वां स्त्रियं जातु त्वदन्यो मधुसूदन ॥

शिशुपालवध ४५ अ० १८-१६ श्लोक

इसमें कुछ ऐसी बात नहीं है जिससे यह समझा जाय कि रुक्मिणीका हरण हुआ या इसके लिये कोई युद्ध हुआ था। फिर उद्योगपर्व्वमें एक ठौर लिखा है—

"यो रुक्मिणीमेकरथेन भोजान् उत्साद्य राज्ञः समरे प्रसह्य ।
उवाह भार्य्यां यशसा ज्वलन्तीं यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा ॥"

इसमें युद्धकी बात है, हरणकी नहीं ।

और एक ठौर रुक्मिणी-हरणकी बात है। उद्योगपर्व्वमें सेना निकलनेके समय रुक्मिणीका भ्राता रुक्मी पाण्डवोंके शिविरमें आ पहुंचा। उसके बारेमें लिखा है:—

"अपने बाहुबलसे गर्वित रुक्मीने धीमान् वासुदेवका रुक्मिणी-हरण सह्य न कर 'मैं कृष्णका वध किये विना न लौटूंगा' यह प्रतिज्ञा की। और बढ़ी हुई भागीरथीकी तरह वेगसे चलने वाली विचित्र आयुध लिये चतुरंगिणी सेनाके साथ वह उनकी

(कृष्णकी) ओर दौड़ा। पर उनके पास पहुंचते ही पराजित और लज्जित हो लौट गया। जहां वासुदेवसे वह पराजित हुआ था वहां उसने भोजकट नामका नगर बसाया, जिसमें बहुतसी सेनाएं, हाथी और घोड़े रहते थे। रुक्मी अभी उसी नगरसे एक अक्षौहिणी सेनाके साथ तुरत पाण्डवोंके निकट आया और पाण्डवोंसे छिपकर कृष्णके प्रिय कामके लिये कवच, धनुष, तलवार, खड्ग और शरासन धारण कर सूर्य्यचिह्नित ध्वजाके सहित पाण्डवोंकी सेनामें घुस गया।"

यही बात उद्योगपर्व्वके १६७ वें अध्यायमें है। इस अध्यायका नाम रुक्मीप्रात्याख्यान है। महाभारतके जिस पर्व्वसंग्रह अध्यायकी बात पहले ही कह चुका हूं उसमें लिखा है कि उद्योगपर्व्वमें १८६ अध्याय और ६६९८ श्लोक हैं।

"उद्योगपर्व्व निर्द्दिष्टं सन्धिविग्रहमिश्रितम्
अध्यायानां शतं प्रोक्तं षड़शीतिर्महर्षिणा॥
श्लोकानां षट्सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथैवाष्टौ महात्मना॥"

महाभारत, आदिपर्व्व।

इस समय महाभारतमें १९७ अध्याय पाये जाते हैं। इसलिये पर्व्वसंग्रहाध्याय बननेके पीछे मिलाये गये हैं। इस समय उद्योगपर्व्वमें ६६५७ श्लोक हैं, इसलिये प्रायः एक हजार श्लोक ऊपरसे मिलाये गये हैं। यह ऊपरसे मिलाये हुए ग्यारह अध्याय और एक हजार श्लोक कौनसे हैं? पहले यह देखना होगा

कि उद्योगपर्व्वके कौन कौनसे वृत्तान्त पर्व्वसंग्रहाध्यायमें संगृहीत नहीं हैं। यह रुक्मि-समागम या रुक्मी प्रत्याख्यान पर्व्वसंग्रहाध्यायमें संगृहीत नहीं है। इस हेतु यह ठीक मालूम होता है कि यह १५७ वां अध्याय उन प्रक्षिप्त ग्यारह अध्यायोंमें है। इस रुक्मी प्रत्याख्यान पर्व्वाध्यायसे महाभारतका कुछ सम्बन्ध नहीं है। रुक्मी सैन्यसहित आया, पर अर्ज्जुनने उसे अपनी ओर नहीं लिया। दुर्योधनके पास गया, तो उसने भी कोरा जवाब दिया। लाचार अपनासा मुंह ले लौट गया। बस, इतनेके सिवा और कुछ उसका सम्बन्ध महाभारतसे नहीं है। यह दोनों लक्षण एकत्र कर विचारनेसे अवश्य समझमें आ जायगा कि १५७ वां अध्याय प्रक्षिप्त है। यदि यह प्रक्षिप्त है, तो रुक्मिणी-हरण भी महाभारतमें प्रक्षिप्त है। इसका एक और प्रमाण यह है। विष्णुपुराणमें लिखा है कि महाभारत युद्धके पहले ही बलरामने रुक्मीको जूएके झगड़ेमें मार डाला था। यह सच है कि शिशुपाल रुक्मिणीसे व्याह करना चाहता था और यह भी सच है कि शिशुपाल उससे व्याह न कर सका, कृष्णने कर लिया। व्याहके बाद एक लड़ाई हुई थी पर मौलिक महाभारतमें "हरण"की चर्चा कहीं नहीं है। हरिवंश तथा पुराणोंमें है।

शिशुपालने भीष्मको गालियां देते समय काशिराजके कन्या-हरणका उल्लेख किया है, पर कृष्णको गालियां देते समय रुक्मिणीहरणकी बात नहीं कही। इससे मालूम होता है कि

रुक्मिणी नहीं हरी गयी । पहलेके कथोपकथनसे यही सत्य जान पड़ता है कि शिशुपालने रुक्मिणीको व्याहना चाहा था पर भीष्मकने कृष्णसे ही उसका व्याह कर दिया । पीछे उसके पुत्र रुक्मीने शिशुपालकी ओरसे बखेड़ा खड़ा किया था । रुक्मो बड़ा झगड़ालू था । अनिरुद्धके व्याहके समय जूएके लिये झगड़ा कर बलरामके हाथसे वह मारा गया ।

पांचवां परिच्छेद ।

नरकासुरवध आदि ।

लिखा है कि पृथ्वीके नरकासुर नामका एक पुत्र था । प्राग्ज्योतिष उसकी राजधानी थी । वह बड़ा दुष्ट था । स्वयं इन्द्रने द्वारका आ कृष्णके यहां उसपर नालिश की थी । और अपराधोंके सिवा उसका एक अपराध यह था कि उसने इन्द्र, विष्णु आदि आदित्योंकी माता अदितिके कुण्डल चुरा लिये । कृष्णने इन्द्रके सामने नरकवधकी प्रतिज्ञा की और प्राग्ज्योतिषपुर जाकर उसे मार डाला । नरकके सोलह हजार कन्याएं थीं । कृष्णने अपने घर लाकर उनसे व्याह कर लिया । नरकासुरकी माता पृथ्वीने अदितिके कुण्डल कृष्णको दे दिये और कहा कि आपने जब वराह अवतार धारण कर मेरा उद्धार किया था, तब मैंने आपके स्पर्शसे गर्भवती हो नरकासुरको जना था ।

यह सारीकी सारी कथा अलौकिक और मिथ्या है। विष्णुने वराहका रूप धारण नहीं किया। प्रजापतिने पृथिवीके उद्धारके लिये वराह रूप धारण किया था। यही वेदमें लिखा है। कृष्णके समयमें प्राग्ज्योतिषपुरका राजा नरकासुर नहीं, भगदत्त था। भगदत्त अर्ज्जुनके हाथसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारा गया। इसलिये इन्द्रका द्वारका जाना, पृथ्वीका गर्भ धारण करना और एक मनुष्यके सोलह हजार बेटियां होना आदि सब बातें अलौकिक और असत्य हैं। कृष्णके सोलह हजार रानियां होना भी वैसी ही बात है।

विष्णुपुराणके अनुसार इस नरकासुरवधसे ही पारिजातहरणकी कथा निकली है। कृष्ण अदितिको कुण्डल देनेके लिये सत्यभामाके साथ इन्द्रपुरी गये। वहां सत्यभामाका मन पारिजातपर चला। पर इन्द्र पारिजात देना नहीं चाहता था। बस, कृष्ण और इन्द्रमें लड़ाई हो गयी। इन्द्र बेचारा हार गया। हरिवंशमें यह कथा और ही ढंगसे है। पर जब हम विष्णुपुराणको हरिवंशके पहलेका समझते हैं, तब विष्णुपुराणकी ही बात यहां माननी चाहिये। दोनों ग्रन्थोंकी कथाएं बड़ी अद्भुत और अलौकिक हैं। जब हमलोग इन्द्र, इन्द्रपुरी और पारिजातका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते तब भला पारिजातका हरण कहांसे मान सकते हैं? इसलिये यह बातें छोड़ देना ही अच्छा है।

इसके बाद बाणासुरकी कथा है। यह भी अलौकिक और

अद्भुत वृत्तान्तोंसे परिपूर्ण है। इसलिये इसे भी छोड़ना चाहिये। फिर पौण्ड्र वासुदेवका वध और वाराणसीदाह है। इनमें शायद कुछ ऐतिहासिकता है। पौण्ड्रोंका राज्य ऐतिहासिक है और पौण्ड्र जातिकी बातें ऐतिहासिक तथा अनैतिहासिक समयके अनेक विदेशी ग्रन्थोंमें भी मिलती हैं। रामायणमें उनके दक्षिण भारतमें रहनेकी बात पायी जाती है। किन्तु महाभारतके समय वह आधुनिक बङ्गालके पश्चिम ओर रहते थे। कुरुक्षेत्रके युद्धमें पौण्ड्र उपस्थित थे। उस समय उनकी गिनती अनार्य्य जातियोंमें थी। "दशकुमारचरित"में भी उनकी चर्चा है और चीनका एक यात्री उन्हें बङ्गालमें रहते देख गया है। वह उनकी राजधानी पौण्ड्रवर्द्धनमें भी गया था। कृष्णके समयमें पौण्ड्रका जो राजा था उसका भी नाम वासुदेव था। वासुदेव शब्दके अनेक अर्थ हैं। वसुदेवका पुत्र वासुदेव होता है और जो सर्व्वनिवास अर्थात् सब प्राणियोंका वासस्थान है वह भी वासुदेव है। (१) इसलिये जो ईश्वरका अवतार है वही वासुदेव नामका यथार्थ अधिकारी है। इस पौण्ड्रवासुदेवने यह बात उड़ायी कि द्वारकावासी वासुदेव नकली वासुदेव है, मैं ही असली वासुदेव, ईश्वरका अवतार हूं। उसने कृष्णसे कहला भेजा कि शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मादि आकर मुझे दे जाओ, क्योंकि इनका वास्तविक अधिकारी मैं हूं। कृष्ण

(१) "वसुः सर्व्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु।
स च देवः परं ब्रह्म वासुदेव इति स्मृतः॥"

'तथास्तु' कहकर पौण्ड्रक राज्यमें पहुंचे और वहां उन्होंने चक्रसे उसका सिर काट लिया। वाराणसीका राजा पौण्ड्रकका तरफदार हो कृष्णसे लड़ने आया। कृष्णने शत्रुका नाश कर वाराणसीको भस्म कर दिया।

शत्रुओंका नाश करना अधर्म्म नहीं, पर नगरको जला देना धर्म्मसंगत नहीं है। परम धर्मात्मा कृष्णने ऐसा काम क्यों किया, विश्वासके योग्य इसका कोई विवरण नहीं मिलता है। विष्णुपुराणमें लिखा है कि काशीराजके मारे जानेपर उसके पुत्रने कृष्णके वधके लिये तपस्या कर महादेवसे वर मांगा कि "कृत्या उत्पन्न हो"। जो शरीरधारी अमोघशक्ति यज्ञसे उत्पन्न हो शत्रुका संहार करती है, उसे कृत्या कहते हैं। महादेवने काशीराजके पुत्रको मुंह मांगा वर दिया। कृत्या उत्पन्न हुई। वह भयानक मूर्त्ति धारण कर कृष्णको मारनेके लिये दौड़ी। कृष्णने सुदर्शन चकसे कहा कि मारो इसे। वह सुदर्शन चक्रके डरसे भाग चली। चक्र भी उसके पीछे पीछे चला। कृत्या वाराणसी नगरमें घुसी। चक्रकी अग्निसे सारा नगर जलकर भस्म हो गया। यह घटना नितान्त अस्वाभाविक और अविश्वासके योग्य है। हरिवंशमें पौण्ड्रकवधकी कथा है, पर वाराणसीके जलनेकी नहीं है। महाभारतमें उसकी कुछ चर्चा है, इसलिये वाराणसी-दहन अनैतिहासिक समझकर छोड़ न सका। हां, कृष्णको वाराणसी क्यों भस्म करनी पड़ी, इसका विश्वास योग्य कोई कारण नहीं मिलता है।

जिन युद्धोंकी बात कही गयी है उनके सिवा उद्योगपर्व्वके ४७ वें अध्यायमें अर्जुनने कृष्णकी गान्धार विजय, पाण्डय-विजय, कलिङ्ग-विजय, शाल्व-विजय और एकलव्यवधकी बात कही है। इनमेंसे शाल्व-विजयका वृत्तान्त महाभारतके वनपर्व्वमें है। और किसीका पूरा ब्योरा किसी ग्रन्थमें मुझे नहीं मिला। जान पड़ता है, हरिवंश तथा और सब पुराण बननेके पहले इन युद्धोंकी किम्वदन्तियां लुप्त हो गयी थीं। हरिवंश और भागवतमें बहुतेरी नयी बातें हैं, पर महाभारत या विष्णुपुराणमें उनकी कुछ चर्चा नहीं है। इसलिये मैंने उन्हें छोड़ दिया।

छठा परिच्छेद।

द्वारका-स्यमन्तक।

द्वारकामें कृष्ण राजा नहीं थे। जहांतक समझा जा सकता है, उससे यह जान पड़ता है कि यूरपवाले इतिहासमें जिसे Oligarchy (१) (ओलीगारकी) कहते हैं वही यादव द्वारकामें थे। अर्थात् वह लोग समाजके नायक थे, पर आपसमें सब समान स्पर्द्धी थे। जो उमरमें बड़े थे उन्हें वह अपना मुखिया

---

(१) स्वल्प-स्वामी-तंत्र अर्थात् वह राज्यप्रणाली जिसमें कुछ इने गिने लोगोंके हाथमें शासनका काम रहता है। भाषान्तरकार।

मानते थे। इसीसे उग्रसेन राजा कहलाता था। पर ऐसे मुखियेकी बहुत चलती-बनती न थी। जो बल और बुद्धिमें बड़ा होता था वही नेता बनता था। कृष्ण यादवोंसे बलवीर्य्य, बुद्धि, विक्रम सबमें श्रेष्ठ थे, इससे वही यादवोंके नेता थे। कृष्णके बड़े भाई बलराम तथा कृतवर्म्मा आदि वयोवृद्ध यादव कृष्णके वंशमें थे। कृष्ण भी सदा सबकी मङ्गलकामना करते थे। कृष्ण ही उनकी रक्षा करते और बहुतेरे राज्योंके विजेता होनेपर भी अपने भाईबन्दोंको दिये बिना कोई ऐश्वर्य्य भोग नहीं करते थे। वह सबको समान मानते थे। सबका हित साधन करते थे। आदर्श मनुष्यको बन्धुबान्धवोंके साथ जैसा व्यवहार करना चाहिये, वैसा ही करते थे। पर भाईबन्दोंका स्वभाव सदासे एकसा होता आया है। कृष्णके बलविक्रमके भयसे वह लोग उनके वशमें अवश्य थे। इस बारेमें स्वयं कृष्णने नारदसे जो कहा था वही भीष्म नारदसे सुनकर युधिष्ठिरसे कहते हैं। यह सत्य हो चाहे असत्य, मैं लोकशिक्षाके लिये महाभारतके शान्तिपर्वसे वह उद्धृत करता हूं:—

"भाईबन्दोंको ऐश्वर्य्यका आधा अंश दे और उनके कटु वाक्य सुनकर दासोंकी तरह रहता हूं। अग्नि चाहनेवाले जिस प्रकार अरणियोंको रगड़ते रहते हैं, उसी प्रकार भाईबन्दोंके दुर्वाक्य निरन्तर मेरे हृदयको जलाते रहते हैं। बलदेव बलमें, गद सुकुमारतामें और मेरा पुत्र प्रद्युम्न सुन्दरतामें अद्वितीय है, अन्धक और वृष्णिवंशवाले भी बड़े बली, उत्साही और अध्यवसायी

हैं। वह जिसकी सहायता नहीं करते वह धूलमें मिल जाता है। और वह जिसकी ओर नजर उठाकर देखते हैं वह सहजमें ही मालामाल हो जाता है। यह सब ही मेरी ओर हैं। तो भी मैं असहाय हो दिन काटता हूं। आहुक और अक्रूर मेरे परम मित्र हैं। पर इन दोनोंसे भी एकका स्नेह करनेसे एक नाराज होता है। इसलिये मैं किसीसे स्नेह नहीं करता। पर अत्यन्त मित्रताके कारण उन्हें छोड़ना भी कठिन हो रहा है। इसके बाद मैंने यह स्थिर कर लिया है कि आहुक और अक्रूर जिसके पक्षमें हैं उसके दुःखका ठिकाना नहीं और जिसके पक्षमें वह नहीं हैं, उससे भी बढ़कर और कोई दुःखी नहीं है। जो हो, आजकल मैं दो सहोदर जुआरियोंकी माताकी तरह दोनोंकी जय मनाता हूं। हे नारद, मैं दोनों मित्रोंको वश करनेके लिये इस तरह दुःख पा रहा हूं।"

इसके उदाहरणमें स्यमन्तकमणिका वृत्तान्त पाठकोंको सुनाता हूं। स्यमन्तकमणिकी कथा बड़ी अलौकिक है। अलौकिक अंश निकाल देनेपर जो बचेगा वह भी कहांतक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। जो हो, उसकी स्थूल कथा यों है -

सत्राजित् नामका एक यादव द्वारकामें रहता था। उसे कहीं एक बड़ी सुन्दर मणि मिल गयी। उसका नाम स्यमन्तक था। कृष्णने वह मणि देखकर विचारा कि यह यादवाधिपति उग्रसेनके ही योग्य है। पर विरोधके भयसे उन्होंने सत्राजित्से मणि नहीं मांगी। पर सत्राजित्के मनमें भय था कि कृष्ण

यह मणि मांगेंगे। और मांगनेपर मैं इनकार न कर सकूंगा। इसलिये सत्राजित्‌ने वह मणि स्वयं धारण न कर अपने भाई प्रसेनको दे दी। प्रसेन वह मणि धारण कर एक दिन शिकार खेलने गया। वनमें एक सिंह उसे मार और मणि मुंहमें रख-कर चल दिया। जाम्बवान्‌ने उस सिंहको मार मणि ले ली। जाम्बवान् एक रीछ था। कहा जाता है कि द्वापरयुगमें (१) जाम्बवान् रामचन्द्रकी ओरसे लड़ा था।

इधर प्रसेनके मारे जाने और मणिके न मिलनेसे द्वारका-वासियोंने कृष्णपर सन्देह किया, क्योंकि वह उसे लेना चाहते थे। कृष्णको यह बात बड़ी बुरी लगी। वह मणि ढूंढनेको निकले। जहां प्रसेनकी लाश थी वहीं सिंहके पैर देखे गये। कृष्णने सिंहके पैर दिखाकर अपना कलङ्क दूर किया। फिर सिंहके पैर जिधर गये थे उधर ही वह भी गये। थोड़ी दूर जानेके बाद रीछके पैर दिखायी पड़े। रीछके पैरोंके पीछे पीछे वह एक गुफामें जा पहुंचे। वहां उन्होंने जाम्बवान्‌की पुत्रीकी धात्रीके हाथमें मणि देखी। उन्होंने जाम्बवान्‌को युद्धमें परास्त किया। जाम्बवान्‌ने स्यमन्तक मणि और अपनी कन्या जाम्ब-वती कृष्णको दी। कृष्णने द्वारका आकर सत्राजित्‌को वह मणि दे दी। वह दूसरेकी चीज नहीं लेना चाहते थे। सत्रा-जित्‌ने कृष्णपर अभूत पूर्व्व कलङ्क लगाया था, इसलिये वह डर गया। उसने कृष्णको प्रसन्न करनेके लिये अपनी कन्या

(१) द्वापर नहीं त्रेतामें। भाषान्तरकार।

सत्यभामा दे दी। सत्यभामा बड़ी सुन्दर थी। उसे सब चाहते थे। शतधन्वा, महावीर कृतवर्म्मा और कृष्णके परम भक्त तथा मित्र अक्रूर यह तीन उसके मुख्य चाहनेवाले थे। सत्राजित्‌ने कृष्णको अपनी कन्या दे दी, तो इन तीनोंने अपना बड़ा अपमान समझा। उन्होंने षड्यंत्र कर सत्राजित्‌को मार डालनेकी ठहराई। अक्रूर और कृतवर्म्माने शतधन्वाको सत्राजित्‌के मार डालने और मणि लेनेकी सलाह दी और कहा कि कृष्ण अगर कुछ कहेंगे तो हम तुम्हारी मदद करेंगे। शतधन्वाने शायद कृष्णके वारणावत जानेपर सत्राजित्‌को सोतेमें मारकर मणि ले ली।

पिताके मारे जानेसे दुःखित हो सत्यभामाने कृष्णके यहां नालिश की। कृष्णने द्वारका वापिस आकर बलरामको साथ ले शतधन्वाके वधका उद्योग किया। शतधन्वाने यह सुनकर अक्रूर और कृतवर्म्मासे सहायता मांगी। उन दोनोंने कृष्ण-बलदेवके विरुद्ध सहायता देना अस्वीकार किया। लाचार शतधन्वा अक्रूरको मणि देकर तेज घोड़ेपर भाग गया। कृष्ण बलराम शतधन्वाके घोड़ेको न पकड़ सके क्योंकि वह दोनों रथपर थे। शतधन्वाका घोड़ा भागते भागते थककर मर गया। फिर वह पैदल ही भागने लगा। न्याययुद्धपरायण कृष्णने बलरामको रथपर छोड़ पैदल ही उसका पीछा किया। दो कोस चलकर कृष्णने उसे पकड़ उसका सिर काट लिया। पर मणि उसके पास न मिली। कृष्णने लौटकर बलरामसे यह बात कही, पर

बलरामको इसपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि मणिके लालचसे कृष्ण बातें बनाता है। बलरामने कहा "तुझे धिक्कार है। तू बड़ा लोभी है। यह रास्ता है, तू द्वारका चला जा, मैं अब नहीं जानेका।" यह कह बलरामने तीन वर्ष विदेह-नगरमें वास किया। इधर अक्रूर भी द्वारका छोड़ भाग गया। पीछे यादव अभयदान देकर अक्रूरको द्वारका लिवा लाये। कृष्णने एक दिन सब यादवोंको एकत्र कर अक्रूरसे कहा कि स्यमन्तक मणि तुम्हारे पास है, यह हम जानते हैं। वह तुम्हीं अपने पास रखो, पर एक बार सबको दिखा दो। अक्रूरने सोचा कि अस्वीकार करना ठीक नहीं क्योंकि नंगाझोरी लेनेसे वह अभी मेरे पास निकल आवेगी। यह सोचकर उसने मणि बाहर निकाली। सत्यभामा और बलराम उसे लेनेके लिये बहुत उत्सुक हुए, पर सत्यप्रतिज्ञ कृष्णने बलराम या सत्यभामा किसीको नहीं दी। और न स्वयं ली। अक्रूरको ही दे दी। (१)

इस स्यमन्तक मणिकी कथामें भी कृष्णकी न्यायपरता, स्वार्थ शून्यता, सत्यप्रतिज्ञता और कार्यदक्षता ही अच्छी तरह प्रगट होती है। पर यह सत्यमूलक नहीं जान पड़ती है।

(१) विष्णुपुराणमें तो यही है, पर हरिवंशमें लिखा है कि कृष्णने स्वयं उसे धारण कर लिया।

सातवां परिच्छेद ।

कृष्णका बहुविवाह ।

इस स्यमन्तक मणिकी कथामें कृष्णके बहुविवाहकी कथा आपही आ जाती है। कृष्णने रुक्मिणीसे पहले ही ब्याह किया था, अब इस स्यमन्तक मणिकी कृपासे जाम्बवती और सत्यभामा यह दो और मिल गयीं। यह तो हुई विष्णुपुराणकी बात। हरिवंश एक सीढ़ी और चढ़ गया है। वह दो नहीं चारकी सनद देता है। सत्राजित्के सत्यभामा, प्रस्वापिनी और व्रतिनी यह तीन बेटियां थीं। उसने तीन की तीनों कृष्णको दे दीं। इन चारसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं, क्योंकि वहां गिनती सोलह हजारसे ऊपर है। कहते तो लोग ऐसा ही हैं। विष्णुपुराणमें (४ अंश १५ अ० १६ के श्लो०) है—"भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोड़शसहस्राऽण्येकोत्तरशतानि स्त्रीणामभवन्।" कृष्णके सोलह हजार एक सौ एक स्त्रियां थीं। पर इसी पुराणके पांचवें अंशके २८ वें अध्यायमें पुराणकार प्रधान स्त्रियोंके नाम लिखकर कहता है कि रुक्मिणी के सिवा "अन्याश्च भार्य्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः।" इसके बाद "षोड़शासन् सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः" लिखा है। इससे सोलह हजार सात होती हैं। इनमें सोलह हजार तो नरककी कन्याएं हैं। इन्हें मनगढ़न्त समझकर मैंने पहले ही छोड़ दिया है।

यह कथा मनगढ़न्त है, यह और एक ढंगसे मैं समझाता हूं। विष्णुपुराणके चौथे अंशके पन्द्रहवें अध्यायमें है कि कृष्णके सब स्त्रियोंसे एक लाख अस्सी हजार पुत्र हुए। विष्णुपुराणमें ही दूसरी जगह लिखा है कि कृष्ण एक सौ पचीस वर्ष पृथ्वी-पर रहे। इस हिसाबसे कृष्णके सालमें १४४० और एक दिनमें ८ लड़के होते थे। यहां यही समझना होगा कि कृष्णकी इच्छा-से ही कृष्णकी स्त्रियां पुत्र प्रसव करती थीं।

नरकासुरकी सोलह हजार कन्याओंकी मनगढ़न्त कहानी छोड़े देता हूं। पर तो भी आठ पटरानियां रह जाती हैं। एक रुक्मिणी भी हैं। विष्णुपुराणकार कहता है कि सात और हैं, पर पांचवें अंशके अट्ठाइसवें अध्यायमें आठ रानियोंके नाम मिलते हैं। जैसे-

"कालिन्दी मित्रवृन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा।
देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी॥
मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डना।
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी॥"

(क) कालिन्दी (ङ) रोहिणी (कामरूपिणी)
(ख) मित्रवृन्दा। (च) मद्रराजकी सुता सुशीला।
(ग) नग्नजित्‌की कन्या सत्या (छ) सत्राजित्‌की कन्या सत्यभामा
(घ) जाम्बवती। (ज) लक्ष्मणा।

रुक्मिणी लेकर नौ हुईं। बत्तीसवें अध्यायमें कुछ और ही लिखा है। यहां कृष्णके पुत्रोंके नाम गिनाये जाते हैं—

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्याः कथितास्तव ।
भानुं भैमरिकञ्चैव सत्यभामा व्यजायत ॥ १ ॥
दीप्तिमान् ताम्रपक्षाद्या रोहिण्यां तनया हरेः ।
बभूवुर्जाम्बवत्याञ्च शाम्बाद्या बाहुशालिनः ॥ २ ॥
तनया भद्रवृन्दाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः ।
संग्रामजित् प्रधानास्तु शैब्यायास्त्वभवन् सुताः ॥ ३ ॥
वृकाद्यास्तु सुता माद्र्यां गात्रवत् प्रमुखान् सुतान्
अवाप लक्ष्मणा पुत्राः कालिन्द्याञ्च श्रुतादयः ॥ ४ ॥

रुक्मिणीको छोड़कर इसमें जो नाम आये हैं वह यह हैं—

(क) सत्यभामा (छ)	(ङ) शैब्या (ख)
(ख) रोहिणी (ङ)	(च) माद्री (च)
(ग) जाम्बवती (घ)	(छ) लक्ष्मणा (ज)
(घ) नाग्नजिती (ग)	(ज) कालिन्दी (क)

परन्तु चौथे अंशके पंद्रहवें अध्यायमें है "तासाञ्च रुक्मिणी-सत्यभामा-जाम्बवती-जालहासिनी-प्रमुखा अष्टौ पत्न्यः प्रधानाः।" यहां फिर सब नाम नहीं मिले। "जालहासिनी" एक नया नाम मिला। यह तो हुई विष्णुपुराणकी लीला। हरिवंशमें और भी गड़बड़झाला है। उसमें लिखा है—

महिषीः सप्त कल्याणी स्तोन्या मधुसूदनः ।
उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेताः कुलोद्गताः ॥
कालिन्दीं मित्रवृन्दाञ्च सत्यां नाग्नजितीं तथा ।
सुतां जाम्बवतश्चापि रोहिणीं कामरूपिणीम् ॥

मद्रराजसुताञ्चापि सुशीलां भद्रलोचनाम् ।
सात्राजितीं सत्यभामां लक्ष्मणां जालहासिनीम् ।
शैब्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप्सरसां समाम् ॥

१५ अ० ६७ श्लो०

यहां देखा जाता है कि लक्ष्मणा ही जालहासिनी है। ऐसा होनेपर भी यही नाम मिलते हैं—

(क) कालिन्दी ।
(ख) मित्रवृन्दा ।
(ग) सत्या ।
(घ) जाम्बवान्की कन्या ।
(ङ) रोहिणी ।
(च) माद्री सुशीला ।
(छ) सत्राजित्की कन्या सत्यभामा ।
(ज) जालहासिनी लक्ष्मणा ।
(झ) शैव्या ।

संख्या धीरे धीरे बढ़ती जाती है। अब रुक्मिणी छोड़कर नौ स्त्रियां हुईं। यह हुई ११८ वें अध्यायकी तालिका। अब १६२ वें अध्यायकी भी देखिये।

अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्रधानतः स्मृताः ।
सर्वाधारप्रजाश्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु ।
रुक्मिणी सत्यभामा च देवी नाग्नजिती तथा ।
सुदत्ता च तथा शैव्या लक्ष्मणा जालहासिनी ॥

मित्रवृन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी ।

सभीमा च तथा माद्री × × × ×

इसमें रुक्मिणीके सिवा यह नाम मिलते हैं—

(क) सत्यभामा ।

(ख) नाग्नजिती ।

(ग) सुदत्ता ।

(घ) शैव्या ।

(ङ) लक्ष्मणा जालहासिनी ।

(च) मित्रवृन्दा ।

(छ) कालिन्दी ।

(ज) जाम्बवती ।

(झ) पौरवी ।

(ञ) सुभीमा ।

(ट) माद्री ।

इसका जोड़ ग्यारह होता है । हरिवंशके रचयिता आठ कहकर अब रुक्मिणी समेत बारह नाम देते हैं । पर इतनेसे भी उनकी तृप्ति नहीं है । अब वह एक एक स्त्रीकी सन्तानोंके नाम गिनाते हैं । इसमें गिनती और भी बढ़ गयी है । ग्यारह नाम तो ऊपर हो चुके । अब आगे सुनिये—

(ठ) सुदेवा ।

(ड) उपासंग ।

(ढ) कौशिकी ।

(ण) सुतसोमा।

(त) यौधिष्ठिरी। (१)

अबके गिनती सोलह तक पहुंची है। इनके सिवा सत्रा-जित्‌की व्रतिनी और प्रस्वापिनी नामकी दो कन्याएं और हैं।

महाभारतमें गान्धारी और हैमवती (२) यह और दो नये नाम आते हैं। अब सब नाम मिलाकर देखना चाहिये कि कितनी पटरानियां होती हैं। महाभारतमें हैं—

(क) रुक्मिणी।

(ख) सत्यभामा।

(ग) गान्धारी।

(घ) शैब्या।

(ङ) हैमवती।

(च) जाम्बवती।

महाभारतमें और नाम नहीं हैं, पर "अन्या" शब्द है। इसके बाद विष्णुपुराणके २८ वें अध्यायमें (क), (ख), (ग)के सिवा यह कई नाम मिलते हैं—

---

(१) इनकी भी गिनती आठ पटरानियोंमें ही है। "तासा-मपत्यान्यष्टानां भगवन् प्रब्रवीतु मे" इसके उत्तरमें इन रानि-योंकी सन्तानोंका व्योरा कहा जाता है।

(२) रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैब्या हैमवतीत्यपि।
देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम्॥
मौसलपर्व्व, ७ अध्यायः।

(छ) कालिन्दी ।

(ज) मित्रवृन्दा ।

(झ) सत्या नाग्नजिती ।

(ञ) रोहिणी ।

(ट) माद्री ।

(ठ) लक्ष्मणा जालहासिनी ।

विष्णुपुराणके ३२ वें अध्यायमें इनके अतिरिक्त एक नाम शैब्या है। यह नाम ऊपर दे दिया गया है। फिर हरिवंशके ११८ वें अध्यायकी पहली सूचीमें ऊपरके नामोंके सिवा और कोई नया नाम नहीं है। परन्तु १६२ वें अध्यायमें यह नये नाम हैं;

(ड) सुदत्ता ।

(ढ) पौरवी ।

(ण) सुभीमा ।

(त) देवा ।

(थ) उपासङ्ग ।

(द) कौशिकी ।

(ध) सुतसोमा ।

(न) यौधिष्ठिरी ।

(प) व्रतिनी ।

(फ) प्रस्वापिनी ।

आठकी जगह बाईस नाम मिले। इसमें मनमानी घरजानी

खूब हुई है, इसमें सन्देह नहीं। इनमें (ड) से लेकर ६(फ) तकके नाम केवल हरिवंशमें हैं। इस हेतु यह दस नाम छोड़े जा सकते हैं। तो भी १२ बचे। गान्धारी और हैमवतीके नाम महाभारतके मौसलपर्व्वके सिवा और कहीं नहीं हैं। मौसलपर्व्व क्षेपक है, यह पीछे सिद्ध करूंगा। इसलिये यह दोनों नाम भी छोड़े जा सकते हैं। अब बाकी बचे दस।

विष्णुपुराणके २८वें अध्यायमें जाम्बवतीका नाम यों लिखा है—

"देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी।"

और हरिवंशमें यों है—

"सुता जाम्बवतश्चापि रोहिणी कामरूपिणी।"

इसका अर्थ यदि यह हो कि जाम्बवान्‌की कन्या ही रोहिणी है, तो अर्थ असङ्गत नहीं बल्कि और भी सङ्गत जान पड़ता है। इसलिये जाम्बवती और रोहिणी एक ही हैं। यह दोनों एक हो जानेसे नौ नाम बचे। सत्यभामा और सत्या भी एक ही है। इसका प्रमाण लीजिये—

सत्राजित्‌के वधविषयक प्रश्नके उत्तरमें लिखा है—

"कृष्णः सत्यभामाममर्षताम्रलोचनः प्राह,सत्ये,ममैवावहासना।"

अर्थात् कृष्ण क्रोधसे आंखें लाल करके बोले "सत्ये, इससे तो मेरी ही हंसी होती है।" फिर पांचवें अंशके ३०वें अध्यायमें पारिजात-हरणके समय कृष्ण कहते हैं—

"सत्ये, यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत् प्रियम्।"

जरूरत होनेपर और भी बहुतसे प्रमाण दिये जा सकते हैं। अभी यही बहुत हैं।

सत्यभामाका ही नाम 'सत्या' हो जानेके कारण सत्याको भी छोड़ना पड़ा। अब आठ ही नाम रह गये। जैसे —

१ रुक्मिणी।

२ सत्यभामा।

३ जाम्बवती।

४ शैब्या।

५ कालिन्दी।

६ मित्रवृन्दा।

७ माद्री।

८ जालहासिनी लक्ष्मणा।

इनमेंसे शैब्या, कालिन्दी, मित्रवृन्दा, लक्ष्मणा और माद्री सुशीला यह पांच नाम केवल सूचीमें ही हैं। यह कार्य्यक्षेत्रमें कभी नहीं दिखायी पड़ीं। इनका कब और क्यों व्याह हुआ इसकी बाबत कोई कुछ नहीं लिखता है। कृष्णके जीवनसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। विष्णुपुराणके प्रणेताने इनके पुत्रोंके नाम कृष्णके पुत्रोंके नामोंके साथ जरूर दिये हैं, पर वह कर्म्मक्षेत्रमें कभी नहीं आये। यह पांचों किनकी कन्या थीं, किस देशकी थीं, इसका कहीं कुछ पता नहीं है। केवल सुशीलाके बारेमें लिखा है कि वह मद्रके राजाकी बेटी थी। मद्रके राजा शल्य भी कृष्णके समसामयिक थे। वह नकुल सहदेवके मामा

और कुरुक्षेत्र युद्धके प्रसिद्ध रथी थे। वह और कृष्ण दोनों सतरह रोज तक कुरुक्षेत्रमें अपनी अपनी सेनाके साथ थे। वहां कई बार दोनोंकी भेंट हुई। कृष्णके बारेमें बहुतसी बातें शल्यको और शल्यके बारेमें कृष्णका कहनी पड़ी हैं। कृष्णके बारेमें शल्यको बहुत सी बातें सुननी पड़ी हैं और शल्यके बारेमें कृष्ण-को। पर यह कहीं नहीं प्रगट हुआ कि कृष्ण शल्यके दामाद, बहनोई या और कोई नातेदार हैं। सम्बन्ध मद्रे बस यही पता लगता है कि शल्यने कर्णसे कहा है—"अर्ज्जुन और वासुदेवको अभी मार डालो।" कृष्ण भी शल्यके वधके लिये युधिष्ठिरको नियुक्त कर उसके लिये यमसे हुए। कृष्णका व्याह माद्रीसे हुआ, यह बिलकुल असत्यसा जान पड़ता है। शैव्या, कालिन्दी, मित्रवृन्दा और लक्ष्मणाके कुल, शील, देश और विवाहके बारेमें कोई कुछ नहीं जानता है। निस्सन्देह यह सब काव्यका अलङ्कार मात्र हैं।

केवल माद्री ही नहीं जाम्बवती, रोहिणी और सत्यभामाको भी मैं वैसी ही समझता हूं। जाम्बवती और कालिन्दी आदिमें भेद इतना ही है कि जाम्बवतीके पुत्र शाम्बका नाम यादवोंके साथ बीच बीचमें आया है। पर शाम्बके दर्शन लक्ष्मणाहरणके समय मिलते हैं और कहीं नहीं। लक्ष्मणा दुर्योधनकी बेटी थी। महाभारत जैसे पाण्डवोंका जीवनवृत्त है, वैसा ही कौरवोंका भी है। यदि लक्ष्मणाहरण सत्य होता, तो उसकी चर्चा महाभारतमें अवश्य होती। पर उसमें वह नहीं है। हां,

लक्ष्मणाहरणके सिवा यदुवंशध्वंसमें भी शाम्बजी महाराज पधारे हैं। बल्कि इसमें तो आप अगुआ ही थे। आपने ही पेटमें मूसल बांधकर स्त्रीका रूप धारण किया था। मैं कह चुका हूं कि मौसलपर्व्व क्षेपक है। मूसल सम्बन्धी कथा अलौकिक है, इसलिये यह छोड़ देनेके योग्य है। जाम्बवतीके व्याहके बहुत दिन बाद सुभद्राका व्याह हुआ था। सुभद्राका पौत्र परीक्षित् जब ३६ वर्षका था तब यदुवंशध्वंस हुआ। इस हेतु जब यदुकुलनाश हुआ तब शाम्ब बूढ़ा हो चुका था। बूढ़ोंका गर्भवती स्त्री बनकर ऋषियोंको ठगने जाना असम्भव है।

जाम्बवती रीछकी बेटी थी। इससे वह भी रीछ ही थी। रीछकी बेटी कृष्णकी या और किसी मनुष्यकी स्त्री नहीं हो सकती। इसीसे रोहिणीको कामरूपिणी लिखा है। क्योंकि वह रीछसे मानवी बन जा सकती थी। कामरूपिणी रीछ-कन्याको मैं नहीं मानता और न मैं यही माननेको तैयार हूं कि रीछकी बेटीसे व्याह किया था।

सुनते हैं, सत्यभामाके पुत्र थे, पर वह कार्य्यक्षेत्रमें कभी नहीं आये। उनके विषयमें सन्देह होनेका पहला कारण यही है। हां, रुक्मिणीकी तरह सत्यभामा स्वयं सब कामोंमें पहुंच जाती है। इसके विवाहकी आलोचना भी पूरे तौरसे हो चुकी है

महाभारतके वनपर्व्वके मार्कण्डेयसमस्या पर्व्वाध्यायमें सत्यभामाका पता लगता है। पर यह पर्व्वाध्याय प्रक्षिप्त

है। यह वनपर्व्वकी आलोचनाके समय पाठकोंको मालूम हो जायगा। इसमें द्रौपदी-सत्यभामासंवाद नामका एक छोटासा पर्व्वाध्याय है। वह भी प्रक्षिप्त है। महाभारतकी कथासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह स्वामीके साथ स्त्रीको कैसा आचरण करना चाहिये, इस विषयका एक निबन्ध मात्र है। निबन्धका लक्षण आधुनिक है।

इसके बाद उद्योगपर्व्वमें भी सत्यभामा दिखायी देती है। इस पर्व्वाध्यायका नाम यान-सन्धि है। यह भी क्षेपक है। यह पीछे दिखाऊंगा। कृष्ण कुरुक्षेत्र-युद्धके लिये आमन्त्रित होकर उपप्लव्य नगर आये, युद्धयात्रामें सत्यभामाको संग लानेकी सम्भावना नहीं थी। और कुरुक्षेत्रके युद्धमें सत्यभामा नहीं थी, यह महाभारत पढ़नेसे ही मालूम हो जाता है। सारे युद्धपर्व्वमें और उसके बादके पर्व्वोंमें कहीं सत्यभामाका नाम नहीं है।

मौसलपर्वमें कृष्णकी मानवलीला समाप्त होनेपर सत्यभामाका नाम आया है। पर यह पर्व प्रक्षिप्त है, यह पीछे दिखाया जायगा।

तात्पर्य्य यह कि महाभारतके जो अंश निस्सन्देह मौलिक माने जा सकते हैं उनमें सत्यभामाका नाम कहीं नहीं है। क्षेपकमें तमाम है। सत्यभामाके विषयमें सन्देह होनेका यह दूसरा कारण है।

इसके बाद विष्णुपुराण है। इसमें सत्यभामाके विवाहका

वृत्तान्त स्यमन्तकमणिकी कथाके साथ ही है। जिस मनगढ़न्त कहानीमें कृष्णका व्याह रीछकन्याके साथ हुआ उसीमें सत्यभामाके साथ भी हुआ है। फिर लिखा है कि कृष्णके साथ सत्यभामाका व्याह होनेसे शतधन्वा कुढ़ गया। और उसने सत्यभामाके बाप सत्राजित्‌को मार डाला। कृष्ण उस समय लाक्षाभवनमें पाण्डवोंके भस्म हो जानेका संवाद पाकर उन्हें ढूंढनेके हेतु वारणावत गये थे। सत्यभामाने वहीं अपने पिताके मारे जानेकी खबर कहला भेजी और शतधन्वासे बदला लेनेकी प्रार्थना की। यह बातें बिलकुल झूठ हैं। कृष्ण कभी वारणावत नहीं गये। अगर जाते तो महाभारतमें जरूर लिखा होता। पर उसमें नहीं है। सत्यभामापर सन्देह होनेका यह तीसरा कारण है।

फिर विष्णुपुराणमें सत्यभामाको केवल पारिजातहरणके समय पाते हैं। यह पारिजात-हरण अस्वाभाविक और असत्य घटना है। सत्य और विश्वास योग्य घटनाओंमें सत्यभामाका कहीं पता नहीं है। सन्देहका यह चौथा कारण है।

महाभारतके आदिपर्व्वमें सम्भवपर्व्वाध्यायके ६७वें अध्यायका नाम "अंशावतरण" है। महाभारतकी नायकनायिकाओंमें कौन किस देवदेवी या असुरराक्षसके अंशसे उत्पन्न हुआ था, इसीका व्योरा इसमें लिखा है। अन्तमें लिखा है कि कृष्ण नारायणके, बलराम शेषनागके, प्रद्युम्न सनत्कुमारके—द्रौपदी इन्द्राणीके और कुन्ती तथा माद्री सिद्धि और धृतिके

अंशसे उत्पन्न हुई थीं। कृष्णकी रानियोंके सम्बन्धमें लिखा है कि सोलह हजार रानियां अप्सराओंके अंशसे और रुक्मिणी लक्ष्मीके अंशसे हुई थीं। और किसी स्त्रीका नाम नहीं है। सन्देहका यह पांचवां कारण है। इससे केवल सत्यभामापर ही सन्देह नहीं होता, बल्कि रुक्मिणीको छोड़ कृष्णकी सब पटरानियोंपर होता है। नरककी सोलह हजार कन्याओंकी बात जाने दीजिये, क्योंकि उन्हें अस्वाभाविक समझ पहले ही छोड़ चुका हूं। अब महाभारतके इस अध्यायसे तो यही प्रमाणित होता है कि रुक्मिणीके सिवा श्रीकृष्णके और कोई स्त्री नहीं थी।

रीछके धेवते शाम्बके विषयमें जो कुछ कहा है उसे छोड़ देने पर, रुक्मिणीके पुत्रोंके सिवा और किसी रानीके पुत्र पौत्र कभी किसी कार्य्यक्षेत्रमें नहीं आये। रुक्मिणीकी ही सन्तान राजगद्दीपर बैठी। और किसीके वंशका कहीं पता भी नहीं है।

इन कारणोंसे कृष्णके एकसे अधिक स्त्री होनेमें पूरा सन्देह है। शायद हो भी सकती है। उस समय एकसे अधिक स्त्री रखनेकी रीति ही थी। पाण्डवोंमें सबके ही एकसे अधिक स्त्रियां थीं। आदर्श धार्म्मिक भीष्म अपने छोटे भाईके लिये काशीके राजाकी तीनों कन्याएं हर लाये थे। कृष्णको एकसे अधिक विवाह पसन्द नहीं थे, इसका भी प्रमाण कहीं नहीं मिला। मेरे विचारमें भी यह नहीं आया कि पुरुषोंका एकसे अधिक व्याह करना सदा अधर्म्म है। हां, *अकारण ही एकसे अधिक विवाह करना*

अवश्य अधर्म्म है । पर सब अवस्थाओंमें नहीं । यह मेरी समझमें नहीं आता है कि जिसकी स्त्री कोढ़ या और किसी रोगसे ऐसी हो जाय कि किसी तरह उसके घरका काम न चल सके, तो उसके फिर व्याह करनेसे पाप होगा । जिसकी स्त्री धर्म्म-भ्रष्ट और कुलटा हो गयी हो, वह अदालत गये बिना क्यों नहीं दूसरा व्याह कर सकेगा, यह मेरी क्षुद्र बुद्धिमें नहीं आता है । अदालत जानेसे कैसा गौरव बढ़ता है, इसका उदाहरण सभ्यताके ठेकेदार यूरपवालोंमें हम देखते हैं । जिसे उत्तराधिकारीकी आवश्यकता है वह स्त्रीके वन्ध्या होनेपर फिर क्यों नहीं दूसरा व्याह करेगा ? यूरपने यहूदियोंसे सीखा था कि कभी दूसरा व्याह न करना चाहिये । यदि यह कुशिक्षा वहां न होती तो बोनापार्ट जोसेफाइनको परित्याग कर घोर पातकी न बनता । अष्टम हेनरीको बात बातमें पत्नीहत्या न करनी पड़ती । इसी कारण यूरपमें आजकल सभ्यताके उज्ज्वल प्रकाशमें पत्नी और पति हत्याएं हो रही हैं । हमारे शिक्षित भाइयोंका विश्वास है कि जो कुछ विलायतमें है वही सुन्दर, पवित्र, निर्दोष है और वही पितरोंके उद्धारका कारण है । पर मेरा विश्वास तो यह है कि हम विलायतवालोंसे बहुतसी बातें सीख सकते हैं और वह हमसे सीख सकते हैं । उनमेंसे एक यही विवाह तत्व है ।

यह दिखला चुका हूं कि कृष्णने एकसे अधिक व्याह किये या नहीं इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला । यदि किये ही हों तो क्यों किये, इसका भी विश्वास योग्य वृत्तान्त कहीं नहीं

मिला । स्यमन्तकमणिके साथ जैसी स्त्रियां उन्हें मिलीं, वह नानीकी कहानीके उपयुक्त हैं । और नरकासुरकी सोलह हजार बेटियां तो नानीकी कहानियोंकी भी नानी हैं । यह कहानियां सुनकर हम प्रसन्न हो सकते हैं, पर विश्वास नहीं कर सकते ।

इति तृतीय खण्ड ।

चतुर्थ खण्ड ।

अकुण्ठं सर्व्वकार्येषु धर्म्मकार्य्यार्थमुद्यतम् ।
वैकुण्ठस्य च यद्रूपं तस्मै कार्य्यात्मने नमः ॥

शान्तिपर्व्व ४७ अध्यायः ।

इन्द्रप्रस्थ।

पहला परिच्छेद।

द्रौपदी-स्वयंवर।

महाभारतकी कृष्ण-कथामें कौन अंश मौलिक और विश्वास-के योग्य है, इसकी जांचके लिये प्रथम खण्डमें जो नियम बना आया हूं, उन्हें पाठक अभी जरा स्मरण कर लें।

महाभारतकारने कृष्णको पहले पहल द्रौपदीके स्वयंवरमें दिखाया है। मेरे विचारसे इस अंशके मौलिक होनेमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। यह मैं पहले ही कह चुका हूं कि लासेन् साहब द्रौपदीका होना ही नहीं मानते हैं, क्योंकि वह पाञ्चाली द्रौपदीको पाञ्चालकी पांच जातियोंका एकीकरण अर्थात् एक हो जाना समझते हैं। मुझे भी यह विश्वास नहीं होता कि द्रुपदने यज्ञाग्निसे कन्या पायी और उसके पांच पति थे। हां, द्रुपदके औरस कन्या होना असम्भव नहीं है। उसका स्वयंवर होना और उसमें अर्ज्जुनका लक्ष्यवेध करना अविश्वास योग्य बात नहीं है और न इसका कोई कारण है। फिर द्रौपदीके पांच पति थे या एक, इसकी मीमांसा करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। (१)

(१) पहले ही कह चुका हूं कि महाभारतके पर्व्वसंग्रहा-

हम महाभारतमें कृष्णको पहले पहल द्रौपदीके स्वयंवरके समय देखते हैं। वहां उनका ईश्वरत्व कुछ भी प्रगट नहीं होता है। अन्यान्य क्षत्रियोंके साथ वह तथा यादवगण भी निमंत्रित हो पाञ्चाल पहुंचे थे। और क्षत्रियोंने तो द्रौपदीको प्राप्त करनेके लिये लक्ष्य बेधनेकी चेष्टा की थी, पर यादवोंने नहीं की।

पाण्डव भी वहां उपस्थित थे, पर निमंत्रित होकर नहीं गये थे। दुर्योधन उनके मार डालनेकी फिक्रमें था। इसलिये वह प्राणोंके भयसे वेष बदलकर वन वन फिरते थे। द्रौपदीके स्वयंवरकी खबर सुनकर वह लोग भी भेष बदले वहां आ पहुंचे।

उपस्थित ब्राह्मण क्षत्रियोंमें केवल श्रीकृष्णने ही पाण्डवोंको पहचाना था। उन्होंने दैवी शक्तिसे पहचाना था, ऐसा वहां नहीं लिखा है। श्रीकृष्णकी उक्तिसे ही यह प्रगट होता है कि उन्होंने मनुष्यबुद्धिसे पांडवोंको पहचाना था। वह बलदेवसे कहते हैं "यह जो बड़ासा धनुषबाण खेंच रहे हैं अर्ज्जुन हैं,

---

ध्यायमें लिखा है कि वेदव्यासने महाभारतका संक्षिप्त वृत्तान्त अनुक्रमणिकाध्यायके १५० श्लोकोंमें लिख दिया है। इस अनुक्रमणिकाके संक्षिप्त विवरणमें द्रौपदीके स्वयंवरकी कथा है। पर पांचों पाण्डवोंके साथ उनका ब्याह हुआ था, यह नहीं है। अर्ज्जुनने ही उसे प्राप्त किया था, बस इतना ही उसमें है-

समवाये ततो राज्ञां कन्यां भर्त्तुः स्वयंवराम्।
प्राप्तवानर्ज्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म्म सुदुष्करम्॥ १२५

इसमें कुछ सन्देह नहीं। और जो बाहुबलसे वृक्ष उखाड़कर निर्भय राजसभामें आ रहे हैं उनका नाम वृकोदर है" इत्यादि। इसके बाद भेंट होनेपर जब युधिष्ठिरने पूछा, "तुमने हमें कैसे पहचाना?" तब कृष्णने जवाब दिया था "भस्मसे ढकी हुई आग क्या छिपी रहती है?" पाण्डवोंको उस वेषमें पहचान लेना बड़ा कठिन काम था। और किसीने उन्हें नहीं पहचाना, यह कुछ आश्चर्य्यकी बात नहीं है। कृष्णने उन्हें केवल स्वाभाविक मनुष्यबुद्धिसे ही जाना था। इससे मालूम होता है कि श्रीकृष्ण और मनुष्योंकी अपेक्षा तीक्ष्णबुद्धि थे। महाभारतकारने साफ साफ ऐसा कहीं नहीं कहा है, पर श्रीकृष्णके कार्य्योंसे सब ठौर यही जाना जाता है कि वह मनुष्यबुद्धिसे ही काम लेते थे और उनकी बुद्धि सबसे तीक्ष्ण थी। इनकी बुद्धिमें कुछ कोर कसर नहीं थी। और वृत्तियोंमें वह जैसे आदर्श मनुष्य थे, वैसे ही बुद्धिमें भी थे।

पीछे अर्ज्जुनके लक्ष्य वेधनेपर उपस्थित राजाओंने झगड़ा खड़ा किया। अर्ज्जुन भिक्षुक ब्राह्मणके वेषमें था। एक भिक्षुक ब्राह्मण बड़े बड़े राजाओंके मुखका ग्रास छीन ले भला यह उन लोगोंसे कैसे सहा जाता? उन लोगोंने तुरत अर्ज्जुन पर आक्रमण किया। जितनी देर युद्ध हुआ उसमें अर्ज्जुनकी ही जीत हुई। कृष्णके बीचबचाव करनेसे लड़ाई बन्द हो गयी। कृष्णका पहला काम महाभारतमें बस यही हुआ। उन्होंने किस तरह झगड़ा मिटाया, यही मैं बताना चाहता हूं। झगड़ा

मिटानेके बहुतसे उपाय थे। वह स्वयं प्रसिद्ध वीर थे और बलदेव, सात्यकि आदि अद्वितीय वीर उनके सहाय थे। अर्ज्जुन उनके फुफेरे भाई थे। वह लड़ाईमें अर्ज्जुनकी मदद करते, तो तुरत ही झगड़ा मिट जाता। भीमने वही किया था। पर श्रीकृष्ण धार्म्मिक थे। जो काम विना युद्धके हो सकता था उसके लिये वह कभी युद्ध नहीं करते थे। महाभारतमें ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां श्रीकृष्णने धर्म्मके सिवा और किसी कारणसे युद्ध किया हो। अपनी और दूसरेकी रक्षाके हेतु युद्ध करना धर्म्म है। अपने तथा दूसरेके रक्षार्थ युद्ध न करना परम अधर्म्म है। हम भारतवासी आज सात सौ वर्षों से इसी अधर्म्मका फल भोग रहे हैं। कृष्णने कभी अन्य कारणसे युद्ध नहीं किया। और न धर्म्मस्थापनके हेतु युद्ध करनेसे वह कभी पीछे हटे। जहां युद्धके विना धर्म्मकी उन्नति नहीं होती है, वहां युद्ध न करना ही अधर्म्म है। जिनकी पहुंच काशीराम दास (१) या कथक्कड़ोंके कहे महाभारततक ही है वह तो श्रीकृष्णको ही सब लड़ाइयोंकी जड़ समझते हैं। पर जो मूल महाभारत बुद्धिसहित पढ़ते हैं वह ऐसा नहीं करते। वह समझते हैं कि श्रीकृष्णने धर्म्मार्थ युद्धके सिवा न कभी युद्ध किया और न किसीको करने दिया।

यहां भी श्रीकृष्णने लड़नेकी नहीं सोची। उन्होंने लड़ते

(१) बङ्गला महाभारतके रचयिता। हिन्दीके जैसे सबलसिंह चौहान। भाषान्तरकार

हुए राजाओंसे कहा "इन्होंने ही राजकुमारीको धर्मसे प्राप्त किया है, अब लड़ाई बन्द करो, अब ज्यादा लड़नेकी ज़रूरत नहीं।" धर्मकी बात तो अबतक किसीको याद नहीं आयी थी। उस समयके बहुतेरे राजा धर्मभीरु थे। जानबूझकर कभी अधर्म नहीं करते थे। पर उस समय क्रोधान्ध हो धर्म भूल गये थे। पर जो सच्चा धर्मात्मा है, धर्मकी वृद्धि ही जिसके जीवनका उद्देश्य है वह भला धर्मको क्यों भूलने लगा? जो अपना धर्म भूल गया है, उसे धर्मकी याद दिलाना और जो धर्म नहीं जानता है उसे धर्म सिखा देना ही सच्चे धर्मात्माका काम है।

कृष्णने राजाओंसे कहा "इन्होंने राजकुमारीको धर्मसे प्राप्त किया है, इसलिये अब लड़नेकी जरूरत नहीं।" इतना सुनते ही राजाओंने लड़ना छोड़ दिया। लड़ाई बन्द हो गयी। पाण्डव अपने आश्रम गये।

इससे यहां यह समझा जाता है कि यदि कोई अदना आदमी अभिमानी राजाओंसे धर्मकी दुहाई देता, तो वह कभी लड़ाई बन्द न करते। जिन्होंने धर्मकी बात कही, वह बड़े पराक्रमी और गौरवयुक्त थे। वह ज्ञान, धर्म, और बलमें सबके प्रधान हो गये थे। उन्होंने अपनी सब वृत्तियोंका अनुशीलन सम्पूर्ण रूपसे किया था। उसीका फल यह प्रधानता थी। अनुशीलित हुए विना एक भी वृत्ति वैसी फल देनेवाली नहीं होती है। देखिये, कृष्णचरित्रसे धर्मतत्व किस प्रकार विकसित हो रहा है।

दूसरा परिच्छेद।
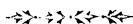
कृष्ण-युधिष्ठिर संवाद।

अर्जुन लक्ष्य वेधकर भाइयों समेत आश्रम गये। सब राजा भी अपने अपने घर गये। अब कृष्णको क्या करना उचित था? द्रौपदीका स्वयंवर समाप्त हुआ, उत्सव समाप्त हुआ, अब कृष्णको पाञ्चालमें ठहरनेकी और कुछ जरूरत न थी। जैसे और राजा घर गये, वैसे वह भी चल देते। पर कृष्णने वैसा नहीं किया। वह बलदेवको साथ ले जहां भिक्षुक वेषधारी पाण्डव वास करते थे, वहां जाकर युधिष्ठिरसे मिले।

वहां जाकर मिलनेकी कुछ जरूरत न थी। युधिष्ठिरसे उनकी पहलेकी जान पहचान भी न थी। महाभारतमें ही लिखा है—"वासुदेवने युधिष्ठिरके निकट जाकर प्रणाम किया और अपना परिचय दिया।" बलदेवने भी यही किया था। उन्होंने अपना परिचय दिया, तो समझना होगा कि पहलेकी जान पहचान, भेंट मुलाकात कुछ न थी। पाण्डवोंसे कृष्णकी यही पहली भेंट थी। कृष्ण फुफेरे भाई समझकर ही उनसे मिलने गये थे, यह सोचना साधारण लौकिक व्यवहारसे ठीक नहीं मालूम होता है। फुफेरा या मौसेरा भाई राजा या बड़ा आदमी हुआ, तो कुछ ऐंठनेके लिये लोग उससे मिल आते हैं। पर यहां वह बात नहीं है। पाण्डव उस समय मामूली भिखारी थे।

उनसे मिलकर कृष्णका कुछ काम निकलना असम्भव था। मिलकर कृष्णने कुछ अपना अभीष्ट सिद्ध किया हो, यह भी देखनेमें नहीं आता है ; श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे विनयपूर्व्वक वार्ता-लाप और मङ्गलकामना कर लौट आये। और पाण्डवोंका व्याह हो जानेतक अपने शिविरमें बने रहे। व्याह हो जानेपर उन्होंने "विवाहित पाण्डवोंको विचित्र वैदूर्य्यमणि, सोनेके गहने, अनेक देशोंके बहुमूल्य कपड़े, सुन्दर शय्याएं, बहुत तरहकी गृहस्थीकी चीजें, बहुतेरी दास दासियां, सिखाये हुए हाथी, अच्छे घोड़े, अनगिनती रथ, सोने चांदीके करोड़ों असबाब भेज दिये।" पांडवोंके पास यह सब कुछ न था, क्योंकि उस समय उनकी अवस्था बड़ी खराब थी और वह भिखारी थे। इन वस्तुओंकी उन्हें उस समय बड़ी जरूरत हुई, क्योंकि वह राजाकी कन्यासे विवाह कर गृहस्थ हुए थे। इसलिये युधिष्ठिरने "कृष्णके भेजे हुए पदार्थ सानन्द ग्रहण किये।" पर कृष्ण उनसे और न मिल-कर अपने घर चले गये। इसके बाद श्रीकृष्णने पाण्डवोंको फिर नहीं ढूंढ़ा। पाण्डव आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगर बनाकर रहने लगे। कृष्ण पाण्डवोंसे फिर कैसे मिले, यह पीछे कहूंगा।

आश्चर्य्यका विषय यही है कि जो कृष्ण इस प्रकार निःस्वार्थ काम करते थे और दुःखी मात्रकी भलाई करना जिनके जीवनका व्रत था उन्हींको विलायतके मूर्ख तथा उनके शिष्य कुकर्म्मानुरक्त, दुष्टबुद्धि, क्रूर और पापाचारी कहते हैं। ऐतिहासिक तत्वकी

विश्लेषणशक्ति न होनेसे या उसमें श्रद्धा न रहनेसे ऐसा होना ही सम्भव है। मोटी बात यह है कि जो आदर्श मनुष्य हैं उनकी और और सद्वृत्तियोंकी तरह प्रीति वृत्तिका भी पूर्ण विकास होना ही सम्भव है। श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके साथ जैसा वर्त्ताव किया था वैसा पहलेकी पुरानी वन्धुतामें करना सम्भव है। युधिष्ठिर कृष्णके बन्धु थे, कृष्णके साथ अगर उनका पहलेसे हेलमेल और जानपहचान होती, तो कृष्णका व्यवहार केवल शिष्टाचार और भलमनसी समझकर मैं चुप हो जाता। अधिक बोलनेकी जगह फिर न रहती। पर जो खोजकर अपने अपरिचित, दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त भाईबन्दोंकी सहायता करते और अपना काम हर्ज करते हैं उनकी ही प्रीति आदर्श प्रीति है। कृष्णका यह काम छोटासा है सही, पर छोटे मोटे कामोंसे ही मनुष्यके चरित्रका पता लगता है। दुष्ट बदमाश भी कोशिश करके एकाध अच्छा काम कर सकते हैं और करते भी हैं। पर जिनके छोटे छोटे कामोंमें धर्मात्मताका परिचय मिलता है वही यथार्थ धर्मात्मा हैं। इसीसे मैं महाभारतकी आलोचनामें (१) कृष्णके छोटे बड़े सब कामोंकी समालोचना करूंगा। हमारा यह दुर्भाग्य है कि हमने इस ढंगसे कृष्णको समझनेकी कोशिश न की। कृष्णचरित्रमेंसे "अश्वत्थामा हत इति गजः" केवल सीख लिया है। अर्थात् जो सत्य और ऐतिहासिक है उसकी कुछ

(१) हरिवंश तथा पुराणोंमें विश्वास योग्य बातें नहीं मिलती हैं, इससे पहले ऐसा नहीं किया।

खोज न कर जो मिथ्या और मनगढन्त है उसीको वेद-वाक्य मान बैठे हैं। "अश्वत्थामा हत इति गजः" की (१) कथा मिथ्या है। यह द्रोणवध-पर्व्वाध्यायकी आलोचनामें सिद्ध करूंगा।

इसी पर्व्वमें श्रीकृष्णके बारेमें एक बड़ी मजेदार बात लिखी है। और लोग समझते हैं कि वह व्यासजीकी कही हुई है। वह मेरे आलोच्य विषयके अन्तर्गत न होनेपर भी उसकी थोड़ी सी चर्चा कर देना आवश्यक है। द्रुपदके राजाने, कन्याके पांच पति होंगे, सुनकर आपत्ति की। इसपर वेदव्यासजी राजाको समझाने लगे। समझानेके समय व्यासजीने एक उपाख्यान सुनाया है। वह बड़ा अद्भुत है। उसका सारांश यह है कि इन्द्रने एक बार गङ्गाजलमें रोती हुई एक स्त्री देखी। इन्द्रने उससे पूछा "तू क्यों रोती है?" इसपर उसने कहा "चलो दिखाती हूं।" इतना कह उसने इन्द्रको दिखला दिया कि एक युवा एक युवतीके साथ चौपड़ खेल रहा है। उन दोनोंने इन्द्रका यथोचित सम्मान नहीं किया, इससे इन्द्रजी बिगड़ खड़े हुए। वह युवा स्वयं महादेव था। इन्द्रको विगड़ते देख वह भी बिगड़ उठा। उसने इन्द्रसे एक गड्ढेमें जानेके लिये कहा। इन्द्रने गड्ढेमें जाकर देखा कि वहां उसके जैसे चार इन्द्र हैं! अन्तमें महादेवने पांचों इन्द्रोंको बुलाकर कहा

(१) यह पीछे दिखाऊंगा कि यह वाक्य महाभारतमें नहीं है। यह कथकड़ोंकी संस्कृत है।

"तुम पृथ्वीपर जाकर मनुष्य होओ।" इसपर उन इन्द्रोंने ही महादेवसे प्रार्थना की "इन्द्रादि पञ्चदेवता हमें किसी मानवीके गर्भसे उत्पन्न कर दें।" !!! वही पांचों इन्द्र इन्द्रादिके औरससे पञ्च पाण्डव हुए। महादेवने विना अपराध उस स्त्रीसे कहा "तू जाकर इनकी स्त्री हो जा।" बस, वही आकर द्रौपदी हुई। वह क्यों रोयी थी, इसकी कुछ बात ही नहीं है। सबसे बढ़कर दिल्लगी तो यह हुई कि नारायणने यह बात सुनकर अपने सिरके दो बाल उखाड़कर फेंक दिये। एक कच्चा और एक पक्का। पक्केसे बलराम और कच्चेसे कृष्ण हुए!!!

बुद्धिमान् पाठकोंसे कहना नहीं होगा कि यह उपाख्यान महाभारतकी तीसरी तहके अन्तर्गत है। अर्थात् मूल महाभारतसे इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पहले तो इस उपाख्यानका ढंग आजकलके निम्न श्रेणीके उपन्यास-लेखकोंके उपन्यासोंसे भी गयाबीता है। महाभारतकी पहली और दूसरी तहोंके प्रतिभाशाली कवि ऐसे उपाख्यान लिखकर महापापके भागी नहीं हो सकते हैं। दूसरे, महाभारतके और और अशोंके साथ इसका कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। यह सारा उपाख्यान निकाल देनेसे महाभारतकी कोई कथा गड़बड़ नहीं होती और न उनका कुछ हर्ज ही होता है। द्रुपद राजाकी आपत्तिके खण्डनके लिये भी इसकी कुछ जरूरत नहीं, क्योंकि वह आपत्ति व्यासजीके कहे हुए एक दूसरे उपाख्यानसे आप ही खण्डित हो जाती है। दूसरा उपाख्यान इसी अध्यायमें है। वह संक्षिप्त

और सरल है। वह शायद असली महाभारतका हिस्सा हो भी सकता है। पहला उपाख्यान इसका विरोधी है। दोनोंमें द्रोपदीके पूर्व जन्मकी कथा दो प्रकारसे है। इससे एक निस्सन्देह क्षेपक है। ऊपर जो कह आया हूं उससे पहला उपाख्यान ही क्षेपक मालूम होता है। तीसरे, यह पहला उपाख्यान महाभारतके और अंशोंका विरोधी है। महाभारतमें सब जगह लिखा है कि इन्द्र एक ही है। यहां इन्द्र पांच हो जाते हैं। महाभारतमें सर्वत्र लिखा है कि पाण्डव धर्म, वायु, इन्द्र, अश्विनीकुमारोंके औरस पुत्र हैं। पर यहां सब एक एक इन्द्र हैं, इसी विरोधको मिटानेके लिये लाल बुझक्कड़जीने फरमाया है कि इन्द्रोंने महादेवसे प्रार्थना की कि इन्द्रादि ही हमें मानवीके गर्भसे उत्पन्न कर दे। यह निश्चित है कि जगत्प्रसिद्ध महाभारत ऐसे गदहोंकी लेखनीसे नहीं निकला है।

इस अश्रद्धेय उपाख्यानको यहां देकर मुझे यही दिखलाना था कि मैं किस रीतिसे महाभारतकी तीनों तहोंका विभाग करता हूं और करूंगा, यह उदाहरण देकर समझा दूं। इसके सिवा एक ऐतिहासिक तत्व भी इससे स्पष्ट हो जाता है। वेदोंमें जो विष्णु सूर्य्यकी केवल मूर्ति विशेष है और जो पुराण इतिहासोंमें सर्वव्यापक ईश्वर है, वह पीछेके अभागे लेखकोंके हाथमें पड़कर किस तरह दाढ़ी मूछों और कच्चे पक्के बालोंवाला हो गया, यह इन प्रक्षिप्त उपाख्यानोंसे प्रगट हो जाता है। इन्हीं प्रक्षिप्त उपाख्यानोंमें हिन्दूधर्मकी अवनतिका इतिहास मिलता है।

इससे यहां उसका उल्लेख किया है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी कृष्णद्वेषी शैवने यह उपाख्यान रचकर महाभारतमें मिला दिया हो। क्योंकि यहां महादेव ही सर्व्वनियन्ता हैं और कृष्ण नारायणके एक बाल भर हैं। महाभारतकी आलोचनामें कृष्णभक्त और शैवोंके ऐसे बहुतेरे झगड़े मिलते हैं। पर उसमें अधिक प्रक्षिप्त हैं। प्रक्षिप्त होनेके कारण भी मिल जाते हैं। यदि यह बात ठीक हो, तो मानना होगा कि असली महाभारत बननेके बहुत दिनों बाद यह झगड़ा खड़ा हुआ। अर्थात् जब शिवोपासना और कृष्णोपासनाकी प्रबलता हुई तब झगड़े भी बहुत हुए। महाभारत बननेके समय या उसके बाद इन दोनोंकी उपासनाओंका जोर नहीं था। उस समय वैदिक देवताओंकी प्रबलता थी। दोनों जितने प्रबल होते गये, उतना ही महाभारतका कलेवर भी बढ़ता गया। दोनों पक्षवाले महाभारतकी दुहाई दे देकर अपने अपने देवताको बड़ा बनाने लगे। शैवगण शिवमाहात्म्य महाभारतमें मिलाने लगे, (१) तो वैष्णव भी विष्णु या कृष्ण-माहात्म्य उसमें घुसेड़ने लगे। अनुशासनपर्व्वमें इसके कई अच्छे उदाहरण मिलते हैं। इच्छा हो तो पाठक पढ़कर देख लें। प्रायः सबमें गदहेपनकी जरा जरासी बू है।

---

(१) इसी कारण मूर आदि विलायती विद्वानोंने कृष्णको शैव ठहराया है।

तीसरा परिच्छेद।

सुभद्राहरण।

द्रौपदीके स्वयंवरके अनन्तर कृष्णके दर्शन सुभद्राहरणके समय मिलते हैं। श्रीकृष्णने सुभद्राके व्याहमें जो किया था वह उन्नीसवीं शताब्दीके नीतिज्ञ उतना पसन्द नहीं करेंगे। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दीके नीतिशास्त्रके ऊपर परमात्माका नीतिशास्त्र है। वह सब शताब्दियोंमें और सब देशोंमें चलता है। कृष्णने जो किया उसकी जांच उसी चिरस्थायी, अभ्रान्त, जगत्‌की नीतिसे करनी चाहिये और मैं उसीसे करूंगा। यहांके बहुतसे लोगोंने "अकबरी गज"से (१) लाखिराज जमीन पायी थी। जमीन्दारोंने आजकलके छोटे सरकारी गजसे नापकर उनकी बहुतसी जमीन छीन ली है। उसी तरह उन्नसवीं सदीका गज भी छोटा हो गया है। मैं यह कई वार कह चुका हूं कि इस छोटे गजके मारे हम अपनी ऐतिहासिक और पैतृक सम्पत्तियां खो रहे हैं। मैं फिर वही अकबरी गज चलाऊंगा।

कृष्णके भक्त कह सकते हैं कि पहले यह स्थिर हो जाना चाहिये कि यह सुभद्राहरण मूल महाभारतमें है या क्षेपक है। यदि क्षेपक हो तो फिर वागाडम्बरकी आवश्यकता नहीं। इसलिये मुझे कहना पड़ता है कि सुभद्रा-हरण मूल महाभारतमें है

(१) यह गज नवाबोंके जमानेमें बङ्गालमें जारी था। यह अङ्गरेजी गजसे बड़ा है। भा० का०

और पहली तहके अन्तर्गत है, इसमें कुछ भी संशय नहीं। इसकी चर्चा अनुक्रमणिकाध्याय और पर्व्वसंग्रहाध्यायमें है। इसकी रचना उच्चश्रेणीके कवियोंकीसी है। दूसरी तहकी रचना भी साधारणतः बड़ी सुन्दर है। पर पहली और दूसरी तहोंकी रचनामें बस यही भेद है कि पहलीकी रचना सरल और स्वाभाविक और दूसरीकी आलङ्कारिक और अत्युक्तिसे परिपूर्ण है। सुभद्राहरणकी रचना भी सरल और स्वाभाविक है, उसमें अलङ्कार और अत्युक्तिकी उतनी भरमार नहीं है। इसलिये यह पहली तहकी रचना है, दूसरीकी नहीं। और असल बात तो यह है कि सुभद्राहरण महाभारतसे निकाल देनेपर महाभारत अधूरा हो जाता है। सुभद्राका अभिमन्यु, अभिमन्युका परीक्षित, और परीक्षितका जनमेजय हुआ। सुभद्रा और अर्ज्जुनके वंशधर ही अनेक दिनोंतक भारतके सम्राट् हुए—द्रौपदीके नहीं। द्रौपदीका स्वयंवर छोड़ा जा सकता है, पर सुभद्रा नहीं छोड़ी जा सकती।

साहबोंने द्रौपदीकी तरह सुभद्राको भी उड़ा दिया है। लासेन साहब फरमाते हैं, यादवोंका सम्प्रीति रूप जो मङ्गल है, वही सुभद्रा है। वेबर साहबकी आपत्ति इससे बढ़ी चढ़ी है। वह कृष्णकी बहन सुभद्राका अस्तित्व क्यों स्वीकार नहीं करते हैं, यह बतानेके लिये यजुर्व्वेदकी माध्यन्दिनी शाखाके २३ वें अध्यायकी १८ वीं कण्डिकाका चौथा मंत्र यहां देता हूं

"हे अम्बे ! हे अम्बिके ! हे अम्बालिके ! देखो, यह अश्व अभी सदैवके लिये सो गया, मैं काम्पिलवासिनी सुभद्रा होकर भी

स्वयं इसके समीप (पति बनानेके हेतु) आयी हूं, इस विषयमें किसीने मुझे नियोग नहीं किया है (१) ।

इससे वेबर साहब सिद्धान्त निकालते हैं कि "Kampila is a town in the Country of the Panchalas. Subhadra, therefore, would seem to be the wife of the King of that district" & (२)

सायणाचार्य्य काम्पिलवासिनीका अर्थ करते हैं "काम्पिल-शब्देन श्लाघ्यो वस्त्रविशेष उच्यते ।" पर वेबर साहब सायणा-चार्य्यसे अधिक संस्कृत जाननेका दावा करते हैं, इसलिये वह उनकी टीका नहीं मानते। नहीं मानते हैं, तो न मानें, पर यह समझमें नहीं आया कि काम्पिलवासिनी किसी स्त्रीका नाम सुभद्रा था, इसलिये कृष्णकी बहिनका नाम सुभद्रा क्यों नहीं हो सकेगा। चाहे जो राजा अश्वमेध यज्ञ करे, यह मंत्र उसकी रानीको दुहराना ही पड़ेगा, उसे कहना ही होगा कि "मैं काम्पिलवासिनी सुभद्रा हूं।" सामाश्रमी महाशयने सुभद्रा शब्द का अर्थ कल्याणी अर्थात् सौभाग्यवती किया है। महीधर कहते हैं, काम्पिल नगरकी स्त्रियां बड़ी सुन्दर और रूपवती होती हैं। इससे इस मन्त्रका अर्थ यह है कि "मैं सौभाग्यवती और सुन्दर

(१) श्रीयुक्त सत्यव्रत सामाश्रमीकृत भाषान्तरसे ।

(२) अर्थात् "काम्पिला, पांचाल देशका एक शहर है। इसलिये सुभद्रा उस जिलेके राजाकी रानी मालूम होती है।" आजकल भी कम्पिल नामका स्थान फर्रुखाबाद जिलेमें है। भा०का०

रूपवती होकर भी इस घोड़के निकट आयी हूं।" इसलिये यह समझमें नहीं आता है कि इस मन्त्रके सहारे कृष्णकी बहन और अर्ज्जुनकी पत्नी सुभद्राके बदले क्यों पाञ्चालकी एक सुभद्राकी कल्पना करनी पड़गी। युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया था और उसके बहुत पहलेके राजाओंने भो किया था। महाभारत आदि ग्रन्थोंमें यह बात मिलती है। इससे अश्वमेध यज्ञके इस मन्त्रका कृष्ण और पाण्डवोंसे पुराना होना ही सम्भव है। आधुनिक लेखकोंके काव्य ग्रन्थोंसे लेकर लोग अपने अपने पुत्र और कन्याओं-के नाम जैसे प्रमिला, मृणालिनी आदि (१) आजकल रखते हैं, वैसे ही उस समयके लोगोंका भी वेदोंसे अपनी सन्तानोंका नाम-करण करना असम्भव नहीं है।

इसी मन्त्रसे लेकर काशीराजने अपनी तीनों कन्याओंके नाम अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका रखे थे। इसी तरह कृष्णकी बहनका भी नाम सुभद्रा रखा गया होगा। इस मन्त्रसे कृष्णकी बहन सुभद्राके न होनेका अनुमान नहीं होता है। इसलिये अब सुभद्रा-हरणके बारेमें लिखता हूं।

सुभद्रा-हरणके नैतिक विचारमें प्रवृत्त होनेके पहले पाठकोंसे विनय है कि उन्होंने काशीरामदासकी पोथीमे इस बारेमें जो कुछ पढ़ा है या कथकड़ोंसे या दादी नानीसे जो कुछ सुना है, उसे वह कृपाकर भूल जायं। अर्ज्जुनको देखकर सुभद्राका कामवश हो उन्मत्त हो जाना, सत्यभामाका दूती बनना, अर्ज्जुनका सुभद्राको

(१) हिन्दीभाषाभाषियोंमें चन्द्रकान्ता आदि। भाषान्तरकार।

ले भागना और यादवोंसे घोर संग्राम करना, सुभद्राका सारथी हो गगनपथसे रथ चलाना आदि आप भूल जाइये । यह सब बातें मनको मोहनेवाली जरूर हैं, पर मूल महाभारतमें नहीं हैं। यह काशीराम दासके दिमागसे निकली हैं या उनके पहलेके कथक्कड़ोंने निकाली हैं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। संस्कृत महाभारतमें जो लिखा है उसका सारांश यों है।

द्रौपदीके व्याहके बाद पाण्डव सुखसे इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे। किसी कारणसे अर्ज्जुनने बारह वर्षके लिये इन्द्रप्रस्थ परित्यागकर देश विदेशमें भ्रमण किया। तमाम घूमकर वह द्वारका पहुंचा। यादवोंने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। वह कुछ दिन वहीं रह गया। यादवोंने रैवतक पर्व्वतपर एक बार बड़ा भारी मेला लगाया। उसमें यदुकुलके पुरुष और स्त्रियां सब ही इकट्ठी हो आनन्द करती थीं। और स्त्रियोंके साथ सुभद्रा भी वहां गयी थी। वह क्वांरी और बालिका थी। अर्ज्जुन उसे देखते ही मुग्ध होगया। कृष्णने यह भेद जानकर अर्ज्जुनसे कहा "मित्र, वनचर होकर भी कामशरसे चञ्चल हो गये?" अर्ज्जुनने अपराध स्वीकार कर सुभद्राके पानेका परामर्श कृष्णसे पूछा। कृष्णने यह परामर्श दिया—

"हे अर्ज्जुन! क्षत्रियोंके लिये स्वयंवर ही उचित है, पर स्त्रियोंकी प्रवृत्तिके बारेमें कुछ नहीं कहा जाता, इसलिये इसमें मुझे सन्देह है। और धर्म्मशास्त्रकार भी कहते हैं कि महावीर क्षत्रियोंके लिये विवाहार्थ बलपूर्वक कन्याहरण करना भी

प्रशंसनीय कार्य्य है। इसलिये स्वयंवरका समय आनेपर तुम मेरी बहनको बलपूर्व्वक हरण कर ले जाना। क्योंकि स्वयंवरके समय वह किसके ऊपर अनुरक्त होगी, यह कौन कह सकता है ?"

इस परामर्शके अनुसार अर्ज्जुनने पहले तो युधिष्ठिर और कुन्तीसे दूत भेजकर अनुमति मांगी। उन्होंने अनुमति दे दी। एक रोज सुभद्रा रैवतक पर्व्वतकी प्रदक्षिणा करके जब द्वारका लौट रही थीं, तब अर्ज्जुन उसे जबरदस्ती रथपर बिठा चल दिया।

आजकल अगर कोई किसीकी बेटीको विवाह करनेके वास्ते जबरदस्ती उठा ले जाय तो समाजमें उसकी निन्दा हो और वह राजदण्डके योग्य हो जाय, इसमें सन्देह नहीं। और आजकल कोई किसीसे कहे "महाशय! आपकी इच्छा जब मेरी बहनसे ब्याह करनेकी हुई है, तो मेरी राय है कि आप उसे जबरदस्ती उठा ले जाइये," तो वह भी निस्सन्देह समाजसे निन्दित समझा जायगा। इसलिये प्रचलित नीतिशास्त्रके अनुसार (इस नीतिशास्त्रको मैं कुछ दोष नहीं देता) कृष्ण और अर्ज्जुन दोनोंने बड़ी निन्दाका काम किया था। लोगोंकी आंखोंमें धूल डालकर कृष्णको बढ़ाना मेरा उद्देश्य होता, तो मैं सुभद्रा-हरण-पर्व्वाध्यायको क्षेपक कहकर या बातें बनाकर छोड़ देता। पर वह सब करना मैं नहीं चाहता। सत्यके सिवा मिथ्या प्रशंसासे किसीकी महिमा नहीं बढ़ सकती है और इससे धर्म्मकी अवनतिके अतिरिक्त उन्नति नहीं होती है।

यह बात जरा अच्छी तरह समझ लेनी होगी। कोई किसीकी लड़की छीनकर व्याह कर ले तो दोष क्यों होता है ? इसके तीन कारण हैं। पहले तो, छीनी हुई लड़कीपर अत्याचार होता है। दूसरे, लड़कीके माबाप और भाईबन्दोंपर अत्याचार होता है। तीसरे, समाजपर अत्याचार होता है। समाजरक्षाका मूलमन्त्र यही है कि कोई किसीपर बेकानून जुलम जबरदस्ती न कर सके। जुलम जबरदस्ती करनेसे समाजकी स्थितिपर धक्का लगता है। विवाहार्थ कन्याहरणको निन्दनीय कार्य्य समझनेके यही तीन बड़े कारण हैं। इनके सिवा और कोई चौथा कारण नहीं है।

अब यह देखना है कि कृष्णके इस कार्य्यसे इन तीनोंमें किसे कितना अत्याचार सहना पड़ा। पहले, हरण की हुई कन्याको ही लीजिये। कृष्ण उसके बड़े भाई और कुलमें श्रेष्ठ थे।

सुभद्राका जिसमें सब तरह भला हो, यही सोचना उनका कर्त्तव्य था, यही उनका धर्म्म था और उन्नीसवीं शताब्दीकी भाषामें यही उनकी ड्यूटी (Duty) थी। स्त्रियोंका भला अच्छा वर पानेमें ही है। इसलिये कृष्णकी बड़ी ड्यूटी सुभद्राको सत्पात्रके हाथ सौंपना है। महाभारत पढ़नेवालोंको यह नहीं बताना होगा कि कृष्णके परिचितोंमें अर्ज्जुनसा सत्पात्र और कोई नहीं था। इसलिये अर्ज्जुनके साथ सुभद्राका व्याह कर देना ही कृष्णका कर्त्तव्य था। कृष्णकी जो उक्ति ऊपर दी गयी

है उसमें उन्होंने दिखाया है कि बलपूर्वक हरणके सिवा और ढङ्गसे यह काम हो सकता या नहीं, इसमें सन्देह है। जिस कामका फल चिरजीवनके लिये मङ्गल है उसमें सन्देह हो तो उसे न करना चाहिये। जिससे शुभ फलकी सिद्धि निश्चित हो, वही करना चाहिये। इसलिये कृष्णने सुभद्राके चिरजीवनके लिये परम मङ्गल कार्य्य स्थिर कर परम धर्म्मका ही काम किया था। उसपर कुछ अत्याचार नहीं किया।

इस बातपर दो आपत्तियां हो सकती हैं। पहली तो यह कि जो काम मुझे पसन्द नहीं है वह मेरे हितका होनेपर भी, मुझसे जबरदस्ती करानेका अधिकार किसीको नहीं है। यजमान अपना सर्वस्व ब्राह्मणको दान कर दे, तो उसका बड़ा कल्याण होगा, यह सोचकर पुरोहितजी यजमानसे जबरदस्ती मारपीटकर दान नहीं करा सकते और न ऐसा करानेका उन्हें अधिकार ही है। शुभ उद्देश्य साधनके लिये निन्दनीय उपायका सहारा लेना भी निन्दनीय है। उन्नीसवीं सदीकी भाषामें इसका उल्था है—

"The end does not sanctify the means."

इसके दो जवाब हैं। पहला तो यह है। इस बातका पता नहीं है कि सुभद्रा अर्ज्जुनसे व्याह करना नहीं चाहती थी या उससे अप्रसन्न थी। इच्छा, अनिच्छा किसीका भी पता नहीं लगता है। पता लगनेकी सम्भावना भी बहुत थोड़ी है। हिन्दुओंकी कन्याएं अपनी इच्छा या अनिच्छा जल्दी प्रगट नहीं

करता हैं। सच तो यों है कि पुरुषविशेषपर उनकी इच्छा, अनिच्छा होती ही नहीं है। हां, स्यानी लड़की घरमें क्वांरी रखी जाय तो हो भी सकती है। अच्छा, किसी कामपर मेरी इच्छा, अनिच्छा कुछ भी नहीं है। पर उससे बड़े लाभकी सम्भावना है और विशेष रुचि न होनेके कारण या लज्जाके वश या दोनों कारणोंसे वह काम मैं न करता होऊं और कोई जबरदस्ती वह काम मुझसे करा दे, तो क्या उसका जबरदस्ती करना अधर्म्म समझा जायगा? मान लो, किसी बड़े आदमीके लड़केपर विपत्ति आयी है। वह दाने दानेको मुहताज हो रहा है। नौकरी करनेसे उसकी रोटीका ठिकाना हो सकता है, पर वह शर्मके मारे नौकरी करना नहीं चाहता है। कोई उसे दबाकर नौकर रखा दे तो वह उज्र भी नहीं करता है, वरञ्च उसके परिवारका पालन होता है। ऐसी हालतमें कोई डरा धमका और जुल्म जबरदस्ती कर उसे नौकर रखवा दे तो क्या यह अत्याचार या अधर्म्म होगा? कदापि नहीं। सुभद्राकी भी अवस्था ठीक ऐसी है। हिन्दुओंकी कुमारी कन्याएं समझाने बुझानेसे कभी पतिके साथ सुसराल जानेको तैयार नहीं होंगी। लाचार उन्हें पकड़कर ले चलनेके सिवा उनके मंगलसाधनका और उपाय नहीं है।

"जो काम मुझे पसन्द नहीं है वह मेरे हितका होनेपर भी, मुझसे जबरदस्ती करानेका अधिकार किसीको नहीं है।" मैं कह चुका हूं कि इस आपत्तिके दो जवाब हैं। पहला जवाब

तो हो चुका। इसमें मैंने आपत्ति स्वीकार कर उत्तर दिया है। अब दूसरा जवाब सुनिये। वह यह है कि यह बात सब समय ठीक नहीं है। जिस कामसे मेरा परम हित है उसके करनेकी मेरी इच्छा बिलकुल नहीं है। तो क्या मुझसे उसके जबरदस्ती करा लेनेका अधिकार किसीको नहीं है? है, पर सब जगह नहीं। रोगीके प्राण जाते हैं और वह दवा नहीं खाता है, क्योंकि रोगियोंका ऐसा करना स्वाभाविक है। तो क्या उसे बलपूर्वक औषधि खिलानेका अधिकार वैद्य या उसके घरवालोंको नहीं है? अवश्य है। रोगी अपने जहरीले फोड़ेमें चीरा लगाना नहीं चाहता है, पर डाक्टरको जोर कर उसके चीरनेका पूरा अधिकार है। लड़के पढ़ना नहीं चाहते हैं पर उनके माबाप तथा शिक्षकादिको बलपूर्व्वक उन्हें पढ़ानेका अधिकार है। इस ब्याहमें ही लीजिये। नाबालिक लड़के या लड़कियां यदि अनुचित ब्याह करनेको तैयार हो जायं, तो क्या उनके माता पिताको उन्हें रोकनेका अधिकार नहीं है? आज भी यूरोपकी सभ्य जातियोंमें कन्याको जबरदस्ती सत्पात्रके हाथमें देनेकी चाल है। यदि किसी हिन्दूकी पन्द्रह वर्षकी कन्या किसी अच्छे वरसे ब्याह करनेमें उज्र करे, तो क्या उसके माबाप उस समय जबरदस्ती करनेमें आगापीछा करेंगे? कभी नहीं। जबरदस्ती अपनी कन्या सत्पात्रको देनेमें क्या उनकी निन्दा होगी? यदि नहीं, तो सुभद्राहरणमें कृष्णकी अनुमति निन्दनीय क्यों है?

पहली आपत्तिके दोनों उत्तर हो चुके। अब दूसरी आपत्तिकी ओर झुकता हूं।

दूसरी आपत्ति यह हो सकती है। अच्छा, मान लिया जाय कि कृष्णने सुभद्राकी भलाई समझकर ही हरण करनेका परामर्श दिया था, पर क्या बलपूर्व्वक हरणके सिवा और किसी तरह उसका ब्याह अर्ज्जुनसे नहीं हो सकता था? स्वयंवरमें शायद यह डर था कि वह नादान लड़की सुन्दर मुख देखकर भूल जाती और किसी कुपात्रको वरमाल पहना देती। पर क्या कोई दूसरा उपाय नहीं था? कृष्ण या अर्ज्जुन वसुदेव आदिके निकट बात चलाकर सम्बन्ध पक्का करा लेते और फिर सारा काम मजेमें हो जाता। सब यादव कृष्णके वशमें थे। कोई उनकी बात न उठाता। और अर्ज्जुन भी सुपात्र था। कोई चूं तक न करता। फिर ऐसा क्यों नहीं हुआ?

आजकलका समय होता तो यह काम सहजमें हो जाता। पर सुभद्रा अर्ज्जुनका ब्याह चार हजार वर्ष पहले हुआ था। उस समयकी विवाहप्रणाली आजकलकीसी नहीं थी। वह प्रणाली समझे बिना हम कृष्णकी आदर्श बुद्धि और आदर्श प्रीति भलीभांति नहीं समझ सकेंगे।

मनुने ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व्व, राक्षस, और पैशाच यह आठ प्रकारके विवाह लिखे हैं। पाठक, विवाहोंका यह क्रम स्मरण रखियेगा।

इन आठ प्रकारके विवाहोंका अधिकार सब वर्णोंको नहीं

है। अब देखना चाहिये कि क्षत्रियोंको किन किन विवाहोंका अधिकार है। मनुके तीसरे अध्यायके २३ वें श्लोकमें लिखा है—

"षड़ानुपूर्व्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान्।"

कुल्लूकभट्टने इसकी टीकामें लिखा है,

"क्षत्रियस्य अवरानुपरितनानासुरादींश्चतुरः।"

बस, इससे क्षत्रियोंके लिये केवल आसुर, गान्धर्व्व, राक्षस और पैशाच यही चार प्रकारके विवाह वैध और शेष अवैध सिद्ध हुए। परन्तु २५ वां श्लोक है—

"पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कदाचन।"

पैशाच और आसुर विवाह सबके लिये निषिद्ध है। इसलिये क्षत्रियोंके लिये केवल गान्धर्व्व और राक्षस विवाह ही विहित हैं।

वरकन्याके परस्पर अनुरागसे जो विवाह होता है उसका नाम गान्धर्व्व विवाह है। यहां सुभद्राके अनुरागका अभाव था, इस कारण गान्धर्व्व विवाह असम्भव था और फिर यह विवाह "काम-सम्भव" है, इससे परम नीतिज्ञ कृष्णार्ज्जुन इसे कभी पसन्द नहीं कर सकते थे। अतएव राक्षस विवाहके अतिरिक्त और कोई विवाह शास्त्रविहित नहीं है और न क्षत्रियोंके लिये प्रशस्त ही है। बलपूर्व्वक कन्याको हरण कर विवाह करनेका नाम राक्षस विवाह है। वास्तवमें क्षत्रियोंके लिये यह राक्षस विवाह ही शास्त्रानुसार प्रशस्त है। मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायका २४ वां श्लोक है—

चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान् प्रशस्तान् कवयो विदुः।

राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरा वैश्यशूद्रयोः॥

श्रीकृष्णको उसी विवाहके लिये परामर्श देना पड़ा जो धर्म्म-विहित तथा प्रशस्त था और जिससे बहन, बहनोई और कुलका गौरव बढ़ता था। इसलिये कृष्णने अर्ज्जुनको जो परामर्श दिया उससे उनकी शास्त्रज्ञता, नीतिज्ञता, अभ्रान्त बुद्धि झलकती है। और साथ ही यह भी प्रगट होता है कि उन्हें दोनों ओरकी मानरक्षा तथा भलाईका खयाल था।

कुछ लोग कहते हैं कि यहां मनुकी दुहाई देनेसे काम नहीं चलेगा। क्योंकि महाभारत युद्धके समय मनुसंहिता थी, इसका क्या प्रमाण है? कहना ठीक ही है। उस समय मनुसंहिता संगृहीत हुई थी या नहीं, इसपर वाद विवाद हो सकता है। पण्डितोंका मत है कि पहलेकी रीतिनीतिका संग्रह ही मनुसंहिता है। यदि ऐसा हो, तो यही सोचा जा सकता है कि युधिष्ठिरके राज्यके समयमें ऐसे ही ब्याहकी चाल थी। यदि न हो, तो महाभारत इस बारेमें क्या कहता है, वह देखना चाहिये। बहुत ढूंढ़ना नहीं पड़ेगा। पाठकोंके आगे जो उत्तर मैं देता हूं वह स्वयं कृष्णने बलदेवको दिया था। अर्ज्जुन सुभद्राको ले गया, यह सुनकर यादव सब क्रुद्ध हो युद्धकी तैयारी करने लगे। बलदेव बोले, तैयारी पीछे करना पहले कृष्णसे तो पूछो, उसकी क्या राय है। वह चुपचाप है, कुछ बोलता नहीं। फिर कृष्णसे कहा कि तेरे अर्ज्जुनने तो आज हमारी नाक काट ली। अब

क्या करना चाहिये यह तो कह। इसपर श्रीकृष्णने उत्तर दिया

"अर्ज्जुनने हमारी नाक नहीं काटी, बल्कि हमारे गौरवकी रक्षा की है। वह तुम सबको धनका लोभी नहीं समझता है। इससे उसने धन देकर सुभद्राको लेनेका प्रयत्न नहीं किया। स्वयंवरमें कन्याका पाना बड़ा ही कठिन है। इससे स्वयंवरके लिये सम्मत नहीं हुआ। तेजस्वी क्षत्रियोंके लिये कन्या मांग-कर व्याह करना प्रशंसाका काम नहीं है। इसलिये मैं समझता हूं कि कुन्तीपुत्र धनञ्जयने सब बातें भलीभांति सोचकर सुभ-द्राका हरण किया है। यह सम्बन्ध हमारे कुलके उपयुक्त ही है, कुल, शील, विद्या और बुद्धिसे सम्पन्न पार्थने सुभद्राको बलपूर्व्वक हरण किया है। इससे वह भी निस्सन्देह यशका भाजन होगी।"

यहां श्रीकृष्णने क्षत्रियोंके चार प्रकारके विवाहकी बात कही है--

१ अर्थ (धन) देकर जो व्याह होता है (आसुर)।

२ स्वयंवर।

३ पिता माताको दी हुई कन्यासे व्याह (प्राजापत्य)

४ बलपूर्व्वक हरण (राक्षस)

इनमें पहलेसे कन्याके मातापिताकी बदनामी होती है। दूसरेका फल निश्चित नहीं। तीसरेसे वरकी बदनामी है। इस-लिये चौथा ही विहित विवाह है। यह कृष्णके कथनसे ही सिद्ध होता है।

मैं समझता हूं, ऐसा मूर्ख कोई नहीं होगा जो मुझे राक्षस विवाहका पक्षपाती समझ लेगा। राक्षस विवाह बड़ा निन्दनीय है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। उस समयके क्षत्रिय इसे अच्छा समझते थे, इसके उत्तरदाता श्रीकृष्ण नहीं हैं। हममेंसे कितनोंका ही कहना है कि "रिफार्मर" (सुधारक) ही आदर्श मनुष्य हैं। और यदि कृष्ण आदर्श मनुष्य थे तो उन्हें मालाबारीकी (१) तरह ही रिफार्मर होना उचित था, उन्हें यह कुरीति बढ़ानेके बदले रोकना उचित था। पर मैं मालाबारीका ढंग आदर्श मनुष्यके योग्य नहीं मानता हूं, इसलिये इसका उत्तर देना अनावश्यक है। (२)

(१) "इण्डियन स्पेकटेटर"के सम्पादक मिस्टर बहरामजी मालाबारी बड़े कट्टर सुधारक थे। पारसी होनेपर भी हिन्दुओंके सामाजिक सुधारके लिये उधार खाये बैठे रहते थे। राजकर्म्मचारियोंमें इनका बड़ा सम्मान था। बम्बईके लाटको कौन कहे बड़े लाटतक इनसे मिलने इनके घर जाते थे। यह उपाधियोंको सदा व्याधि समझते थे। इससे इन्होंने एक नहीं दो बार "नाइट" बननेसे इनकार कर अपने नामके आगे 'सर' न लगने दिया। भाषान्तरकार

(२) महाभारतके अनुशासनपर्व्वमें जो विवाहतत्व है उसका उल्लेख मैंने नहीं किया, क्योंकि वह क्षेपक है। भीष्मने उसमें राक्षस व्याहको निन्दित और निषिद्ध कहा है। पर वह स्वयं कर्त्तव्याकर्त्तव्य स्थिर कर काशीके राजाकी तीनों कन्याएं हर

मैं कह चुका हूं कि कन्यापर, कन्याके बाप दादोंपर और समाजपर अत्याचार होनेके कारण ही बलपूर्व्वक कन्या हरण कर व्याह करना निन्दनीय है। और यह मैं दिखा चुका हूं कि कन्यापर कोई अत्याचार नहीं हुआ बल्कि उसका हित साधन ही हुआ। अब यह देखना चाहिये कि उसके पिताके कुलपर अत्याचार हुआ या नहीं। अब और स्थान नहीं है, इससे संक्षेपमें ही कहता हूं। जो कुछ कह चुका हूं उसीमें सब बातें आ गयी हैं।

कन्याके हरणमें कन्याके पितृकुलपर दो कारणोंसे अत्याचार होता है। एक तो अपात्र या अनिच्छित पात्रके हाथोंमें कन्याके पड़ जानेसे। सो यहां वैसा नहीं हुआ। अर्ज्जुन न अपात्र था और न अनिच्छित ही था। दूसरे, उनका अपना अपमान होनेसे। सो यह भी कह चुका हूं कि इससे यादवोंका कुछ अपमान नहीं हुआ। और न इसका कोई कारण ही था। यह बात स्वयं यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णने ही कही है और उनकी बात न्यायसंगत मानकर यादवोंने बड़ी धूमधामसे सुभद्राका व्याह कर दिया। इसवास्ते अब यह कहना वृथा है कि यादवोंपर अत्याचार हुआ।

लाये थे। इसलिये भीष्मका राक्षस विवाहको निन्दित और निषिद्ध समझना सम्भव नहीं। भीष्मके चरित्रसे प्रगट होता है कि वह निन्दित और निषिद्ध कर्म्म प्राणान्त होनेपर भी नह करते थे। जिस कविने उनका चरित्र लिखा है उसने उनके मुंहसे ऐसी बात कभी नहीं कहलायी।

अब समाजपर क्या अत्याचार हुआ, इसका विचार कीजिये। समाज जिस बलको अनुचित बल समझती है वह बल समाजके किसी व्यक्तिपर प्रयोग किया जाय, तो समाजपर अत्याचार होना कहते हैं। पर जब उस समयकी समाजमें क्षत्रियोंका ऐसा बलप्रयोग विहित और प्रशस्त समझा जाता था, तब यह कहनेका किसीको अधिकार नहीं है कि समाजपर अत्याचार हुआ। जो काम समाजसम्मत है उससे उसपर अत्याचार नहीं होता है।

यह विषय इतना विस्तारपूर्व्वक क्यों लिखा गया, इसका कारण है। कृष्णके द्वेषियोंने कृष्णको सुभद्राहरणके लिये कभी गालियां नहीं दी हैं। इसलिये कृष्णका पक्ष समर्थन करनेकी आवश्यकता नहीं थी। मेरे कहनेका मतलब यह है कि विलायतवालोंसे हम लोगोंने जो छोटा गज मांग लिया है उससे नापनेसे हमारे पुरखोंकी लासानी जायदादका ज्यादा हिस्सा जप्त हो जायगा। (१)

---

(१) बंकिम बाबूने और सब शंकाओंका तो समाधान किया पर इसके बारेमें कुछ नहीं कहा कि अर्ज्जुनका ब्याह सुभद्रासे कैसे हो गया, क्योंकि वह उसकी ममेरी बहन थी। भाषान्तरकार

चौथा परिच्छेद ।

खाण्डवदाह ।

सुभद्राहरणके बाद श्रीकृष्णके दर्शन खाण्डव दाहके समय मिलते हैं। पाण्डव खाण्डवप्रस्थमें रहते थे। उनकी राजधानीके निकट खाण्डव नामका एक बड़ा जङ्गल था। कृष्ण और अर्ज्जुनने उसे जलाया था। उसकी कहानी यों है। यह निरी मन गढ़न्तसी है।

प्राचीन समयमें श्वेतकी नामका एक राजा था। वह बड़ा याज्ञिक था। सदा यज्ञ किया करता था। उसके मारे ऋत्विक् ब्राह्मण हैरान थे। उन्होंने हारकर जवाब दे दिया। राजाके बहुत तंग करनेपर वह बोले "यह काम हमसे न हो सकेगा, तुम रुद्रके पास जाओ।" राजा रुद्रके पास गया। रुद्रने कहा "हम यज्ञ नहीं करते हैं, यह ब्राह्मणोंका काम है। दुर्व्वासा ब्राह्मण है, वह हमारा ही अंश है, हम उससे कहे देते हैं।" रुद्रके अनुरोधसे दुर्व्वासाने राजाका यज्ञ किया। बड़ा भारी यज्ञ हुआ। बारह वर्षतक लगातार घीकी धारा बहती रही। घी खाते खाते अग्निको अजीर्ण (Dyspepsia) हो गया। वह ब्रह्माके पास जाकर बोला "बूढ़े बाबा, बड़ी मुश्किल है, खाते खाते अजीर्ण हो गया, अब क्या करूं?" ब्रह्माने जो उपाय बताया वह Similia Similibus Curanter (समं साम्येन शम्यते) ही था। वह बोले "अच्छा, खाते खाते अजीर्ण होगया है, तो और भी खाओ।

खाण्डव वन खा जाओ, बस चंगे हो जाओगे।" अग्निदेव सुनते ही खाण्डव बन पहुंचे। वह चारों ओरसे जलने लगा। उस वनमें बहुतसे जीवजन्तु रहते थे। वह वनमें आग लगते देखकर बुताने लगे। हाथियोंने सूंड़ोंसे, सांपोंने फनोंसे और पक्षियोंने चोंचोंसे जल ला लाकर छिड़कना शुरू किया। बस आग ठंढी पड़ गयी। इस तरह सात वार अग्निदेवने चेष्टा की पर सातों वार उन्हें नीचा देखना पड़ा। फिर वह ब्राह्मण बनकर कृष्ण अर्ज्जुनके पास जाकर बोले "महाराज, मैं बड़ा भकोसू हूं। क्या आप मुझे भर पेट खिला सकते हैं?" उन्होंने कहा, "हां।" तब अग्निदेवने प्रगट हो कहा, "मैं खाण्डव वन खाऊंगा। मैं खाने गया था पर इन्द्रके मारे न खा सका। वह आकर जल बरसाता है बस मैं लाचार हो जाता हूं।" इसपर कृष्ण और अर्ज्जुन अस्त्र ले खाण्डव वन जलानेके लिये गये। इन्द्र आकर जल बरसाने लगा पर अर्ज्जुनकी वाणवृष्टिके आगे इन्द्रकी कुछ न चली। वाणवृष्टिसे जलवृष्टि कैसे बन्द हो गयी, यह हम कलकत्तावासियोंकी समझमें नहीं आया। अगर आ जाता, तो अतिवृष्टिसे फसलको बचानेका उपाय किया जाता। खैर, इन्द्र बिगड़कर युद्ध करने लगा। सब देवताओंने अस्त्र शस्त्र ले सहायता की। पर अर्ज्जुन किसी तरह हटनेवाला न था। इन्द्रने पहाड़ फेंककर मारा, तो अर्ज्जुनने अपने वाणोंसे उसे तोड़ फोड़कर गिरा दिया। (अगर यह विद्या आजकल मालूम होती, तो पहाड़ोंमें रेलकी लाईन बनानेमें बड़ा सबीता होता)। अन्तमें

इन्द्रने वज्र चलाना चाहा, तो देववाणी हुई कि कृष्णार्ज्जुन नर नारायण प्राचीन ऋषि हैं। (१)

देववाणीसे बड़ा सुबीता है—बोलनेवालेका पता नहीं, पर मतलबकी बातें सुनायी पड़ जाती हैं। देववाणी सुनते ही देवता सब चल दिये। कृष्ण और अर्ज्जुन बेखटके जंगल जलाने लगे। आगके डरसे जो पशु पक्षी भागते उन्हें वह मार गिराते थे। उनका मेद मांस खानेसे अग्निदेवकी मन्दाग्नि छूट गयी अर्थात् विषसे विष उतर गया। अग्निदेवने उन दोनोंको वर दिया। हारकर भागे हुए देवताओंने भी आकर वर दिया। सब लोग प्रसन्न हो अपने अपने घर गये।

इस प्रकारकी मनगढ़न्त कहानियोंके भरोसे इतिहासकी समालोचना करनेसे अपनी हंसी करानेके सिवा और कोई लाभ नहीं। मेरी समालोचनाके विषय अर्थात् कृष्णचरित्रकी भलाई बुराई भी इनमें कुछ नहीं है। यदि इसका कुछ ऐतिहासिक अभिप्राय हो, तो वह बस इतना ही है कि पाण्डवोंकी राजधानीके समीप एक वन था। उसमें बहुतसे डरावने जानवर रहते थे। कृष्ण और अर्ज्जुनने जीव जन्तुओंको मार तथा जङ्गलको जलाकर साफ कर दिया था। अगर ऐसा हुआ हो, तो इसमें

(१) पाठकोंने देखा! कृष्ण एक ओर तो विष्णुके बाल थे और यहां प्राचीन ऋषि होगये। अब आगे विष्णुके अवतार होंगे। इस बातके खण्डन मण्डनकी आवश्यकता नहीं। मुझे तो कृष्णचरित्रकी आलोचना करनी है।

ऐतिहासिक कीर्त्ति या अकीर्त्ति कुछ भी नहीं है। सुन्दर वनको साफ करने वाले नित्य ही ऐसी लीला करते रहते हैं।

मैं मानता हूं कि यह व्याख्या शेखचिल्लीके ढंगकी हुई। पर ऐसा करनेको मैं लाचार था। खाण्डवदाहकी कथा अधिकतर तीसरी तहकी हो सकती है। पर स्थूल घटनाका कुछ उल्लेख असली महाभारतमें नहीं है, यह कहनेके लिये मैं तैयार नहीं हूं। पर्व्वसंग्रहाध्याय और अनुक्रमणिकाध्यायमें इसकी चर्चा है। इस खाण्डवदाहसे सभापर्व्वकी उत्पत्ति है। इसी वनमें मयदानव रहता था। वह जब जलने लगा तब अर्जुनको शरणमें आया। अर्ज्जुनने भी शरणागतकी रक्षा की। इस उपकारके बदले मयदानवने पाण्डवोंके लिये एक बड़ा सभाभवन बना दिया था। इसी सभाभवनकी कथा सभापर्व्वमें है।

सभापर्व्व आजकल अठारह पर्व्वोंमेंसे एक पर्व्व है। महाभारतके युद्धका बीज इसीमें है। यह बिलकुल ही छोड़ा नहीं जा सकता। अगर नहीं, तो यह देखना चाहिये कि इसमें कितना ऐतिहासिक तत्व छिपा हुआ है। सभा और उसके उपलक्ष्यके राजसूय यज्ञको मौलिक और ऐतिहासिक माननेमें कोई आपत्ति दिखायी नहीं देती। यदि सभाभवन ऐतिहासिक हुआ, तो उसका बनानेवाला भी जरूर ही कोई होगा। मान लो, उस बनानेवाले या एनजीनियरका नाम मय था। शायद वह अनार्य्यवंशका था। इससे वह दानव कहलाता था। ऐसा भी हो सकता है कि अर्ज्जुनने उसके प्राण बचाये थे। उसके

बदले उसने सुन्दर सभा बना दी। यदि यह सत्य हो, तो वह किस संकटमें पड़ा और अर्ज्जुनने उसकी रक्षा कैसे की यह खाण्डवदाहकी कथामें मिलता है। यह मुझे अवश्य मानना पड़ेगा कि यह सब बातें अन्धकारमें केवल ढला फेंकना है। पर साथ ही इसके यह भी कहूंगा कि प्राचीन ऐतिहासिक तत्वोंकी बहुतसी बातें ऐसी ही हैं। मयदानवकी समस्त कथा ही कदाचित् कविकी कल्पना मात्र है। जो हो, यहां कविने कृष्ण और अर्ज्जुनका जो चरित्र लिखा है वह बड़ा मनोहर है। वह लिखे बिना नहीं रहा जाता है। मयदानवकी जब प्राणरक्षा हुई तब वह अर्ज्जुनसे बोला "आपने मुझे बचाया है, इसलिये कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूं?" अर्ज्जुनने कुछ नहीं मांगा। कहा, केवल प्रीति रखना। वह बहुत हठ करने लगा तब अर्ज्जुनने कहा "हे कृतज्ञ! मैंने तुझे मृत्युसे बचाया है इस कारण तू मेरा उपकार किया चाहता है, इससे मैं तुझसे कुछ काम लेना पसन्द नहीं करता हूं।"

इसका नाम निष्काम धर्म्म है। क्रिस्तानोंके यूरपमें यह नहीं है। बाइबलमें जो धर्म्म लिखा है वह स्वर्ग या ईश्वरकी प्रीति चाहता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम यह धर्म्म छोड़कर यूरपके ग्रन्थोंसे धर्म्म और नीतिकी शिक्षा लेते हैं। अर्ज्जुनके पिछले वाक्यसे निष्काम धर्म्म और भी स्पष्ट हो जाता है। मयदानव अगर कुछ काम करके सुखी हो सके तो अर्ज्जुन उस सुखसे उसे वंचित करना भी नहीं चाहता है। इसलिये

वह कहने लगा "मैं यह भी नहीं चाहता कि तेरी इच्छा पूरी न हो। इसलिये तू कृष्णका कुछ काम कर दे। बस, उसीसे मेरा प्रत्युपकार हो जायगा।" अर्थात् अर्ज्जुनने अपना कुछ काम उससे नहीं कराया, कह दिया कि मेरे बदले दूसरेका काम कर।

इसपर मयने कृष्णसे पूछा। मय दानवोंका विश्वकर्म्मा यानी चीफ एनजीनियर था। कृष्णने भी उससे अपना काम नहीं लिया। उन्होंने कहा "युधिष्ठिरके लिये एक सभाभवन बना दे जिसकी नकल कोई न कर सके।"

यह कृष्णका काम नहीं था, और था भी। मैं कह चुका हूं कि कृष्णके जीवनके बस दो ही उद्देश्य थे—धर्म्मप्रचार और धर्म्मराज्यका संस्थापन। धर्म्मप्रचारकी बात अभी नहीं आयी है। सभाभवनका निर्म्माण ही धर्म्मराज्यसंस्थापनका श्रीगणेश है। यहीं उनकी उस अभिलाषाकी गन्ध मिलती है। युधिष्ठिरकी सभा बन जानेपर जो सब घटनाएं हुईं अन्तमें उनसे ही धर्म्म-राज्यकी संस्थापना हुई। धर्म्मराज्यका संस्थापन जगत्‌का काम है। किन्तु जब वह कृष्णका उद्देश्य था, तब यह संस्थापन भी उनका ही काम हुआ।

पिछले अध्यायमें समाजसुधारकी बात उठी थी। मैंने कहा था कि श्रीकृष्णने समाज सुधारक (Social Reformer) बननेकी चेष्टा नहीं की। उनका उद्देश्य देशका नैतिक तथा राजनीतिक पुनर्ज्जीवन (Moral and Political Regene-

ration), धर्म्म प्रचार और धर्म्मराज्यका संस्थापन था। यह होनेसे समाज-संस्कार आप ही हो जाता है। इसके हुए बिना समाज-सुधार किसी तरह नहीं होता है। आदर्श मनुष्य यह जानते थे; पेड़की जड़ न सींचकर डाल सींचनेसे फल नहीं लगते हैं। हम लोग यह नहीं जानते हैं, इसीसे समाजसुधारको एक भिन्न वस्तु समझकर गड़बड़ मचाते हैं। नामकी भूख ही इसका कारण है। समाज-सुधारक बननेसे तुरत नाम हो जाता है। सुधारका ढंग कहीं अंग्रेजी हो, तो बस पांचों घीमें हैं। और जिसके कुछ काम नहीं है उसे धूमधड़का बहुत पसन्द है। सुधारसे और चाहे कुछ न हो, पर धूमधड़का जरूर हो जाता है। धूमधड़का बड़े मजेकी चीज है। सुधारकोंसे प्रश्न है कि धर्म्मकी उन्नतिके विना सुधार किसके सहारे होगा? राजनीतिक उन्नतिका भी मूल धर्म्मकी उन्नति है। इसलिये सब कोई मिलकर धर्म्मकी उन्नतिमें मन लगाओ। धर्म्मोन्नति हो जानेसे फिर सुधारके लिये अलग चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी। इसके विना समाजसुधार किसी तरह नहीं होगा। इसीसे आदर्श मनुष्यने मालाबारी बननेकी चेष्टा नहीं की।

पांचवां परिच्छेद ।

कृष्णकी मानविकता ।

इस कृष्णचरित्रमें मैं कृष्णकी केवल मानुषी प्रकृतिकी ही आलोचना करता हूं। वह ईश्वर थे या नहीं, इस विषयमें मैं कुछ नहीं कहता। इससे पाठकोंका कुछ सम्बन्ध नहीं, क्योंकि मैं उन्हें ईश्वर मानता होऊं तो भी मैं पाठकोंसे माननेके लिये नहीं कहता हूं। मानना या न मानना पाठकोंकी बुद्धि और चित्तपर निर्भर है, यह अनुरोधसे नहीं होता है। स्वर्ग जेलखाना नहीं है। मैं यह नहीं मानता कि उसमें एक ही फाटक है। धर्म्म एक ही है पर उसके पास पहुंचनेके बहुतसे रास्ते हैं। कृष्णके भक्त और क्रिस्तान दोनों ही वहां पहुंच सकते हैं। (१) इसलिये कोई कृष्ण-धर्म्म ग्रहण न करे, तो मैं उसे पतित नहीं समझूंगा और आशा है कि कृष्णके द्वेषी या पुरानी वैष्णव-सम्प्रदाय मुझे नरकगामी नहीं समझेगी।

मेरा कहना यह है कि मैं श्रीकृष्णको केवल मानुषी प्रकृतिकी आलोचना करता हूं। मैंने उन्हें आदर्श मनुष्य कहा है। इसलिये मनुष्यशक्तिके बाहर उनका जरासा भी कुछ कर बैठना अनुचित है। कह चुका हूं कि ईश्वर लोगोंको शिक्षा

(१) "धर्म्मके असंख्य द्वार हैं। धर्म्मका अनुष्ठान चाहे जैसे करो, वह निष्फल नहीं जाता है।" महाभारत शान्तिपर्व्व १७४ अध्याय।

देनेके लिये आदर्श मनुष्यके रूपमें जन्म ग्रहण करे, तो वह जगत्में मनुष्यकी शक्तिसे ही मनुष्योंके काम करेगा। वह कभी किसी अलौकिक शक्तिसे लौकिक या अलौकिक काम नहीं करेगा। क्योंकि मनुष्यके कोई अलौकिक शक्ति नहीं है। जिसने अलौकिक शक्तिसे काम लिया वह मनुष्यका आदर्श न हो सका। जो शक्ति मनुष्यमें नहीं है, उसकी नकल वह किस तरह कर सकेगा? (१)

(१) "We forget that Christ incarnate was such as we are, and some of us are putting him where he can be no exmple to us at all. Let no fear of losing the dear great truth of the divinity of Jesus make you lose the dear great truth of the humanity of Jesus. He took upon himself our natrue: as a man of the like passions, he fought that terrible fight in the wilderness: year by year, as an innocent man, was he persecuted by narrow-hearted Jews: and his was humanity whose virtue was pressed by all the needs of the multitude and yet its richness of nature; a humanity which, though given up to death on the cross, expressed all that is within the capacity of our humanity and if we really follow him we shall be holy even as he is holy."

इसलिये ईश्वरके अवतार होनेपर भी श्रीकृष्णका कोई अलौकिक शक्ति प्रगट करना या अमानुषी कार्य्य करना सम्भव नहीं। महाभारतमें कई ठौर कृष्णकी अलौकिक शक्तिका आरोप किया गया है। वह सब अमूलक और क्षेपक हैं या नहीं, यह प्रसङ्गानुसार यथास्थान दिखाऊंगा। अभी कहना यह है कि श्रीकृष्णने अपनेको ईश्वर कहीं नहीं कहा है। (१) और न यही कहा है कि मुझमें अमानुषी शक्ति है। किसीके ईश्वर कहनेपर उन्होंने उसका अनुमोदन नहीं किया। और न ऐसा आचरण ही किया जिससे उनके ईश्वर होनेका विश्वास दृढ़ हो जाय। एक जगह तो उन्होंने साफ ही कह दिया है, "मैं यथासाध्य पुरुषकार प्रकाश कर सकता हूं पर दैवके कामोंमें मेरा कुछ भी वश नहीं है।" (२)

श्रीकृष्णने सावधानीसे मनुष्योचित आचरण किया है। जिसके मनमें देवता बननेकी इच्छा होती है वह मनुष्योचित

Sermon by Dr. BROOKLY, delivered at Trinity Church, Boston, March 25th 1885.

मैं श्रीकृष्णके विषयमें ठीक यही बात कहना हूं।

(१) दो चार ठौर जहां उन्होने ऐसा कहा है वह क्षेपक है, यह यथास्थान सिद्ध करूंगा।

(२) "अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः।
दैवं तु न मया शक्यं कर्म्म कर्त्तुं कथञ्चन"

उद्योगपर्व्व ७८ अध्याय।

आचरणसे जरा आगे बढ़ जाता है। पर कृष्णने ऐसा कहीं नहीं किया है। खाण्डवदाहके बाद द्वारका जानेके समय युधिष्ठिरसे बिदा हो उन्होंने जो आचरण किया वह अत्यन्त मनुष्योचित है। उसका वर्णन यों है—

"वैशम्पायन बोले, प्रसन्नचित्त पाण्डवोंके बड़े आदर सत्कारसे भगवान् वासुदेव खाण्डवप्रस्थमें कई दिन रह गये। पीछे पिताके दर्शन हेतु घर जानेके लिये बड़े ही उत्सुक हुए। पहले धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बिदा हो पीछे उन्होंने अपनी फूफी कुन्तीके चरण छूए। फिर मिलनेके लिये अपनी बहन सुभद्राके पास गये। उन्होंने उसे अर्थसे भरी हुई वास्तवमें हितकी बातें बहुत थोड़े शब्दोंमें समझायीं। भद्रभाषिणी सुभद्राने भी अपनी माता आदि स्वजनोंसे कहनेके लिये कहने योग्य बातें कहकर बारंबार प्रणाम किया; वृष्णिवंशावतंश कृष्ण सुभद्रासे बिदा हो द्रौपदी और धौम्यसे मिले। धौम्यका यथाविधि अभिवादन कर द्रौपदीसे सम्भाषण किया। वहांसे फिर अर्ज्जुनके साथ युधिष्ठिरादि चारों भाइयोंके निकट गये। वहां भगवान् वासुदेव पांचों पाण्डवोंसे वेष्टित हो देवताओंसे वेष्टित इन्द्रके समान शोभायमान होने लगे।

फिर श्रीकृष्णने यात्राके समयके कार्य्य करनेके लिये स्नान कर अलङ्कार धारण किया। और माला, जप, नमस्कार तथा नाना प्रकारके गन्ध द्रव्योंसे देवता और द्विजोंका पूजन किया। धीरे धीरे सब समयोचित कार्य्य करके वह बाहरके कमरेमें

आये। स्वस्तिवाचन करनेवाले ब्राह्मण दधिपात्र, पुष्प, और अक्षतादि मङ्गलद्रव्य हाथोंमें लिये वहां खड़े थे। वासुदेवने उन्हें धन दान कर उनकी प्रदक्षिणा की। फिर अति उत्तम तिथि नक्षत्र युक्त मुहूर्त्तमें गदा, चक्र, असि, धनुषादि अस्त्र शस्त्र धारण कर वायुके समान द्रुतगामी गरुड़की ध्वजासे युक्त सोनेके रथपर चढ़कर चले। वह ज्यों ही चले त्यों ही युधिष्ठिर स्नेहके मारे दारुक सारथीको अलग कर उसकी जगहपर आप जा बैठा। महाबाहु अर्ज्जुन भी सोनेका चमर ले रथपर जा चढ़ा। महाबली भीमसेन, नकुल, सहदेव, ऋत्विक् और पुरोहित संग चलने लगे। उस समय वासुदेव ऐसे शोभायमान थे जैसे शिष्योंके साथ जाते हुए गुरु। वासुदेव अर्ज्जुनसे गले गले मिले, युधिष्ठिर और भीमको उन्होंने प्रणाम किया और नकुल तथा सहदेवसे सम्भाषण। युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्ज्जुनने उनको आलिङ्गन किया और नकुल तथा सहदेवने अभिवादन। इस प्रकार आध कोस धीरे धीरे जानेके बाद शत्रुनिसूदन कृष्णने युधिष्ठिरके चरण छूए और कहा कि अब आप लौट जाइये। धर्म्मराज युधिष्ठिरने पतितपावन कमललोचन कृष्णका माथा सूंघकर द्वारका जानेकी अनुमति दी। फिर भगवान वासुदेव पाण्डवोंके साथ यथाविधि प्रतिज्ञा करके बड़े कष्टसे उन्हें विदा कर अमरावती जाते हुए इन्द्रके समान द्वारकाकी ओर जाने लगे। जबतक श्रीकृष्ण दिखाई दिए तब तक पाण्डव उन्हें एक टक देखते रहे और मनही मन उनका अनुगमन करने लगे। कृष्णको देखकर उनकी परि-

तृप्ति नहीं हुई और कृष्ण आंखोंके ओझल होगये। तब वह लोग निराश हो कृष्णकी चिन्ता करते हुए घर लौट आये। देवकीनन्दन कृष्ण भी अनुगामी महावीर सात्वत और दारुक सारथीके साथ द्रुतगामी गरुड़की तरह शीघ्र द्वारका आ पहुंचे। धर्म्मराज युधिष्ठिर भ्राताओंके साथ घर पहुंचनेपर भाईबन्द पुत्रोंको विदा कर द्रौपदीके साथ आमोद प्रमोदमें समय विताने लगे। इधर कृष्णने भी परम प्रसन्नतासे द्वारकापुरीमें प्रवेश किया। उग्रसेन आदि यदुकुलके महापुरुषोंने उनका आदर सत्कार किया। वासुदेवने घर पहुंचकर पहले आहुक, वृद्ध पिता, यशस्विनी माता, और बलभद्रको प्रणाम किया। पीछे प्रद्युम्न, शाम्ब, निशठ, चारुदेष्ण, गद, अनिरुद्ध और भानुको गले लगा वृद्धोंकी आज्ञा ले रुक्मिणीके भवनमें पहुंचे।"

छठा परिच्छेद ।

जरासन्धवधका परामर्श ।

इधर सभा बनी और उधर युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ करनेका प्रस्ताव हुआ। सबने राय दी, पर श्रीकृष्णकी सम्मति लिये विना युधिष्ठिर कुछ करना नहीं चाहता था क्योंकि कृष्ण नीतिज्ञ थे। इसलिये उसने कृष्णको बुला भेजा। कृष्ण भी खबर पाते ही खाण्डवप्रस्थ आ पहुंचे।

राजसूयके बारेमें युधिष्ठिर श्रीकृष्णसे कहता है—

"मैंने राजसूय यज्ञ करना विचारा है। यह यज्ञ ऐसा नहीं है कि विचारते ही हो जाय। यह कैसे होता है, यह तुम जानते हो। जिसके लिये सब कुछ सम्भव है, जिसका सब जगह मान है, और जो समस्त पृथ्वीका अधीश्वर है, वही राजसूय यज्ञ करनेके उपयुक्त है।"

युधिष्ठिरको कृष्णसे बस इतना ही पूछना था कि "क्या मैं राजसूय यज्ञ करनेके उपयुक्त हूं? मेरे लिये क्या यह सम्भव है? मेरा क्या सब जगह मान है? क्या मैं समस्त पृथ्वीका अधीश्वर हूं?" युधिष्ठिर अपने भ्राताओंके भुजबलसे बड़ा राजा हो गया था सही, पर क्या इतना बड़ा होगया था कि वह राजसूय यज्ञ करता? मैं कितना बड़ा आदमी हूं, यह कोई स्वयं ठीक नहीं कर सकता। जो दाम्भिक और दुरात्मा हैं वह आप ही अपने बड़प्पनका अन्दाज कर लेते हैं, पर युधिष्ठिर जैसे सावधान और सुशील पुरुषका ऐसा करना सम्भव नहीं। उसने मनमें समझा कि मैं बड़ा भारी राजा हो गया हूं, पर इसपर उसका विश्वास नहीं हुआ। उसने अपने मंत्रियों और भ्राताओंको बुलाकर पूछा "क्या मैं राजसूय यज्ञ कर सकता हूं?" उन सबने जवाब दिया "हां, अवश्य कर सकते हैं। आप उसके योग्य पात्र हैं।" धौम्य द्वैपायनादि ऋषियोंको बुलाकर पूछा "क्या मैं राजसूय कर सकता हूं।" उन्होंने भी कहा "हां, कर सकते हैं। आप उसके उपयुक्त पात्र हैं।" पर तोभी (१) युधिष्ठिरको

(१) बुद्धिमान् समालोचक पांचों पाण्डवोंके चरित्रकी

सन्तोष न हुआ। अर्ज्जुन हों चाहे व्यासजी, उसे किसीका भरोसा नहीं था। वह श्रीकृष्णकी सलाह बिना कोई काम नहीं करता था, क्योंकि वह उन्हें सबसे श्रेष्ठ मानता था। इसलिये उसने 'महाबाहु सर्व्वलोकोत्तम' कृष्णसे परामर्श करना स्थिर किया। सोचा "कृष्ण सर्व्वज्ञ और सर्व्वकृत हैं, वह अवश्य ही मुझे सत्परामर्श देंगे।' इससे उसने कृष्णको बुलाकर ऊपर लिखे प्रश्न किये। क्यों कृष्णसे उसने पूछा, यह भी वह साफ साफ कृष्णसे कहता है "मेरे और मित्रोंने यह यज्ञ करनेकी सम्मति दी, पर मैंने तुमसे पूछे बिना उसका निश्चय नहीं किया है। हे कृष्ण! कोई तो मित्रताके कारण मेरे दोष नहीं बताता, कोई स्वार्थवश मीठी मीठी बातें कहता है, और कोई अपनी स्वार्थसिद्धिको ही प्रिय समझता है। हे महात्मन्, इस पृथ्वीपर ऐसे मनुष्य ही अधिक हैं, इसलिये उनकी सम्मति लेकर कुछ काम नहीं किया जाता। तुम उक्त दोषोंसे रहित और काम क्रोधसे विवर्जित हो, इस हेतु तुम मुझे यथार्थ परामर्श दो।"

आलोचना कर देखेंगे कि युधिष्ठिरका प्रधान गुण सावधानता है। भीम दुःसाहसी "गंवार", अर्ज्जुन अपने बाहुबलका गौरव जानकर निर्भय और निश्चिन्त और युधिष्ठिर सावधान था। इस संसारमें सावधानता ही अनेक स्थानोंमें धर्म्म समझी गयी है। इसका यहां प्रसङ्ग नहीं था तो भी इसे आवश्यक समझ लिखा है। इस सावधानताके रहते युधिष्ठिरका जूआ खेलना कितना सङ्गत है, यह बतानेका यहां स्थान नहीं है।

पाठको, जरा सोचो, नित्यका चाल-चलन देखनेवाले कृष्णके फुफेरे भाई कृष्णको क्या समझते थे (१) और हम उन्हें क्या समझते हैं। वह लोग श्रीकृष्णको काम क्रोधसे विवर्जित, सबसे सत्यवादी, सब दोषोंसे रहित, सर्व्वलोकोत्तम, सर्व्वज्ञ और सर्व्वकृत समझते थे और हम उन्हें लम्पट, माखनचोर, कुचक्री, मिथ्यावादी, कापुरुष और सब दोषोंकी खान समझते हैं। प्राचीन ग्रन्थोंमें जिसे धर्म्मका चरमादर्श माना है, उसे जिस जातिने इतना नीचे गिरा दिया उसका धर्म्म लोप हो जाय तो आश्चर्य्य ही क्या है?

युधिष्ठिरने जो सोचा था ठीक वही हुआ। जो अप्रिय सत्य वाक्य किसीने नहीं कहा था कृष्णने वही कहा। श्रीकृष्ण ने मीठे शब्दोंमें युधिष्ठिरसे कहा "तुम राजसूयके अधिकारी नहीं हो, क्योंकि सम्राट्के सिवा और किसीको राजसूय करनेका अधिकार नहीं है। मगधाधिपति जरासन्ध सम्राट् है। उसे जीते विना तुम राजसूय नहीं कर सकते हो और न उसके अधिकारी ही हो सकते हो।"

जो श्रीकृष्णको कुचक्री और स्वार्थी समझते हैं वह इस बात सुनकर कहेंगे कि "यह तो कृष्णके मनकी ही बात हुई। जरासन्ध कृष्णका पुराना शत्रु था, श्रीकृष्ण स्वयं उसका कुछ

(१) युधिष्ठिरने ठीक यही बात कही और किसीने उसे ज्योंका त्यों लिख लिया, ऐसा नहीं है। मौलिक महाभारतमें श्रीकृष्णका चरित्र कैसा है, यही मेरी आलोचनाका विषय है।

न कर सके तब यह चाल चले। अपना काम निकालनेको उन्होंने यह सलाह दी।"

पर अभी एक बात और बाकी है। जरासन्ध सम्राट् था, पर वह तैमूरलङ्ग या प्रथम नेपोलियनकी तरह अत्याचारी था। पृथिवी उसके अत्याचारसे पीड़ित थी। जरासन्धने राजसूय यज्ञ करना विचारा था इसलिये उसने 'बाहुबलसे सब राजाओंको जीतकर पहाड़ी किलेमें इस तरह बन्द कर रखा था जिस तरह सिंह हाथियोंको पर्व्वतकी कन्दराओंमें रखता है।" राजाओंको कारागारमें बन्द कर रखनेका एक और भयानक कारण था। वह यज्ञके समय महादेवके आगे उनकी बलि देना चाहता था। यज्ञमें पहले कभी कोई नर बलि नहीं देता था, यह इतिहासज्ञ पाठकोंको बताना वृथा है। (१) कृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं—

"हे भारतकुलप्रदीप ! बलिप्रदानके हेतु लाये हुए नृपतिगण प्रोक्षित और प्रमृष्ट होकर पशुओंकी तरह पशुपतिके घरमें बड़े कष्टसे जीवन धारण कर रहे हैं। दुरात्मा जरासन्ध शीघ्र ही उनका वध करेगा, इससे मैं उसके साथ युद्ध करनेका उपदेश देता हूं। वह दुरात्मा छयासी राजाओंको पकड़ चुका है,

(१) कोई कभी कदाचित् नरबलि दे देता था, पर सामाजिक प्रथा नहीं थी। श्रीकृष्ण एक स्थानपर कहते हैं "मैंने कभी नरबलि नहीं देखी है।" धार्मिक व्यक्ति यह भयानक कार्य्य कभी नहीं करते थे।

सिर्फ चौदहकी और कसर है। यह चौदह राजा आ जानेपर एक साथ सौ राजाओंकी बलि चढ़ा देगा। हे धर्म्मराज! इस दुरात्मा जरासन्धका यह क्रूर कर्म्म जो अभी रोक सकेगा उसका यश भूमण्डलमें सर्वत्र फैल जायगा और जो उसे परास्त कर सकेगा वह अवश्य ही सम्राट् होगा।"

इसलिये श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको जरासन्धके वधका जो परामर्श दिया उसमें कृष्णका कुछ स्वार्थ नहीं था। यद्यपि युधिष्ठिरका स्वार्थ था तथापि इस परामर्शका मुख्य उद्देश्य यह नहीं था। इसका उद्देश्य कैदी राजाओंकी भलाई—जरासन्धके अत्याचारसे पीड़ित भारतवर्षकी भलाई और सर्व्वसाधारणकी भलाई था। कृष्ण उस समय रैवतकके दुर्गमें रहते थे। वहां जरासन्धकी कुछ नहीं चलती थी। इसलिये जरासन्धके वधसे उनका कुछ बनता बिगड़ता न था। अगर कुछ बनता भी होता तो ऐसी ही सलाह देना उनका धर्म्म था जिससे लोगोंकी भलाई होती। अगर उनकी स्वार्थसिद्धि भी होती तोभी लोकहितके विचारसे उन्हें यही सलाह देनी पड़ती। "ऐसे लोकहित कामके लिये परामर्श न देना चाहिये जिसमें अपना भी स्वार्थ हो क्योंकि ऐसा करनेसे परामर्श देनेवालेको लोग स्वार्थी समझने लगेंगे।" जो ऐसा सोचते हैं वही यथार्थमें स्वार्थी और अधर्म्मी हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी मर्य्यादाका विचार किया, लोकहितका नहीं। जो यह कलङ्क सादर अपने मस्तकपर धारण कर लोकहित साधन करता है

वही आदर्श धार्मिक है। श्रीकृष्ण सर्वत्र ही आदर्श धार्म्मिक हैं।

युधिष्ठिर बड़ा चाकचौबन्द था। वह जरासन्धसे भिड़नेके लिये सहज ही राजी नहीं हुआ। भीमार्ज्जुनके उत्साहपूर्ण वचनों और श्रीकृष्णके परामर्शसे आखिर राजी हो गया। भोम, अर्ज्जुन और श्रीकृष्ण यही तीनों जरासन्धको जय करने चले। जिसकी अगणित सेनाके भय से प्रबल वृष्णिवंशी रैवतकपर्व्वतमें जा छिपे थे उसे जीतनेके लिये केवल तीन मनुष्य चले, यह कैसा परामर्श है? यह कृष्णका परामर्श था और यह उनके आदर्श चरित्रके अनुसार ही था। जरासन्ध दुष्टात्मा था। उसको दण्ड देना जरूरी था, पर उसके सैनिकोंका क्या अपराध था, जो उनके मारनेके लिये सेना जाती? ऐसे युद्धमें केवल निरपराधियोंके प्राण जाते हैं और अपराधी भो कभी कभी हाथसे निकल जाते हैं। जरासन्धकी सेनाके आगे पाण्डवोंकी सेना नहींके बराबर थी। ससैन्य युद्धमें उससे पार पाना असम्भव ही था। पर उस समयके क्षत्रिय द्वैरथ्य युद्ध (दो रथियोंका परस्पर युद्ध) के लिये बुलाये जानेपर कभी पीछे पैर नहीं देते थे। (१) इसलिये श्रीकृष्णने सोचा कि व्यर्थकी हत्यासे क्या लाभ, हम तीनों आदमी चलकर जरासन्धको ललकारेंगे, बस वह तीनोंमेंसे किसी एकके साथ अवश्य लड़ेगा। जो बल, साहस और शिक्षामें अधिक होगा वही जीतेगा। इन

(१) कालयवन क्षत्रिय नहीं था।

विषयोंमें चारों ही पूरे थे। यह विचारकर तीनों स्नातक ब्राह्म-णका वेश बनाकर चले। वेष बदलकर क्यों चले, यह समझमें नहीं आता है। छिपकर जरासन्धको मार डालनेका उनका विचार नहीं था। उन्होंने भेरियों और प्रकार चैत्यको तोड़ फोड़ शत्रुभावसे जरासन्धकी सभामें प्रवेश किया था। इस-लिये छिपकर काम करनेका इरादा उनका नहीं था। पर वेष बदलकर जाना कृष्ण और अर्ज्जुनके योग्य काम नहीं था। इसके सिवा एक काम और भी है। वह तो उनके बिलकुल ही अयोग्य था। जरासन्धके निकट पहुंचते ही भीमार्ज्जुन मौनी बन गये। मौनीको बोलना मना है। इसलिये वह दोनों कुछ न बोले। लाचार श्रीकृष्णको ही बोलना पड़ा। उन्होंने जरास-न्धसे कहा "इन दोनोंने मौनव्रत धारण किया है, अभी नहीं बोलेंगे, दोपहर रात बीत जानेपर आपसे बातचीत करेंगे।" इस-पर जरासन्ध उन्हें यज्ञशालामें टिका महलमें चला गया। और आधीरातके समय फिर उनके पास आया।

यह भी एक चतुराई है। यह चतुराई नहीं धूर्त्तता है। यह धर्मात्माको शोभा नहीं देती है। इस धूर्त्तताका तात्पर्य्य क्या है? जिन कृष्णार्ज्जुनको हम अबतक धर्म्मका आदर्श समझते आ रहे हैं वह अकस्मात् इतना कैसे गिर गये? अगर इस धूर्त्तताका कुछ उद्देश्य हो, तो हम समझ लें कि शत्रुके फँसानेके लिये यह चाल चली गयी है। पर ऐसा होनेपर हमें कहना पड़ेगा कि, यह धर्मात्मा नहीं हैं और न कृष्णचरित्रको जैसा विशुद्ध समझा था वैसा ही है।

जिसने जरासन्धके वधका वृत्तान्त आद्योपान्त नहीं पढ़ा है वह कह सकता है कि इस चतुराईका उद्देश्य तो स्पष्ट ही है। आधीरातको जरासन्ध अकेला आवेगा, तो उसे अचानक आक्रमण कर मार डालना ही इसका उद्देश्य है। इसीसे कृष्णने आधीरातके समय मिलनेका ढकोसला फैलाया। पर वास्तवमें न उनका कोई ऐसा उद्देश्य ही था और न उन्होंने ऐसा कुछ काम ही किया। आधीरात गये वह जरासन्धसे मिले अवश्य थे, पर उन्होंने आक्रमण क्या उसकी चेष्टा भी नहीं की। युद्ध भी दिनको हुआ रातको नहीं। यह भी चौड़े मैदान, सब मगधवासियोंके सामने, कुछ छिपकर नहीं। एक दिन नहीं चौदह दिनोंतक यह युद्ध हुआ। तीनोंने मिलकर युद्ध नहीं किया, केवल एकने किया था। जाते ही अचानक नहीं भिड़ गये, खूब सोच समझकर भिड़े थे। यहांतक कि जरासन्ध अपने पुत्रका राज्याभिषेकतक कर आया था। उसने सोचा, युद्धमें जाने क्या हो, इसलिये सब तरहसे तैयार रहना चाहिये। श्रीकृष्णादि निरस्त्र हो जरासन्धसे मिले थे। इसमें कुछ भी चालाकी न थी। जरासन्धके पूछते ही श्रीकृष्णने सच्चा परिचय दिया था। युद्धके समय जरासन्धके पुरोहित मरहमपट्टीके समानसे लैस हो आये थे, पर कृष्णकी ओर ऐसी कुछ भी तैयारी न थी। तोभी इन्होंने उसे "अन्याययुद्ध" कहकर कुछ आपत्ति नहीं की। युद्धमें भीमके प्रहारसे जरासन्ध जब बहुत व्यथित होने लगा तब दयालु श्रीकृष्णने भीमको इतना प्रहार करनेसे रोका था। जिनका ऐसा

चरित्र और ऐसा व्यवहार है वह भला क्यों चालाकीसे काम लेने लगे? व्यर्थकी चालाकी क्या उनके लिये सम्भव है? जो बेवक़ूफ है, वही बेमतलब चालाकी करेगा। कृष्ण तथा अर्जुन और चाहे जो कुछ हो, पर बेवक़ूफ नहीं थे। यह विपक्षी भी मानते हैं। फिर यह चालाकी आयी कहांसे? जिस कथाका इस समस्त जरासन्धपर्व्वाध्यायसे मेल नहीं है वह इसके भीतर कहांसे आ गयी? क्या यह क्षेपक है? हांके सिवा इसका और कुछ उत्तर नहीं है। अच्छा, इसपर जरा अच्छी तरह विचार करना चाहिये।

हम देख चुके हैं कि महाभारतमें कहीं एक अध्याय क्षेपक है तो कहीं पर्व्वाध्यायका पर्व्वाध्याय है। एक अध्याय या पर्व्वाध्याय क्षेपक हो सकता है तो किसी अध्याय या पर्व्वाध्यायका कुछ अंश या कुछ श्लोक क्या क्षेपक नहीं हो सकते हैं? ऐसा होनेमें कुछ आश्चर्य्य नहीं है। बल्कि संस्कृत ग्रन्थोंमें तो बराबर ऐसा हुआ है। इसीसे वेदोंकी भिन्न भिन्न शाखाएं हैं और रामायणादिके भिन्न भिन्न पाठ हैं। यहांतक कि शकुन्तला, मेघदूत आदि इधरके ग्रन्थोंमें भी पाठान्तर हैं। सारांश यह कि सब मौलिक ग्रन्थोंके बीच बीचमें दो दो चार चार श्लोक क्षेपक मिलते हैं। फिर महाभारतके मौलिक अंशके भीतर क्षेपक मिले तो आश्चर्य्य ही क्या है?

ऐसा मत समझिये कि जो श्लोक मेरे सिद्धान्तके विपरीत होंगे उन्हें ही मैं क्षेपक समझकर छोड़ दूंगा। कौन क्षेपक है,

कौन नहीं है, इसकी परीक्षा करनी होगी। जिसे मैं क्षेपक कहूंगा उसमें मुझे क्षेपकके लक्षण दिखाने पड़ेंगे।

जो बहुत पुराने समयमें प्रक्षिप्त हुआ है उसके खोज निकालनेका उपाय आभ्यन्तरिक प्रमाणके सिवा और कुछ नहीं है। आभ्यन्तरिक प्रमाणोंमें उत्तम प्रमाण है असङ्गति, अनैक्य। अगर किसी पुस्तककी एक बातसे उसकी सारी बातोंका विरोध हो, तो समझना होगा कि रचयिता या लिखनेवालेकी भूल है या क्षेपक है। भूल तथा क्षेपकको पहचान लेना सहज है। अगर रामायणकी किसी कापीमें लिखा हो कि रामने उर्म्मिलासे व्याह किया तो तुरत मालूम हो जायगा कि यह लिखनेवालेकी भूल है। और अगर लिखा हो कि रामने उर्म्मिलासे व्याह किया इससे रामलक्ष्मणमें लड़ाई हो गयी, पीछे रामने लक्ष्मणको उर्म्मिला देकर मेल कर लिया, तो यह रचयिता या लेखककी भूल नहीं कही जायगी। इसे क्षेपक कहना पड़ेगा। अभी मैं दिखा चुका हूं कि जरासन्धवध-पर्व्वाध्यायकी जिन कई बातोंपर विचार हो रहा है उनका मेल उस पर्व्वाध्यायकी और सब बातोंसे बिलकुल नहीं है। और यह भी स्पष्ट है कि वह रचयिता और लिखनेवालेकी भूल हो नहीं सकती। इसलिये इन्हें प्रक्षिप्त कहनेका मुझे अधिकार है।

पाठक इसपर कह सकते हैं कि क्षेपक लिखनेवाला ऐसी असंगत बात क्यों लिखेगा? इससे उसका क्या मतलब निकलेगा? इसका जवाब सुनिये। मैंने कई वार कहा है कि

महाभारतकी तीन तहें हैं। तीसरी तह कई आदमियोंकी बनायी है। पहली तह एक मनुष्यकी और दूसरी दूसरे मनुष्यकी बनायी है। यह दोनों ही अच्छे कवि थे। पर इनकी रचना-प्रणालीमें भेद है। यह देखते ही माल्हूम हो जाता है। दूसरी तहके कविका ढंग ही और है। उनके कलमकी करतूत युद्धपर्व्वोंमें अधिकतासे मिलती है। इन पर्वोंका अधिकांश इनका ही लिखा है। इनकी आलोचनाके समय यह अच्छी तरह समझाया जायगा। इनकी लिखावटकी सबसे बड़ी पहचान यह है कि यह कृष्णको चतुर-चूड़ामणि बनानेके बड़े प्रेमी हैं। सब गुणोंसे बढ़कर यह बुद्धिका ही आदर करते हैं। ऐसे लोगोंका अभाव आजकल भी नहीं है। आज भी ऐसे अनेक सुशिक्षित, उच्च श्रेणीके मनुष्य हैं जो चतुर बुद्धिमान्‌को ही मनुष्यत्वका आदर्श मानते हैं। यूरपमें यही आदर्श बड़ा प्यारा है। इसीसे आजकलकी कूटविद्या (Diplomacy) उत्पन्न हुई है। बिस्मार्क (१) एक दिन जगत्‌का प्रधान मनुष्य था। थेमिस्टोक्लिसके (२) समयसे लेकर आजतक जो इस कूटविद्यामें पटु हुए उनका

(१) जरमनीका प्रधान मन्त्री प्रिंस बिस्मार्क। इसके ही समय जरमनीकी वह उन्नति हुई जो आज देखी जाती है। भाषान्तरकार।

(२) Themistocles, यह ईसवी सन्‌की पांचवीं शताब्दीके पूर्व्वार्द्धमें यूनानका सबसे बड़ा सिपाही और राजनीतिज्ञ था। भाषान्तरकार।

ही यूरपमें मान हुआ—"Francis'd Assisi या Imitation of Christ' के रचयिताको कौन पहचानता है? दूसरी तहके कविका चरमादर्श भी ऐसा ही था। और कृष्णके ईश्वरत्वपर उनका पूर्ण विश्वास था। इसीसे आपने पुरुषोत्तम भगवानको चतुर-चूड़ामणि बनाया है। आपने ही द्रोणकी हत्याका झूठा किस्सा गढ़ा है। जयद्रथवधमें सुदर्शनचक्रसे सूर्य्यको छिपाना, कर्ण अर्जुनके युद्धमें अर्ज्जुनके रथके पहियेको पृथिवीमें धसाना और घोड़ेको बिठाना इत्यादि कृष्णकी करामातोंके लिखनेवाले भी आप ही हैं। अब इतना ही कहना यथेष्ट है कि जरासन्ध-वध-पर्व्वाध्यायमें जो असंगत और व्यर्थकी चतुरता है वह क्षेपक है और इसके लिखनेवाले भी आप ही जान पड़ते हैं। आप ही उसके कर्त्ता हैं, तो फिर उद्देश्यके बारेमें प्रश्न करना व्यर्थ है। कृष्णको चतुर-चूड़ामणि बनाना ही आपका उद्देश्य है। अगर मुझे इन्हीं कथाओंका भरोसा होता, तो मैं इतना तूल न देता, पर अभी आपकी करतूत जरासन्धवधमें और भी है।

सातवां परिच्छेद ।
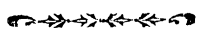
कृष्ण-जरासन्ध-संवाद ।

जरासन्धने आधी रातको यज्ञशालामें स्नातकवेशधारी तीनों मनुष्योंका आदर सत्कार किया । यहां यह कुछ भी नहीं लिखा है कि उन्होंने उसका आदर सत्कार ग्रहण किया या नहीं । पर दूसरी जगह लिखा है । मूलकी मरम्मत करनेके कारण ही यह गड़बड़ हुई है ।

शिष्टाचारके अनुसार जरासन्ध बोला "हे विप्रो ! मैं जानता हूं, स्नातक ब्राह्मण सभामें जानेके सिवा कभी माला (१) या चन्दन नहीं लगाते हैं । आप लोग कौन हैं ? आप लोगोंके कपड़े लाल हैं, शरीर फूलोंकी मालाओं और अनुलेपनसे सुशोभित है । भुजाओंपर ज्याके चिन्ह दीखते हैं । डीलडौलसे आप लोग साफ क्षत्रिय जान पड़ते हैं । पर आप अपनेको ब्राह्मण कहते हैं । सच कहिये आप लोग कौन हैं ? राजाके सामने सच

(१) लिखा है कि कृष्णादिने किसी मालीसे माला छीन ली थी । जिनके पास इतना ऐश्वर्य्य था और जो राजसूय करना चाहते थे उनके पास तीन मालाएं खरीदनेके लिये पैसे न हों, यह असम्भव है । जो कपटके जूएमें हारा हुआ राज्य धर्म्मके अनुरोधसे छोड़ बैठे थे वह तीन मालाएं जबरदस्ती लूट लेंगे, यह भी असम्भव है । असल बात यह है कि रचना दूसरी तरहकी है । दबंग क्षत्रियोंके वर्णनमें ऐसी बातें बड़ी सुन्दर लगती हैं ।

बोलनेमें ही प्रशंसा है । आप लोग किसलिये द्वारसे न आकर चेतक पर्व्वतके शृङ्गको तोड़कर बेखटके चले आये ? ब्राह्मण वचनोंसे अपनी वीरता प्रगट करते हैं, पर आप लोगोंने कार्य्यसे वह प्रकाश कर विरुद्धाचरण किया है । आप मेरे यहां आये, मैंने आपकी पूजा की, पर आप उसे क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ? कहिये, आप लोग यहां किसलिये आये हैं ?"

श्रीकृष्णने मधुर गम्भीर शब्दोंमें (१) उत्तर दिया—"हे राजन् ! तुम हमें स्नातक ब्राह्मण समझते हो, पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीनों वर्ण स्नातक-व्रत ग्रहण करते हैं । इनके विशेष और अविशेष दोनों नियम हैं । क्षत्रिय विशेष नियमी होनेसे सम्पत्तिशाली होते हैं । पुष्पधारी निश्चय ही श्रीमान् होता है इसीसे हमने पुष्प धारण किये हैं । क्षत्रिय बाहुबलसे ही बलवान् होता है वाग्बलसे नहीं, इसीसे उनके लिये प्रगल्भ वाक्योंका प्रयोग करना निर्द्धारित है ।"

यह बातें शास्त्रों और चतुरोंकीसी अवश्य हैं । पर कृष्णके योग्य नहीं—सत्यप्रिय धर्म्मात्माकीसी नहीं हैं । पर जिसने कपट-वेश धारण किया है, वह अवश्य ही ऐसी बातें कहेगा । कपट वेश यदि दूसरी तरहके कवियोंकी कल्पना हो, तो ऐसी बातोंके लिये वही दोषी होंगे । उन्होंने श्रीकृष्णको जैसा चतुर जतानेकी चेष्टा की है वैसा ही यह उत्तर है । जो हो, कृष्णका

(१) असली महाभारतमें कृष्ण का चंचल और रुष्ट होकर बोलते कभी नहीं देखा । शत्रु उनके वश योंही हो जाते थे ।

ब्राह्मण बताकर छल करनेकी कुछ जरूरत नहीं जान पड़ती है। यह तो स्वयं क्षत्रिय होना स्वीकार कर रहे हैं। केवल यही नहीं, वह खुले शब्दोंमें युद्धकी याचना कर रहे हैं, वह कहते हैं "विधाताने क्षत्रियोंकी बाहोंमें ही बल दिया है। हे राजन्! यदि तुम्हें हमारा बाहुबल देखनेकी इच्छा हो, तो आज ही निस्सन्देह देख लोगे। हे बृहद्रथनन्दन! धीर मनुष्य शत्रुओंके घर छिपकर और मित्रोंके घर खुले मैदान जाते हैं। हे राजन्! हम अपना काम निकालनेके लिये शत्रुके घर आकर उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते, हमारा यही नित्य व्रत है।"

एक बात भी गोल मठोल नहीं है, सब बातें साफ हैं। यहीं अध्याय समाप्त होता है और साथ ही कपट वेषका बखेड़ा भी मिट जाता है। मालूम हो गया कि यहां कपट वेषका कुछ प्रयोजन न था। इसके बादके अध्यायमें श्रीकृष्ण जो कुछ कहते हैं वह बिलकुल ही भिन्न प्रकारका है। अबतक उनका जो उन्नत चरित्र देखते आये हैं यह उन्हींके योग्य है। इन दोनों अध्यायोंके कृष्णचरित्रमें इतना बड़ा भेद है कि हम उन्हें दो मनुष्योंका लिखा कह सकते हैं।

कृष्णने जरासन्धके घरको शत्रुका घर कहा था। इसपर जरासन्ध कहता है "मैंने कब तुम्हारे साथ शत्रुता की या तुम्हारी बुराई की, यह मुझे याद नहीं है। फिर विना अपराध तुम मुझे अपना शत्रु क्यों समझते हो?"

इसपर श्रीकृष्णने जरासन्धके साथ जो असली झगड़ा था

उसकी बात कही। अपने झगड़ेकी चर्चा नहीं की। कृष्ण अपने झगड़ेके कारण किसीसे शत्रुता नहीं कर सकते क्योंकि वह समदर्शी थे, शत्रु मित्रको एक दृष्टिसे देखते थे सब लोगोंका यही विश्वास है कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंके मित्र और कौरवोंके शत्रु थे। पर वास्तवमें वह धर्म्मके मित्र और अधर्म्मके शत्रु थे। उनको किसीका पक्षापक्ष नहीं था। अच्छा, अभी यह बात रहे। अभी यहां यह देखना है कि कृष्णने उपयाचक हो अपना परिचय जरासन्धको दिया, पर अपने झगड़ेके कारण उसे शत्रु नहीं समझा। बात यह है कि मनुष्यजातिका जो शत्रु है वही कृष्णका शत्रु है। क्योंकि आदर्श पुरुष सब जीवोंमें ही अपनेको देखते हैं। उनका आत्मज्ञान इसके सिवा दूसरा नहीं है। इसीसे जरासन्धके प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने अपनी बात न कहकर सर्व्व साधारणकी बात कही थी। उन्होंने कहा कि तुमने महादेवके आगे बलि देनेके लिये राजाओंको कैद कर रखा है। इससे हमलोग युधिष्ठिरकी ओरसे तुम्हारे पास आये हैं। जरासन्धको समझानेके लिये श्रीकृष्ण और भी खुलासा कर कहते हैं "हे बृहद्रथनन्दन, हम लोगोंको भी *तुम्हारे पापसे पापी होना पड़ेगा, क्योंकि हम लोग धर्माचारी और धर्म्मरक्षामें समर्थ हैं।"*

पाठक उक्त वाक्योंकी ओर विशेष ध्यान दें। इसीसे उन्हें विशेष अक्षरोंमें दे दिया है। यह बात पुरानी होनेपर भी बड़ी गूढ़ है। जो धर्म्मकी रक्षामें और पापके दमनमें समर्थ होकर

भी कुछ नहीं करता वह उस पापका सहकारी है। इसलिये इस लोकमें शक्तिके अनुसार पाप रोकनेका प्रयत्न न करना अधर्म्म है। "मैं तो कुछ पाप करता नहीं, दूसरे करते हैं इसमें भला मेरा क्या दोष ?" जो ऐसा सोचकर निश्चिन्त रहते हैं वह भी पापी हैं। धर्म्मात्मा लोग भी बहुधा यही सोचकर कानोंमें तेल डाले बैठे रहते हैं। इसलिये संसारमें जो सब महात्मा उत्पन्न होते हैं वह धर्म्मरक्षा और पापनिवारण-का व्रत ग्रहण करते हैं। शाक्यसिंह, ईसामसीह आदि इसके उदाहरण हैं। यह वाक्य ही उनके जीवनचरित्रका मूल मन्त्र है। श्रीकृष्णका भी वही व्रत था। यह महावाक्य स्मरण रखे बिना उनका जीवनचरित्र समझमें नहीं आवेगा। जरासन्ध, कंस और शिशुपालका वध, महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंकी सहायता आदि कृष्णके कार्य्य इसी मूल मन्त्रके सहारे समझमें आवेंगे। इसे ही पुराणवालोंने "पृथिवीका भार उतारना" कहा है। ईसा मसीहने किया हो, बुद्धने किया हो, चाहे कृष्णने ही किया हो, इस पापनिवारण व्रतका ही नाम धर्म्मप्रचार है। धर्म्मप्रचार दो तरहसे हो सकता है और होता है। एक तो वचनोंसे अर्थात् धर्म्मोपदेश करके और दूसरा कार्यसे अर्थात् धर्माचरण करके। ईसामसीह, शाक्यसिंह और कृष्णने इन दोनोंसे ही काम लिया था। पर शाक्यसिंह और मसीहका धर्म्मप्रचार उपदेशप्रधान था और कृष्णका कार्य्यप्रधान। इसमें कृष्णकी प्रधानता है क्योंकि कहना सहज, पर करना कठिन होनेपर भी अधिक फल देनेवाला

है । जो केवल मनुष्य हैं उनसे यह भली भांति हो सकता है या नहीं, यह विचारनेका समय अभी नहीं है ।

यहां एक बातका विचार हो जाना अच्छा है। कृष्णने कंस और शिशुपालको मारा, यह मैं कह चुका हूं । और यह भी कहता हूं कि वह जरासन्धको मारनेके लिये आये हैं । अब प्रश्न यह है कि क्या पापियोंको मारना आदर्श मनुष्यका काम है ? जो समदर्शी हैं, सब जीवोंको एक दृष्टिसे देखते हैं, वह पापात्माको भी अपना समझ उसकी भलाई क्यों नहीं चाहेंगे ? यह सच है कि जगत्‌में पापियोंके रहनेसे जगत्‌का कल्याण नहीं है, पर क्या उनको मार डालनेके सिवा जगत्‌के उद्धारका और कुछ उपाय नहीं है ? पापियोंको पापसे रोककर धर्म्ममें लगाना क्या मार डालनेसे अच्छा उपाय नहीं है ? इससे जगत् और पापी दोनोंका ही एक साथ कल्याण होगा । आदर्श मनुष्यको क्या यही करना उचित नहीं था ? मसीह, शाक्यसिंह और चैतन्यने तो इसी तरह पापियोंके उद्धारकी चेष्टा की थी ।

इसके दो उत्तर हैं । पहला तो यह कि कृष्णचरित्रमें इस धर्म्मका भी अभाव नहीं है । पर जैसा क्षेत्र था वैसा फल हुआ । कृष्णने इस बातकी उचित चेष्टा की थी जिसमें दुर्योधन और कर्ण मारे न जाकर धर्म्मके पथसे चलें और उनका राज्य बना रहे । इस बारेमें उन्होंने कहा भी था कि पुरुषार्थसे जो हो सकता है वह मैं कर सकता हूं, पर दैव मेरे अधीन नहीं है । कृष्ण मनुष्यकी शक्तिसे ही काम लेते थे । जो काम साधार-

णतः मनुष्यकी शक्तिके बाहर था उसके लिये प्रयत्न करके भी वह कभी कभी कृतकार्य्य नहीं होते थे। शिशुपालके भी सौ अपराध उन्होंने क्षमा किये थे। इस क्षमाकी बात अलौकिक उपन्यासके घटाटोपके नीचे आ गयी है। इसका तात्पर्य्य यथास्थान बताऊंगा। कंसवधकी कथा पहले बता चुका हूं।

पाइलेटको (१) क्रिस्तान बनाना मसीहके लिये जितना सम्भव था कंसको धर्म्मपथपर लाना कृष्णके लिये उतना ही था। जरासन्धके बारेमें भी यही बात कही जा सकती है। तोभी इस विषयमें कृष्ण और जरासन्धकी कुछ बातचीत भी हुई थी।

जरासन्ध श्रीकृष्णसे क्या धर्म्मोपदेश सुनता, उसने स्वयं उन्हें सुनाया था। जैसे—

"देखो, धर्म्म और अर्थकी विकृतिसे ही मनमें पीड़ा होती है, परन्तु जो क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर धर्म्मज्ञ होकर भी निरपराध लोगोंका धर्म्मार्थ घात करता है उसका यहां भला नहीं होता है और वहां नरकमें जाता है, इसमें सन्देह नहीं।" इत्यादि इन मौकोंपर धर्म्मोपदेशसे कुछ नहीं होता है। जरासन्धको ठीक राहपर लानेका उपाय नहीं था, यह मेरी बुद्धिमें नहीं आता है। मनुष्य-शक्तिके बाहर कुछ कर दिखानेका ढोल पीटनेसे

---

(१) Pontius Pilate—यह जूडियाका रोमन गवर्नर था। इसीकी आज्ञासे मसीहका विचार हुआ और उसे प्राणदण्ड मिला था। भाषान्तरकार

रंग कुछ जम सकता था। और धर्मप्रचारक लोग तो बराबर ऐसा करते हैं, पर श्रीकृष्ण इसके विरोधी थे। उन्होंने भूत उतार या रोग चङ्गा कर या जादूके जोरसे धर्मका प्रचार नहीं किया और न अपनेको ईश्वर ही सिद्ध किया।

हां इतना समझ सकता हूं कि जरासन्धको मार डालना कृष्णका उद्देश्य नहीं था। धर्मकी रक्षा करना अर्थात् निर्दोष और दुःखित राजाओंको मुक्त करना ही उनका उद्देश्य था। वह जरासन्धको बहुत समझाकर बोले "मैं वसुदेवका पुत्र कृष्ण हूं, और यह दोनों वीर पाण्डुके पुत्र हैं। हम तुम्हें युद्धके लिये ललकारते हैं, अब राजाओंको छोड़ दो या युद्ध कर यमपुर सिधारो।" अर्थात् जरासन्ध राजाओंको छोड़ देता, तो कृष्ण उससे कुछ न कहते। पर जरासन्धने राजाओंको छोड़ना पसन्द नहीं किया। लाचार युद्धकी ठहरी। जरासन्ध लड़ाईके सिवा यों बातोंसे माननेवाला जीव न था।

दूसरा उत्तर यह है कि मसीह या बुद्धदेवने पतितोंके उद्धारके लिये जितना प्रयत्न किया उतना कृष्णने नहीं किया। यह मैं मानता हूं। ईसामसीह या शाक्यसिंहका व्यवसाय ही धर्म-प्रचार था। कृष्णने धर्मका प्रचार अवश्य किया, पर यह उनका व्यवसाय नहीं था। यह आदर्श पुरुषके आदर्श-जीवनके बहुतसे कार्योंमें एक है। कोई यह न समझ ले कि मैं ईसा और शाक्यसिंहके धर्मप्रचारकी निन्दा करता हूं। नहीं, मैं ईसा और शाक्यसिंह दोनोंको ही मनुष्यश्रेष्ठ समझ भक्ति करता

हूं और उनके चरित्रका मनन कर ज्ञान लाभ करनेकी आशा रखता हूं। धर्म्मप्रचारकका व्यवसाय (१) और व्यवसायोंसे मैं उत्तम मानता हूं। पर वह आदर्श मनुष्यका व्यवसाय नहीं हो सकता। क्योंकि वह आदर्श मनुष्य है। मनुष्यके करने योग्य जितने काम हैं वह सब ही उसके करने योग्य हैं। कोई काम उसका "व्यवसाय" नहीं अर्थात् और कामोंमें एक काम प्रधान नहीं हो सकता। ईसा या शाक्यसिंह आदर्श पुरुष नहीं, वह पुरुषश्रेष्ठ थे। मनुष्योंके श्रेष्ठ कार्य ही उनके योग्य थे और वही करके उन्होंने लोकहित साधन किया है।

मालूम होता है कि हमारे सब शिक्षित पाठकोंने यह बात नहीं समझी। इसका एक कारण है। बहुतेरे शिक्षित पाठक "आदर्श" का उल्था "आइडियल" (Ideal) करेंगे। उल्था दूषित नहीं होगा। पर बात यह है कि ईसाइयोंका भी एक आदर्श (Christian Ideal) है। ईसाइयोंका आदर्श पुरुष ईसा है। हमलोगोंने बचपनसे ईसाइयोंका साहित्य पढ़कर ईसाइयोंका आदर्श हृदयङ्गम कर लिया है। आदर्श पुरुषकी बात आते ही हमें वही आदर्श स्मरण आता है। जो आदर्श उस आदर्शसे नहीं मिलता उसे हम ग्रहण नहीं कर सकते। ईसा पतितोंका उद्धार करनेवाला था। किसी दुष्टको न उसने मारा और न मारनेकी उसमें सामर्थ्य थी। शाक्यसिंह या

(१) व्यवसायका अर्थ यहां वह काम है जिसमें हम सदा लगे रहते हैं।

चैतन्यमें हम यही गुण पाते हैं। इसलिये उन्हें आदर्श पुरुष माननेके लिये हम तैयार हैं। परन्तु श्रीकृष्णका नाम पतितपावन होनेपर भी इतिहासमें वह विशेषकर पतित-विनाशी ही प्रसिद्ध हैं। इससे उन्हें हम आदर्श पुरुषके नामसे एकाएक नहीं पहचान सकते हैं। अच्छा, अब हमें एक बात विचारनी चाहिये। यह ईसाई आदर्श क्या सचमुच मनुष्यताका आदर्श है? सब जातियोंका जातीय आदर्श क्या ऐसा ही होगा?

इस प्रश्नके साथ और एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या हिन्दुओंका भी जातीय आदर्श है? क्या हिन्दू आइडियल (Hindu Ideal) भी है? यदि है, तो वह कौन है? शिक्षित हिन्दुओंसे यदि कोई यह प्रश्न करे, तो वह अवश्य ही सिर खुजलाकर रह जायंगे। शायद कोई जटा वल्कलधारी शुभ्र-श्मश्रु सुशोभित व्यास, वसिष्ठादि ऋषियोंको पकड़कर खेंचेगा और कोई कह उठेगा, नहीं कुछ नहीं है। सचमुच कुछ नहीं है। अगर होता, तो हमारी ऐसी दुर्दशा क्यों होती? पर एक दिन था, जब हिन्दू पृथ्वीकी श्रेष्ठ जाति थी। वह आदर्श हिन्दू कौन है? इसका उत्तर जैसा मैंने समझा वह पहले ही दे चुका हूं। रामचन्द्रादि क्षत्रिय हिन्दुओंके पौने सोलह आने आदर्श हैं, पर पूरे सोलह आने श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। वही मनुष्यताके यथार्थ आदर्श हैं। ईसा आदिका वैसा होना सम्भव नहीं।

क्यों नहीं सम्भव है, वह बतलाता हूं। मनुष्यत्व क्या है, यह "धर्म्मतत्व" में समझा चुका हूं। मनुष्यकी सब वृत्तियोंका

पूर्ण विकाश और सामञ्जस्य ही मनुष्यत्व है। जिसकी वृत्तियोंका परम विकाश और सामञ्जस्य हुआ है वही आदर्श मनुष्य है। ईसामें यह बात नहीं है। कृष्णमें है। रोमका सम्राट् ईसाको यदि यहूदियोंका शासन-भार दे देता, तो क्या वह अच्छी तरह शासन कर सकता? कभी नहीं, क्योंकि राजकाजके लिये जिन वृत्तियोंकी आवश्यकता होती है उसकी वह वृत्तियां अनुशीलित नहीं हुई थीं। ऐसे धर्मात्मा शासनकर्त्ता हों, तो समाजका मंगल ही है। यह सब जानते हैं कि श्रीकृष्ण परम नीतिज्ञ थे, महाभारतमें वह वारंवार उत्तम नीतिज्ञ कहे गये हैं। उग्रसेन और युधिष्ठिर उनकी सलाह बिना राज्यशासनका कोई बड़ा काम नहीं करते थे। इस प्रकार श्रीकृष्णने स्वयं राजा न होकर भी प्रजाका बहुत कुछ हितसाधन किया था। जरासन्धके बन्दी राजाओंको छुड़वाना इसका एक उदाहरण है। अच्छा और सुनिये। अगर यहूदी रोमवालोंके अत्याचारसे दुःखी हो स्वाधीनताके लिये खड़े होते और ईसाको सेनापति बनाते, तो ईसाजी क्या करते? उनकी लड़नेकी न इच्छा थी और न शक्ति ही थी। वह यह कहकर चल देते कि "कैसरका पावना कैसरको दो। (१) कृष्णका भी झुकाव लड़ाईकी ओर नहीं था, पर धर्म्मार्थ युद्धके लिये वह सदा

(१) Give unto Ceaser what is Ceaser's due यह इसीका उलथा है। भाव "योग्यं योग्येन योजयेत्" है। भाषान्तरकार

तैयार रहते थे। युद्धमें वह सदा जयी होते थे। ईसा अशिक्षित पर कृष्ण सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। और गुणोंमें भी यही दशा थी। दोनों धार्म्मिक और धर्म्मज्ञ थे। इसलिये कृष्ण ही वास्तविक आदर्श मनुष्य थे। ईसाई आदर्श (Christian Ideal) से हिन्दू आदर्श (Hindu Ideal) श्रेष्ठ है।

ऐसा सर्व्वगुणसम्पन्न आदर्श मनुष्य कार्य्य विशेषमें जीवन अर्पण नहीं कर सकता है। ऐसा करनेसे और काम अच्छे कैंड नहीं उतरते हैं। मनुष्य चरित्रभेद, अवस्थाभेद और शिक्षाभेदके कारण भिन्न भिन्न कर्म्मों और भिन्न भिन्न साधनोंका अधिकारी है। आदर्श मनुष्यको सब तरहके लोगोंका आदर्श होना उचित है। इसलिये शाक्यसिंह, ईसा या चैतन्यकी तरह सन्यासी बनकर धर्म्मप्रचारको व्यवसाय बनाना श्रीकृष्णके लिये असम्भव था। कृष्ण संसारी, गृही, राजनीतिज्ञ, योद्धा, दण्डप्रणेता, तपस्वी, और धर्म्मप्रचारक थे। वह संसारी गृहस्थोंके, राजाओंके, योद्धाओंके, राजपुरुषोंके, तपस्वियोंके धर्म्मवेत्ताओंके और फिर सम्पूर्ण मनुष्योंके एक साथ ही आदर्श हैं। जरासन्ध आदिका वध आदर्श राजपुरुष और दण्डप्रणेताओंके अनुकरण योग्य है। यही हिन्दू आदर्श है। ईसाई और बौद्ध धर्म अधूरे हैं। उनके आदर्शको अपना आदर्श माननेसे हम सर्व्वाङ्गसुन्दर धर्म्मके आदर्श पुरुषको पहचान न सकेंगे।

पहचाननेकी बड़ी जरूरत हुई है, क्योंकि इसके भीतर एक और अचरजभरी बात है। क्या यूरपके ईसाई, क्या भारतवर्षके

हिन्दू सबही आदर्शके विपरीत कर्म्म कर रहे हैं। ईसाइयोंके आदर्श पुरुष विनीत, निरीह, निर्विरोधी और संन्यासी थे, पर आजकलके ईसाई ठीक इसके उल्टे हैं। यूरप इस समय ऐहिक-सुख-रत सशस्त्र योद्धाओंका विस्तृत शिविर मात्र बन गया है। इधर हिन्दूधर्म्मके आदर्श पुरुष सर्व्व कर्म्मकृत थे पर आजकलके हिन्दू सब कामोंमें निकम्मे हो गये हैं। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि दोनों देशवाले अपना अपना पुराना आदर्श भूल गये हैं। किसी समय दोनों देशोंमें ही अपने अपने आदर्शका अच्छा प्रभाव था। पुराने ईसाइयोंकी धर्म्मपरायणता और सहिष्णुता तथा हिन्दू राजा और राजपुरुषोंकी सर्व्वगुणवत्ता इसका प्रमाण है। जबसे हम हिन्दू अपने आदर्शको भूल गये और हमने कृष्णचरित्रको अवनत कर लिया तबसे हमारी सामाजिक अवनति होने लगी। जयदेवके कृष्णकी नकल करनेमें सब लग गये, पर महाभारतके कृष्णकी कोई याद भी नहीं करता है।

अब फिर उसी आदर्श पुरुषको जातीय हृदयमें बिठाना होगा। आशा है, इस कृष्णचरित्रसे इस काममें कुछ सहायता मिलेगी।

जरासन्धवधके सम्बन्धमें इन सब बातोंके कहनेकी जरूरत न थी। पर बातपर बात निकल ही आयी। यह बातें कहीं न कहीं कहनी ही पड़तीं। इसलिये पहलेसे कह रखनेमें लेखक और पाठक दोनोंका ही सुबीता है।

आठवां परिच्छेद ।

भीम-जरासन्धका युद्ध ।

महाभारतमें यहांतक तो श्रीकृष्ण विष्णु नहीं माने गये। न किसीने उन्हें विष्णु कह सम्बोधन किया और न विष्णु समझ उनसे बातचीत ही की। वह भी मनुष्यशक्तिके बाहर कुछ काम करते अबतक नहीं देखे गये। मैं यह बारबार कह चुका हूं कि वह विष्णुके अवतार हों चाहे न हों, पर उनका चरित्र साधारण तौरसे मनुष्यका सा है, देवताका सा नहीं।

पर अब वह ठौर ठौर विष्णु माने गये हैं। कोई विष्णु कहकर उन्हें सम्बोधन करता है और कोई विष्णु समझ उनकी उपासना करता है। वह भी अलौकिक शक्तिसे काम लेते देखे गये हैं। जो बातें पहले नहीं देखीं वह अब देखनेमें आती हैं। वह दोनों बातें आपसमें एक दूसरीके विरुद्ध हैं या नहीं?

यदि कोई कहे कि नहीं, क्योंकि जब दैवी शक्तिके विकाशका प्रयोजन नहीं होता है, तब काव्य या इतिहासमें मनुष्यभाव दिखाया जाता है और जब दैवी शक्तिका प्रयोजन होता है तब देवभाव दिखाया जाता है, तो मैं कहूंगा कि यह उत्तर ठीक नहीं। क्योंकि अनेक समय देवभावका प्रकाश व्यर्थ ही देखा जाता है। इस जरासन्धवधसे ही इसके दो एक उदाहरण देता हूं।

जरासन्धवधके बाद कृष्ण, भीम और अर्ज्जुन जरासन्धके

रथपर चढ़कर चले । यह रथ देवताओंका बनाया था । इसमें किसी वस्तुका अभाव न था । तोभी कृष्णने ख्वाहमख्वाह गरुड़का स्मरण किया । बस फिर क्या था, गरुड़जी तुरत आकर रथके सिरेपर बैठ गये । बस इसके सिवा गरुड़ने और कुछ नहीं किया । गरुड़जीकी वहां जरूरत न थी, पर कृष्णका विष्णुत्व सिद्ध करनेके लिये वह बुलाये गये । जरासन्धका वध करनेके समय दैवी शक्तिकी आवश्यकता नहीं हुई, पर रथपर चढ़नेके समय हो गयी !

युद्धके पहलेकी भी ऐसी ही एक कथा है । जरासन्धने लड़नेका पक्का इरादा कर लिया , तो कृष्णचन्द्र पूछते हैं—

“हे राजन् ! हम तीनोंमेंसे किसके साथ तुम लड़ना चाहते हो ? कहो, कौन लड़नेके लिये तैयार हो ?” इसपर जरासन्धने भीमसे लड़ना पसन्द किया । पर इसके दो पंक्ति आगे लिखा है कि कृष्णने जरासन्धका स्वयं वध नहीं किया, क्योंकि ब्रह्माकी आज्ञा नहीं थी और वह यादवोंका अवध्य था ।

ब्रह्माकी क्या आज्ञा थी, यह महाभारतमें नहीं है । पीछेके ग्रन्थोंमें है । इससे क्या यह नहीं मालूम होता कि यह मूल महाभारतमें पीछे जोड़ा गया है ? और इसका उद्देश्य क्या कृष्णको चुपके चुपके विष्णु बनाना नहीं है ? पहली तहमें कृष्ण और विष्णुका कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है, क्योंकि कृष्णचरित्र मनुष्यका चरित्र है, देवताओंका नहीं । दूसरी तहवाले कृष्णोपासक कवियोंके हाथोंमें यह आया, तो उन्हें यह

बड़ी भारी भूल मालूम हुई। पीछेके कवियोंकी कल्पनाएं उन्हें मालूम थीं। बस, उन्होंने तुरत अभाव पूरा कर दिया।

इसी प्रकार कैदसे छूटे हुए राजा जहां कृष्णको धर्म्मरक्षाके लिये धन्यवाद देते हैं, वहां भी व्यर्थ ही राजाओंसे कृष्णको "विष्णु" कहलाया गया है। इसके पहले वह 'विष्णु या विष्णु अर्थके किसी नामसे नहीं पुकारे गये। अगर पुकारे गये होते तो मैं मान लेता कि वह विष्णु माने जाते थे। इसीसे राजाओंने भी उन्हें विष्णु कहकर सम्बोधन किया था। यदि यहां कृष्ण कुछ ऐसा अलौकिक कार्य्य कर डालते जो देवताओंके सिवा मनुष्योंसे नहीं हो सकता था, तो मैं यहां "विष्णु" शब्दका प्रयोग उचित मान लेता। पर यहां वह सब कुछ नहीं है। सबके सामने भीमने जरासन्धको मारा था। कृष्णने कुछ नहीं किया। हां, उनकी सलाहसे काम जरूर हुआ था। पर कैदी राजा इस बारेमें कुछ नहीं जानते थे। इसलिये राजाओंका अचानक कृष्णको विष्णु कह बैठना कदापि ऐतिहासिक या मौलिक नहीं हो सकता। पर इस कथनकी संगति, स्मरण करते ही गरुड़के आनेसे और ब्रह्माकी आज्ञा स्मरण होनेसे हो सकती है। पर जरासन्धवधके किसी अंशसे इसका मेल नहीं है। यह तीनों बातें एक ही मनुष्यकी करतूत हैं। और तीनों ही बेजड़ है। शायद पाठकोंने इसे भली भांति समझ लिया होगा।

जिन्होंने नहीं समझा उन्हें कृष्णचरित्रकी आलोचनासे और कुछ फल नहीं होगा। क्योंकि इस बारेमें और किसी प्रमाणके

मिलनेकी सम्भावना नहीं है। और जिन्होंने समझ लिया, उनसे प्रश्न है कि जब कृष्णका विष्णु होना क्षेपक है, तब जरासन्ध-वध-पर्व्वाध्यायमें कृष्णका कपटाचार क्यों नहीं क्षपक है? दोनों बातें एक ही प्रमाणपर निर्भर हैं।

यह दोनों बातें मिलाकर देखनेसे ठीक मालूम हो जाता है कि जरासन्धवधपर्व्वाध्याय पीछेके कवियोंने लिखा है। इसीसे उसमें असंगत बातें पायी जाती हैं। इसमें दो कवियोंकी लिखा-वट है, इसका और एक प्रमाण देता हूं।

यह मैं पहले कह आया हूं कि कृष्णने जरासन्धका पूर्व्व वृत्तान्त युधिष्ठिरसे कहा था। कंसको मार डालनेके कारण जरा-सन्धसे जो विरोध खड़ा हुआ था उसकी भी बात उस समय उन्होंने कही थी। वह अंश उद्धृत कर चुका हूं। वह भी सुन लीजिये—

"वैशम्पायन बोले; बृहद्रथ राजा दोनों भार्य्याओंके संग तपो-वनमें बहुत दिन तप करके स्वर्ग चला गया। वह लोग जरा-सन्ध और चण्डकौशिकके वर पाकर निष्कण्टक राज करने लगे। उसी समय भगवान वासुदेवने कंसका संहार किया। कंसको मार डालनेके कारण कृष्ण और जरासन्धमें शत्रुता खड़ी हो गयी।"

यह सब तो कृष्ण विस्तारपूर्व्वक कह चुके हैं, फिर वही बात क्यों दुहरायी गयी? इसका कारण है। मूल महाभारतके प्रणेता अद्भुत रसके प्रेमी नहीं हैं उन्होंने कृष्णसे अलौकिक घटनाओंका वर्णन नहीं कराया। यह बड़ी भारी कसर थी, अब वह पूरी कर दी गयी। वैशम्पायन कहते हैं—

"महाबली पराक्रमी जरासन्धने पहाड़ोंके बीचमें कृष्णको मारनेके लिये एक बड़ी गदा निन्नानबे वार घुमाकर फेंक दी। वह गदा मथुराके अद्भुत कर्मवीर वासुदेवसे निन्नानबे योजन दूर जा गिरी। पुरवासियोंने कृष्णसे गदाके गिरनेकी बात जाकर कही। उसी समयसे मथुराके समीपका वह स्थान जहां गदा गिरी थी गदावसानके नामसे प्रसिद्ध हुआ।"

अब भी जिनका यह विश्वास हो कि समस्त वर्तमान जरासन्धवधपर्व्वाध्याय मूल महाभारतके अन्तर्गत है, एक ही व्यक्तिका रचा है और कृष्णादि सचमुच कपट रूप बनाकर जरासन्धके पास गये थे, उनसे निवेदन है कि वह हिन्दुओंके इतिहास पुराणोंमें ऐतिहासिक तत्व ढूंढ़नेके बदले किसी और शास्त्रकी आलोचना करें। क्योंकि इधर कुछ नहीं मिलेगा।

अब जरासन्धकी शेष बातें लिखकर इस पर्व्वाध्यायका उपसंहार करूंगा। यह बातें बड़ी सहज हैं।

जरासन्धने युद्धके लिए भीमको पसन्द किया। पीछे वह "यशस्वी ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन करा क्षात्रधर्म्मके अनुसार वर्म्म और किरीट उतारकर" भिड़ गया। "उस समय पुरवासी, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वनिता, वृद्ध सब युद्ध देखनेको वहां इकट्ठे हुए। युद्धस्थल दर्शकोंसे परिपूर्ण था। चौदह दिनतक युद्ध हुआ।" (१) चौदहवें दिन "वासुदेवने जरासन्धको थका हुआ

(१) यदि सत्य हो तो जरूर ही चौदह रोजतक लगातार युद्ध नहीं हुआ होगा।

देख भीमकर्म्मा भीमसेनसे पुकारकर कहा, हे कौन्तेय! थके हुए शत्रुको पीड़ित करना उचित नहीं। अधिक सतानेसे मर जायगा। अब इसे मत सताओ। हे भरतर्षभ! इसके साथ बाहुयुद्ध करो।" अर्थात् जिस शत्रुका वध धर्म्मयुद्धमें करना है उसे भी सताना न चाहिये।

पर भीमने सताकर जरासन्धको मारा। भीमका धर्म्मज्ञान कृष्णका सा नहीं हो सकता।

जरासन्धके मारे जानेपर कृष्ण और अर्ज्जुनने बन्दी राजाओंको मुक्त किया, जरासन्धवधका यही मुख्य उद्देश्य था। इसलिये राजाओंको मुक्त कर उन्होने और कुछ नहीं किया, और वह सीधे अपने घर चले गये। वह Annexationist (१) नहीं थे, पिताके अपराधपर पुत्रका राज्य नहीं छीनते थे। उन्होंने जरासन्धको मारकर उसके पुत्र सहदेवको राजसिंहासनपर बिठा दिया। सहदेवने कुछ भेंट चढ़ायी। वह उन्होंने ले ली। कैदसे छूटे हुये राजाओंने कृष्णसे पूछा "हम सेवकोंको क्या आज्ञा होती है?"

कृष्णने कहा "प्रजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, आप उन्हीं साम्राज्य चाहनेवाले धर्म्मात्माकी सहायता कीजिये।"

युधिष्ठिरको प्रधान मानकर धर्म्मराज्य स्थापित करना इस समय कृष्णके जीवनका उद्देश्य हो रहा है। इसीसे वह पद पदपर इसका उद्योग कर रहे हैं।

(१) हड़पू अर्थात् दूसरेका राज्य हड़पनेवाला। भाषान्तरकार।

इस जरासन्धवधमें कृष्णचरित्रकी विशेष महिमा प्रगट हुई है, पर पीछेके कवियोंकी दुष्टताके मारे वह चौपट हो गयी। इसके बाद शिशुपालवध है। उसमें तो और भी लबड़धोंधों हुई है।

नवां परिच्छेद।

अर्घाभिहरण।

युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ आरम्भ हुआ। देश देशान्तरोंके राजाओं, ऋषियों तथा और और लोगोंसे सारा नगर भर गया। पाण्डवोंने अपने नातेदारोंको अलग अलग एक एक काम सौंप दिया जिसमें यज्ञ भली भांति सम्पन्न हो जाय। भोजन विभागका अधिकारी दुःशासन हुआ, सेवा शुश्रूषाका काम सञ्जयको दिया गया। रत्नोंकी रक्षा और दानदक्षिणा कृपाचार्य्यके जिम्मे हुई, भेंट पूजा लेना दुर्योधनके हाथमें रहा। इसी प्रकार सब लोग एक एक कामपर नियत किये गये। श्रीकृष्णको कौनसा काम मिला था? ब्राह्मणोंके चरण धोनेका काम।

यह बात समझमें नहीं आयी। भृत्योंका काम श्रीकृष्णको क्यों मिला? उन योग्य क्या और कुछ काम नहीं था? या ब्राह्मणोंके पैर धोना ही सबसे बड़ा काम है? क्या आदर्श पुरुष होनेके कारण वह रसोइया ब्राह्मणोंके भी पैर धोते फिरेंगे?

अगर ऐसा ही हो तो मैं मुक्तकण्ठसे कहूंगा कि वह आदर्श पुरुष नहीं हैं।

इस बातकी मरम्मत कई तरहसे की जा सकती है। ब्राह्मणों तथा आजकलके लोगोंका कहना है कि श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंका गौरव बढ़ानेके लिये ही सब काम छोड़कर उनके पैर धोना स्वीकार किया था। पर यह बात मानने योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण और क्षत्रियोंकी तरह ब्राह्मणोंका यथायोग्य सम्मान अवश्य ही करते थे, पर उन्हें ब्राह्मणोंका गौरव बढ़ानेमें विशेष तत्पर कहीं नहीं देखा। बल्कि कहीं कहीं उन्हें इसके विपरीत करते देखा है। यदि वनपर्व्वका दुर्व्वासाका आतिथ्य वृत्तान्त मौलिक महाभारतके अन्तर्गत समझ लिया जाय तो मानना होगा कि उन्होंने ब्राह्मण देवताओंको पाण्डवोंके आश्रमसे निकाल बाहर किया था। वह बड़े साम्यवादी थे। गीताका धर्म्म यदि कृष्णका कहा हुआ हो, तो ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, और चाण्डालको एक तरह देखना चाहिये। फिर कब सम्भव है कि वह ब्राह्मणोंका गौरव बढ़ानेके लिये उनके पांव धोते?

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

कोई यह कह सकता है कि कृष्ण आदर्श पुरुष थे, इससे आदर्श नम्रता दिखानेके लिये उन्होंने यह काम किया था। अगर यही बात हो, तो केवल ब्राह्मणोंके ही पैर क्यों धोते?

वयोवृद्ध क्षत्रियोंके क्यों नहीं धोये? और फिर ऐसी नम्रता आदर्श नम्रता मानी भी नहीं जा सकती है। यह नम्रताका दुरुपयोग है।

और कोई यह कहे कि कृष्णचरित्र समयके उपयोगी है। उस समय ब्राह्मणोंपर लोगोंकी बड़ी भारी भक्ति थी और कृष्ण भी बड़े धूर्त्त थे। इससे उन्होंने नामके लिये अलौकिक ब्रह्म-भक्तिका यह ढोंग रचा था।

मैं कहता हूं कि यह सब कुछ नहीं, यह श्लोक ही क्षेपक है। क्योंकि इसी शिशुपालवध-पर्व्वाध्यायके चौआलीसवें अध्यायमें देखता हूं कि कृष्णने भूदेवोंके चरण न धोकर क्षत्रि-योचित और वीरोचित कार्य्य ही किया था। उसमें लिखा है "महाबाहु वासुदेवने शङ्ख, चक्र, और गदा धारण कर यज्ञकी समाप्तितक रक्षा की।" शायद यह दोनों बातें ही प्रक्षिप्त हो सकती हैं। इसके लिये विशेष आन्दोलनकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। क्योंकि यह कुछ वैसी गुरुतर बात नहीं है। कृष्णचरित्रके विषयमें ऐसी बातें महाभारतमें बहुत मिलती हैं जो एक दूसरेके विरुद्ध हैं। यही दिखलानेके लिये इसकी चर्चा यहां कर दी। कई मनुष्योंके हाथ लगनेके कारण ही यह गड़बड़झाला है।

इस राजसूय यज्ञकी महासभामें कृष्णने शिशुपाल नामके प्रबल पराक्रान्त महाराजको मारा था। पाण्डवोंके साथ रह-कर कृष्णने बस यहीं अस्त्र धारण किया था। मैं खाण्डवदाहका युद्ध मौलिक नहीं मानता हूं, यह पाठकोंको शायद याद होगा।

शिशुपालवधपर्व्वाध्यायमें बड़ा भारी ऐतिहासिक तत्व निहित है। ऐसा ऐतिहासिक तत्व महाभारतमें और कहीं नहीं है। यह हम देख चुके हैं कि जरासन्धके पहले श्रीकृष्ण मौलिक महाभारतमें कहीं भी देवता या अवतार नहीं माने गये हैं। जरासन्धवधमें वह दबी जबानसे ईश्वर कहे गये हैं। इसी शिशुपालवधमें ही उस समयके लोगोंने उन्हें पहले पहल ईश्वर माना है। कुरुवंशके उस समयके नेता भीष्म ही इसके प्रचारक थे।

अब इतिहासकी दृष्टिसे यह स्थूल प्रश्न होता है कि जब श्रीकृष्ण अपने जीवनके पहले अंशमें ईश्वर नहीं माने गये, तब वह पहले पहल कब माने गये? क्या वह अपनी जीवित दशामें ही ईश्वर माने गये थे? शिशुपालवधके समय तथा उसके बाद महाभारतमें तो कई जगह वह ईश्वर माने गये हैं। पर यह सब प्रक्षिप्त भी हो सकते हैं। इस प्रश्नके उत्तर देनेमें कौनसा मत माना जाय ?

इस बातका उत्तर अभी कुछ नहीं दिया जायगा। धीरे धीरे आपही इसका उत्तर मिल जायगा। हां, कहना यह है कि शिशुपालवध-पर्व्वाध्याय यदि मौलिक महाभारतका अंश हो तो यह समझा जा सकता है कि कृष्ण उस समय ईश्वर माने जा रहे थे। उस समय उनके पक्षी और विपक्षी दोनों ही थे। उनके पक्षवालोंमें भीष्म और पाण्डव ही प्रधान थे। विपक्षियोंका एक नेता शिशुपाल था। शिशुपालवधके वृतान्तका सारांश यह है कि उस सभामें भीष्मादिने कृष्णको प्रधान बनाना चाहा।

शिशुपालने इसका विरोध किया। इसपर बड़ा झगड़ा हुआ चाहता था। इतनेमें श्रीकृष्णने उसे मार डाला। बस वहीं सारा बखेड़ा तय हो गया। यज्ञका विघ्न नाश होनेसे यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया।

इन बातोंमें सचमुच कुछ ऐतिहासिकता है या नहीं, यह विचारनेके पहले देखना होगा कि यह शिशुपालवधपर्व्वाध्याय मौलिक है या नहीं? इसका उत्तर सहज नहीं है। शिशुपाल-वधके साथ महाभारतकी स्थूल घटनाओंका कुछ विशेष सम्बन्ध है, यह नहीं कहा जा सकता है। पर सम्बन्ध न होनेसे यह क्षेपक हो जायगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। यह सत्य है कि इसके पहले कई ठौर शिशुपाल नामके एक प्रबल पराक्रान्त राजाकी कथा मिलती है। पर पीछे नहीं। पाण्डवोंकी सभामें कृष्णके हाथसे वह मारा गया। इसके विरुद्ध कोई कथा नहीं मिलती है। अनुक्रमणिकाध्याय और पर्व्वसंग्रहाध्यायमें शिशु-पालवधकी कथा है। और रचनाप्रणाली भी देखनेसे वह मौलिक महाभारतका अंश जान पड़ती है। मौलिक महाभा-रतके और कई अंशोंकी तरह नाटकांशमें इसका बड़ा उत्कर्ष है। इसलिये इसे अलौकिक समझकर छोड़ भी नहीं सकता हूं।

पर साथ ही इसके यह भी साफ दिखायी देता है कि जरासन्धवध-पर्व्वाध्यायमें जैसे दो तरहकी लिखावट है, वैसे ही इसमें भी है। बल्कि उससे इसमें अधिक अन्तर है। इससे मुझे यह सिद्धान्त निकालना पड़ता है कि शिशुपालवध स्थूल-

रूपसे मौलिक तो है, पर इसमें दूसरी तहके कवियोंकी या पीछेके लेखकोंकी कलम अच्छी तरह चल गयी है।

अब शिशुपालवधकी कथा पूरे तौरसे कहता हूं।

बंगालमें यह चाल है कि जब कभी किसी बड़े आदमीके घर सभा होती है, तो उसमें जो सबसे प्रधान होता है उसकी पूजा फूलचन्दनसे की जाती है। इसका नाम "मालाचन्दन" है। आजकल भी यह होता है। पर अब गुण देखकर नहीं कुल देखकर 'मालाचन्दन' दिया जाता है! कुलीनके घरमें गोष्ठी-पतिको ही मालाचन्दन दिया जाता है क्योंकि कुलीनोंके लिये गोष्ठीपतिका वंश ही बड़ा मान्य है। (१) कृष्णके समय और चाल थी। उस समय सभाके सर्व्वप्रधान व्यक्तिको अर्घ दिया जाता था। कुल नहीं, गुण देखकर मान होता था।

युधिष्ठिरकी सभामें अर्घका उपयुक्त पात्र कौन था? भारत-वर्षके समस्त राजा उसमें उपस्थित हुए थे। उनमें सबसे श्रेष्ठ कौन था? बस यही विचारना है। भीष्मने कहा "कृष्ण ही सर्व्वश्रेष्ठ हैं। बस उन्हें ही अर्घ दो।"

---

(१) बंगालमें कुलीन ब्राह्मणोंका बड़ा मान है। अन्यान्य ब्राह्मण कुलीनको ही अपनी बेटियां देना चाहते हैं। इससे एक एक कुलीनके दस दस बारह बारह व्याहतक हो जाते हैं। जिसने कई बेटियां कुलीनोंके घर व्याही हैं वह गोष्ठीपति कहाता है, क्योंकि कुलीनोंको कन्या देनेसे उसका गौरव बढ़ जाता है।

भीष्मने यह बात श्रीकृष्णको देवता समझकर कही थी, यह कुछ प्रगट नहीं होता है। उन्होंने कृष्णको "बल, तेज, और पराक्रममें श्रेष्ठ" समझकर ही अर्घके योग्य बताया। क्षात्रगुणमें वह क्षत्रियोंसे श्रेष्ठ थे, इसीसे यह उन्होंने अर्घ देने कहा था। इससे जाना जाता है कि भीष्मने श्रीकृष्णका मनुष्यचरित्र ही देखा था।

इस कथाके अनुसार कृष्णको अर्घ दिया गया और उन्होंने उसे ग्रहण किया। शिशुपालसे यह नहीं देखा गया। उसने लगेहाथ भीष्म, कृष्ण और पाण्डवोंको फटकारते हुए एक व्याख्यान झाड़ दिया। यह व्याख्यान यदि विलायतकी पार्लामेण्ट महासभामें होता तो उसकी जैसी चाहिये वैसी कदर होती। व्याख्यानका पहला भाग तो बड़ा विशुद्ध और तीव्र है। उसने कहा कि कृष्ण राजा नहीं हैं, फिर इतने राजाओंके रहते उन्हें अर्घ क्यों दिया गया? अगर वृद्ध समझकर कृष्णकी पूजा की गयी तो उसके बाप वसुदेवकी पूजा क्यों नहीं हुई? क्या अपना नातेदार और हित चाहनेवाला समझकर तुमने पूजा की है? तो फिर ससुर द्रुपदके रहते उसकी पूजा क्यों की? कृष्णको क्या आचार्य्य (१) समझा है? फिर द्रोणाचार्य्यके रहते उसकी पूजा क्यों? क्या ऋत्विक् समझकर उसे अर्घ

(१) कृष्णने अभिमन्यु, सात्यकि, आदि महारथियोंको तथा कभी कभी स्वयं अर्ज्जुनको भी युद्धविद्या सिखायी थी।

दिया है? तो वेदव्यासके (१) रहते उसे क्यों? इत्यादि इत्यादि।

शिशुपाल बोलते बोलते और वक्ताओंको तरह जोशमें आ गया। फिर वह तर्क (Logic) छोड़कर अलङ्कारमें आ गया, विचार छोड़कर गालियां बकने लगा। पाण्डवोंको छोड़कर कृष्णपर हाथ साफ करने लगा। उसने पहले तो "प्रियचिकीर्षु", "अप्राप्तलक्षण" आदि कहकर मोठी चुटकी ली, पीछे "धर्म्मभ्रष्ट", "दुरात्मा" आदितक कह डाला। अन्तमें घी चाटनेवाले कुत्ते, और ब्याहे हिजड़े (२) तककी नौबत पहुंची।

क्षमाके परमाधार, परम योगी आदर्श पुरुष श्रीकृष्णने सुनकर कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्हें ऐसी शक्ति थी जिससे वह उसी समय उसका कचूमर निकाल देते। यह आगे चलकर पाठकों-को मालूम हो जायगा। कृष्णने पहले कभी ऐसे कड़े वचन नहीं सुने थे। पर तोभी उन्होंने इस तिरस्कारकी ओर भ्रूक्षेप भी नहीं किया। यूरपवालोंकी तरह उन्होंने पुकारकर नहीं कहा "शिशुपाल! क्षमा बड़ा धर्म्म है, इसलिये मैं तुझे क्षमा करता हूं।" चुपचाप उन्होंने उसे क्षमा किया।

युधिष्ठिरने निमंत्रित राजाओंको क्रुद्ध होते देखकर उनकी सान्त्वना की। क्योंकि घरका मालिक ऐसा करता हो है। वह

(१) इससे सिद्ध हुआ कि कृष्ण प्रसिद्ध वेदज्ञ थे।

(२) कृष्ण निःसान्त नहीं थे, पर लम्पट जितेन्द्रियोंको यही कहकर गालियां देते हैं।

मीठे वचनोंसे उसे समझाने लगा। बूढ़े भीष्मका मिजाज कड़ा था। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने साफ साफ कह दिया "कृष्णकी पूजा जिसे नहीं भायी उसे समझाना या उसकी खुशामद करना उचित नहीं है।"

फिर कुरु-वृद्ध भीष्म अर्थयुक्त वाक्योंसे कृष्णके पूजे जानेके कारण बताने लगे। उन वाक्योंका मर्म्म यहां देता हूं। पर इनके भीतर एक रहस्य है, वह पहले बता देता हूं। कई वाक्योंका यही तात्पर्य्य है कि मनुष्योंके विशेषकर क्षत्रियोंके जो गुण हैं उनमें कृष्ण ही सबसे श्रेष्ठ हैं। इससे वह अर्घके योग्य हैं। यहां कुछ वाक्य ऐसे भी हैं जिनमें भीष्म कहते हैं कि कृष्ण स्वयं जगदीश्वर हैं, इस हेतु वह सबके पूजनीय हैं। मैं दोनों प्रकारके वाक्य अलग अलग लिखता हूं, पाठक उनका अभिप्राय समझनेकी चेष्टा करें। भीष्मने कहा:—

"राजाओंको इस महासभामें ऐसा एक भी राजा दिखायी नहीं देता जिसे कृष्णने पराजय न किया हो?"

यह तो हुआ मनुष्यत्ववाद। अब देवत्ववाद सुनिये।

"अच्युत केवल हमारे ही पूज्य नहीं, वह तीनों लोकोंके पूज्य हैं। उन्होंने युद्धमें असंख्य क्षत्रियोंको पराजित किया है और अखण्ड ब्रह्माण्ड उनमें ही प्रतिष्ठित है।"

फिर मनुष्यत्ववाद लीजिये—

"कृष्णने जन्मसे जो सब काम किये हैं लोगोंने वह मुझसे बारंबार कहे हैं। उनके बालक होनेपर भी, हम उनके कामोंके

आलोचना करते रहते हैं। कृष्णकी शूरता, वीरता, कीर्त्ति और विजय आदि सब जानकर......"

साथ ही देवत्ववाद भी देखिये—

"प्राणियोंको सुख देनेवाले जगन्मान्य उस अच्युतकी पूजा करने कहा है।"

अब फिर स्पष्ट मनुष्यत्व लीजिये—

"कृष्णके पूज्य होनेमें दो कारण हैं, वह निखिल वेदवेदाङ्गके पारदर्शी और अधिक बलशाली हैं इसलिये मनुष्यलोकमें उनसा बलवान और वेदवेदाङ्गका जाननेवाला दूसरा मनुष्य मिलना बड़ा कठिन है। दानदाक्षिण्य, शास्त्रज्ञान, शौर्य्य, लज्जा, कीर्त्ति, बुद्धि, विनय, अनुपम श्री, धैर्य्य, और सन्तोष आदि सब गुण कृष्णमें सदा विराजमान हैं। इसलिये आचार्य्य, पिता और गुरुके समान पूज्य सर्व्व गुण सम्पन्न कृष्णको क्षमा प्रदर्शन करना तुम्हारा सब तरहसे कर्त्तव्य है। वह ऋत्विक्, गुरु, नातेदार, स्नातक, राजा और प्रिय पात्र हैं। इसी हेतु अच्युत अर्चित हुए हैं।" (१)

देवत्व फिर आ पहुंचाः—

"कृष्ण ही इस चराचर विश्वके सृष्टिस्थिति-प्रलय कर्त्ता हैं। यही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्त्ता और सब प्राणियोंके स्वामी होनेके कारण परम पूजनीय हैं, इसमें और क्या सन्देह

(१) पहले अध्यायमें कहा है कि अनुशीलन धर्म्मके चरमादर्श श्रीकृष्ण हैं। भीष्मकी उक्ति मेरे कथनको पुष्ट कर रही है।

है? बुद्धि, मन, महत्तत्व, पृथिव्यादि पञ्चभूतोंका समुदाय ही कृष्णमें है। चन्द्र, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, दिक्, विदिक् सब ही कृष्णमें हैं—इत्यादि।"

भीष्मने कृष्णके पूज्य होनेके दो कारण बताये हैं—एक तो यह कि वह बलमें सबसे श्रेष्ठ हैं। और दूसरे, उनके समान वेद वेदाङ्ग पारदर्शी दूसरा कोई नहीं है। उनके अद्वितीय पराक्रमके प्रमाण इस पुस्तकमें बहुत दिये गये हैं। और उनके वेदज्ञ होनेका प्रमाण गीता है। जिसे हम गीता समझकर पाठ करते हैं वह कृष्णकी बनायी नहीं है। यह व्यासकी बनायी "वैयासिकी संहिता" के नामसे प्रसिद्ध है। इसके रचनेवाले व्यासजी हों चाहे और ही कोई, पर रचनेवालेने श्रीकृष्णके मुंहसे निकली हुई बातें नोट करके यह गीता नहीं रची है। मुझे तो यह मौलिक महाभारतका अंश भी नहीं मालूम होती है। पर इसे मैं कृष्णके धर्म्म-विचारका संग्रह मानता हूं। कृष्णके किसी मनीषी मतानुयायीने संग्रह कर महाभारतमें मिला दिया है। यही संगत भी जान पड़ता है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि गीतोक्त धर्म्म जिसका कहा हुआ है वह अवश्य ही अद्वितीय वेदज्ञ विद्वान था। वह धर्म्मके विषयमें वेदोंको सबसे ऊंचा स्थान नहीं देता था। बल्कि कभी कभी उनकी निन्दा कर देता था। जो हो, अद्वितीय वेदज्ञके विना किसी दूसरेका बनाया यह गीतोक्त धर्म्म नहीं है। जो गीता और वेद दोनों पढ़ते हैं वह यह बात अनायास ही समझ सकते हैं।

जो पराक्रम और पाण्डित्यमें, वीरता और शिक्षामें, कर्म्म और ज्ञानमें, नीति और धर्म्ममें, दया और क्षमामें, समान ही सबसे श्रेष्ठ है वही आदर्श पुरुष है ।

दसवां परिच्छेद ।

शिशुपालवध ।

भीष्मने अन्तमें शिशुपालसे फटकारकर कह दिया, "कृष्णकी पूजा जाना यदि तुम्हें अच्छा न लगता हो, तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो ।" अर्थात् उठ जाओ ।

इसके बाद जो कुछ हुआ वह महाभारतमें यों लिखा है:—

"कृष्णको पूजे जाते देखकर सुनीथ नामक एक महाबली वीर पुरुष क्रोधसे कांपता हुआ आंखे लाल लाल कर सब राजाओंसे बोला, 'मैं पहले सेनापति था, अब यादवों और पाण्डवोंका वंश संहार करनेके लिये आज ही समर-सागरमें कूदूंगा ।'

चेदीका राजा शिशुपाल राजाओंके अविचलित उत्साहसे उत्साहित हो यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये उनके साथ मंत्रणा करने लगा । युधिष्ठिरका यज्ञ और कृष्णकी पूजा जिसमें न हो, बस यही चेष्टा वह कर रहा था । कृष्णने राजाओंको आत्मग्लानिसे क्रोधके वशीभूत हो परामर्श करते देखकर समझ लिया कि यह युद्धके लिये गुट बांध रहे हैं ।"

राजा युधिष्ठिरने राजाओंके क्रोधको समुद्रकी तरह उमड़ते देखकर सबसे धीमान् भीष्म पितामहसे कहा "सब राजा बिगड़ खड़े हुए हैं, अब क्या करना चाहिये, कहिये ।"

यदि शिशुपाल मारा न जाता, तो वह राजाओंसे मिलकर यज्ञ नष्ट कर देता । बस इसीसे वह मारा गया था ।

शिशुपालने फिर कृष्ण और भीष्मको गालियां दीं । इस वारकी गालियां और भी तीखी थीं । यथा, 'दुरात्मा' जिससे बालक भी घृणा करता है, गोपाल अर्थात् ग्वाला और दास इत्यादि । परम योगी श्रीकृष्ण पुनः क्षमा कर चुप रहे । कृष्ण जैसे बलके आदर्श हैं, वैसे क्षमाके भी हैं । भीष्म पहले तो कुछ नहीं बोले पर भीम गुस्सेमें आकर शिशपालकी ओर झपटा । भीष्म उसे रोककर शिशुपालकी पूर्व्व कथा सुनाने लगे । यह कथा असम्भव और अनैसर्गिक होनेके कारण विश्वासके योग्य नहीं है । यह कथा यों है:—

शिशुपाल जब हुआ था तब उसके तीन आंखें और चार हाथ थे और वह गदहेकी तरह चिल्लाया था । उसके मातापिताने पुत्रके यह कुलक्षण देखकर फेंक देना चाहा । इतनेमें आकाशवाणी हुई । उस समय जो लोग किस्से गढ़ते थे उनका काम देववाणीका सहारा लिये बिना नहीं चलता था । आकाशवाणी हुई कि "यह बड़ा अच्छा लड़का है, इसे मत फेंको, इसे भली भांति पालो पोसो, यम भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता । पर हां, इसका मारनेवाला पैदा हो गया है ।" इसपर

मावाप जरूर ही पूछेंगे और उन्होंने पूछा भी कि "आकाशवाणी-जी, नाम तो बता दो, कौन मारेगा ?" आकाशवाणी इतना बक गयी पर उसने नाम नहीं बताया। अगर नाम बता देती तो किस्सेकी (Plot) बन्दिशकी दिलचस्पी चली जाती। इसलिये आकाशवाणीजीने यही कहा कि "जिसकी गोदमें जानेसे इसके फालतू दोनों हाथ गिर पड़ेंगे और फालतू आंख बन्द हो जायगी, वही इसे मारेगा।"

बस फिर क्या था। शिशुपालका बाप जबरदस्ती सबकी गोदमें बेटेको बिठाने लगा। पर न हाथ झड़े और न आंख बन्द हुई। कृष्ण और शिशुपाल शायद एक ही उम्रके थे क्योंकि दोनों ही रुक्मिणीके उम्मीदवार हुए थे। और आकाशवाणीने भी कहा था "इसका मारनेवाला पैदा हो गया है।" पर तो-भी कृष्णने द्वारकासे चेदी आकर शिशुपालको गोदमें लिया। बस गोदमें लेते ही उसके फालतू दोनों हाथ और एक आंख गायब हो गयी।"

शिशुपालकी माता कृष्णकी फूफी थी। वह कृष्णकी बहुत आरजू मिन्नत कर बोली "बेटा! मेरे बच्चेको मत मार डालना।" कृष्णने कहा, "अच्छा, वधके योग्य सौ अपराध क्षमा करूंगा।"

अस्वाभाविक बातोंपर मेरा विश्वास नहीं है। शायद पाठकोंका भी न होगा। किसी इतिहासमें अस्वाभाविक घटना देखने-से लोग उसे लेखककी या उसके पूर्व्वजोंकी कल्पना मान लेंगे। जो क्षमा और कृष्णचरित्रका महत्व नहीं जानता है

उसने शिशुपालको क्षमा कर देनेका कारण लोगोंको समझानेके लिये यह किस्सा गढ़ डाला है। पर वास्तवमें वह स्वयं कृष्णकी अद्भुत क्षमाशीलता नहीं समझ सका है। अन्धा अन्धेको समझाता है कि हाथी मूसलके समान है। असुरोंके वधके लिये जिन कृष्णका अवतार हुआ वह असुरोंका अपराध देख क्षमा कर देंगे, यह बात सङ्गत नहीं जान पड़ती है। कृष्ण असुरोंके वधके निमित्त अवतीर्ण हुए थे यह माननेपर उनके इस क्षमागुणका रहस्य भी समझमें नहीं आता है और न कोई दूसरा गुण ही समझमें आता है। परन्तु उन्हें आदर्श पुरुष माननेपर, मनुष्यत्वके आदर्शके विकाशके लिये ही वह अवतीर्ण हुए मान लेनेपर, उनके सब काम भली भांति समझमें आ जाते हैं। कृष्ण-चरित्ररूपी रत्नभाण्डारके खोलनेकी कुञ्जी यह आदर्श पुरुष-तत्व ही है।

शिशुपालकी दो चार गालियां सह लेनेके कारण ही कृष्णके क्षमागुणकी प्रशंसा करता हूं, यह मत समझिये। शिशुपालने इसके पहले कृष्णपर बड़े बड़े अत्याचार किये थे। कृष्ण जब प्राग्ज्योतिषपुर गये थे तब मौका पा द्वारकामें आग लगा यह भाग गया था। शायद भोजराजके रैवतकपर विहारके लिये जानेपर उसने कई यादवोंको मारा और कैद कर लिया था। वसुदेवके अश्वमेध यज्ञका घोड़ा चुरा लिया था। उस समयके क्षत्रिय इसे बड़ा भारी अपराध मानते थे। कृष्णने यह सब अपराध क्षमा किये थे। उन्होंने केवल शिशुपालके ही अपराध

दुर्योधनको सीधा और सच्चा उत्तर दे दिया। स्पष्ट बात कठोर होनेपर भी उन्होंने कहनेमें सङ्कोच नहीं किया। अकपट व्यवहार धर्म्मसम्मत हो, तो उसे मैं कठोर नहीं कह सकता। इस धर्म्मविरुद्ध लज्जाके मारे हमें छोटे छोटे अधर्म्मोंमें भी प्रायः फंसना पड़ता है।

कृष्ण फिर कौरवसभासे उठकर विदुरके घर गये।

रातको विदुरके साथ श्रीकृष्णकी बहुत बातचीत हुई। विदुरने उनसे कहा कि तुम्हारा यहां आना अनुचित हुआ। क्योंकि दुर्योधन किसी तरह सन्धि न करेगा। कृष्णने जो उत्तर दिया था उसके कुछ शब्द यों हैं:—

"हाथी घोड़े रथ सहित सारी विपद्ग्रस्त पृथिवीको जो मृत्युसे बचा सकेगा उसे बड़ा धर्म्म होगा।"

यूरपके हर महलमें यह वाक्य सोनेके अक्षरोंमें लिखकर रखना चाहिये। यहांतक कि शिमलेका राजभवन भी खाली न रह जाय। कृष्ण फिर कहते हैं:—

"विपद्में पड़े हुए भाईको बचानेका जो यथासाध्य प्रयत्न नहीं करता है उसे पण्डित लोग क्रूर कहते हैं। बुद्धिमान मित्रोंकी चोटीतक पकड़कर उन्हें बुरी राह जानेसे रोकते हैं।++ यदि वह (दुर्योधन) मेरी हितकी बातें सुनकर भी मुझपर शङ्का करे, तो मेरी कुछ भी हानि नहीं है। उलटे मुझे परम सन्तोष होगा कि मैं उसे समझाकर अपने बोझसे हलका हो गया। भाईबन्दोंके आपसके झगड़ेके समय जो अच्छी सलाह नहीं देता वह कभी अपना नहीं है।"

यूरपवालोंका विश्वास है कि कृष्ण निरे परस्त्रीलोलुप और पापी थे। यहां वालोंमें भी अभी किसी किसीका यही विश्वास है और किसीका यह है कि कृष्णने मनुष्यहत्याके लिये जन्म लिया था और वह 'कुचक्री' थे अर्थात् अपना मतलब निकालनेके लिये षड़्यंत्र रचा करते थे। पर वह ऐसे नहीं थे वह लोकहितैषियोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, धर्म्मोपदेशकोंमें श्रेष्ठ और आदर्श मनुष्य थे। यही समझानेके लिये इतना लिखा है।

सातवां परिच्छेद।

हस्तिनापुरमें दूसरा दिन।

दूसरे दिन सवेरे स्वयं दुर्योधन और शकुनी कृष्णको बुलाकर दरबारमें ले गये। बड़ा भारी दरबार था। नारदादि देवर्षि और जमदग्नि आदि ब्रह्मर्षि वहां उपस्थित थे। कृष्ण बड़ी लम्बी चौड़ी वक्तृता देकर सन्धिके लिये राजा धृतराष्ट्रको समझाने लगे। ऋषियोंने भी समझाया। पर कुछ न हुआ। धृतराष्ट्रने कहाः—"सन्धि मेरी सामर्थ्यके बाहर है, दुर्योधनसे कहो।" कृष्ण, भीष्म, द्रोण आदिने दुर्योधनको बहुत समझाया, पर वह टससे मस न हुआ। सन्धि करना तो दूर रहा, उलटे उसने कृष्णको दो चार खरी खोटी सुना दीं। कृष्णने भी उसका मुंहतोड़ जवाब दिया। दुर्योधनकी बेईमानीका भण्डाफोड़ हो गया। वह आगबबूला हो चल दिया।

इसपर श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको वही काम करनेका परामर्श दिया जो समस्त पृथिवीकी राजनीतिका मूलमन्त्र है। राज्य-शासनका मूलमन्त्र, प्रजाकी रक्षाके हेतु दुष्टोंका दमन करना है। अर्थात् बहुतोंके हितके लिये एकको दण्ड देना उचित है। समाजकी रक्षाके लिये हत्यारेकी हत्या करनी चाहिये। जिसके कैद न करनेसे हजारों मनुष्योंके प्राण जाते हों उसे पकड़कर कैद करना चाहिये। यही ज्ञानियोंका उपदेश है। यूरपके समस्त राजाओं और मन्त्रियोंने मिलकर इसी हेतु सन् १८१५ ई० में नेपोलियनको आजन्मके लिये कारागारमें भेजा था। इसी लिये महानीतिज्ञ श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको सलाह दी कि दुर्योधनको कैद कर पाण्डवोंसे सुलह कर लीजिये। उन्होंने यह भी कहा कि देखिये मैंने यदुवंशकी रक्षाके लिये अपने मामा कंसतकको मार डाला। पर श्रीकृष्णकी बात नहीं मानी गयी।

इधर दुर्योधन बिगड़कर कृष्णको कैद कर लेनेके लिये कर्णसे सलाह करने लगा।

सात्यकी, कृतवर्म्मा आदि कृष्णके भाईबन्धु सभामें उपस्थित थे। सात्यकी कृष्णका बड़ा भक्त और प्रिय था। वह अस्त्रविद्यामें अर्ज्जुनका शिष्य और वीरतामें उसके ही समान था। महा बुद्धिमान सात्यकीको दुर्योधनका अभिप्राय मालूम हो गया। उसने कृतवर्म्माको ससैन्य नगरद्वारपर तैयार रहनेके लिये कहकर कृष्णसे सारा हाल कह दिया। फिर भरी सभामें धृतराष्ट्रसे कहा। विदुरने सुनकर धृतराष्ट्रसे कहा,

"आगमें गिरकर जिस तरह पतङ्ग जल जाते हैं उसी तरह क्या यह भी नहीं जल मरेंगे? श्रीकृष्ण चाहें तो युद्धमें परास्त कर सबको यमपुर भेज देंगे।" इत्यादि।

पीछे कृष्णने जो कुछ कहा वह वास्तवमें आदर्श पुरुषके योग्य है। वह बलवान थे, इसीसे क्षमाशील और क्रोधशून्य थे। वह धृतराष्ट्रसे बोले:

"सुनता हूं कि दुर्योधन आदि गुस्सा होकर मुझे कैद करना चाहते हैं। पर आप आज्ञा कर देखिये कि मैं उनपर आक्रमण करता हूं या वह मुझपर करते हैं। मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि मैं अकेला ही इन सबकी खबर ले सकता हूं। पर मैं निन्दित और पापजनक काम कुछ नहीं करूंगा। पाण्डवोंका धन लेनेके लालचमें आपके लड़के ही अपना नाश आप करेंगे। वास्तवमें यह मुझे पकड़नेकी इच्छा कर युधिष्ठिरकी भलाई ही कर रहे हैं। मैं आज ही इन्हें और इनके पिछलगोंको कैद कर पाण्डवोंके हवाले कर सकता हूं, इसमें मुझे पापभागी भी नहीं बनना पड़ेगा। पर आपके सामने ऐसा क्रोध और पाप-बुद्धिजनित गर्हित काम मैं नहीं करूंगा। मैं आज्ञा देता हूं कि दुष्ट लोग दुर्योधनके इच्छानुसार ही काम करें।" (१)

यह सुनकर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको बुलवा भेजा और आने-पर फटकारा। कहा:—

(१) कालीप्रसन्न सिंहके बङ्गला महाभारतकी बड़ी प्रशंसा है, इसलिये मैंने मूलसे बिना मिलाये ही उनका अनुवादित अंश

"तू बड़ा कठोर, पापी और नीच है। इसीसे यह अयश दिलानेवाला साधुओंके अयोग्य असाध्य पाप करनेके लिये तू तैयार हुआ है। कुलद्रोही मूढ़ोंकी तरह दुष्टोंके साथ मिलकर तू दुर्द्धर्ष जनार्द्दनको पकड़ रखना चाहता है। बालक जिस प्रायः उद्धृत किया है। किन्तु कृष्णकी इस उक्तिमें कुछ असङ्गत दोष पाया जाता है, जैसे एक ठौर वह कहते हैं कि इस काममें मुझे पापभागी भी नहीं बनना पड़ेगा और इसके बाद ही दो पंक्ति नीचे उसी कामको पापजनित कहते हैं। इसपर मूलसे मिलाकर देखा। मूलमें यह दोष नहीं है। मूल यों है

राजन्ते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा।
एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव॥
एतान् हि सर्व्वान् संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे।
न चाहं निन्दितं कर्म कुर्य्यात् पापं कथञ्चन॥
पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान् हास्यन्ति ते सुताः।
एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः॥
अद्यैव ह्यहमेनाश्च ये चैनाननु भारत।
निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्करं भवेत्॥
इदन्तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म्म भारत।
सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम्॥
एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत्।
अहन्तु सर्व्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप॥

'किं दुष्करं भवेत्, का अर्थ—"पापभागी नहीं बनना पड़ेगा'

प्रकार चन्द्रमाको पकड़ना चाहता है उसी प्रकार तू भी इन्द्रादि देवताओंसे भी न जीते जानेवाले केशवको पकड़नेकी इच्छा करता है। देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और मनुष्य भी जिसका सामना नहीं कर सकते उन केशवको क्या तू नहीं जानता है? बेटा, हाथोंसे हवा नहीं पकड़ी जाती है, हथेलीसे आग नहीं छूई जा सकती है, सिरपर पृथ्वी कभी उठायी नहीं जा सकती और न बलसे केशव ही पकड़े जा सकते हैं।"

विदुरने भी दुर्योधनको डांटा। विदुरके चुप होनेपर वासुदेव बड़े जोरसे खिलखिला उठे। पीछे सात्यकी और कृतवर्म्माका हाथ पकड़ चल दिये।

यहांतक तो महाभारतमें जो कुछ लिखा है वह सुसंगत और स्वाभाविक है, किसी तरहकी गड़बड़ नहीं है। न अलौनहीं है। इसका मतलब यह जान पड़ता है कि "दुर्योधन मुझे कैद करना चाहता है, मैं यदि उसे ही अभी पकड़कर ले जाऊं तो क्या यह बुरा काम होगा?" अर्थात् दुर्योधनको कैद कर ले जाना बुरा काम नहीं है, क्योंकि बहुतोंकी भलाईके लिये एकको त्यागना श्रेय है। इस हेतु कृष्णने धृतराष्ट्रसे दुर्योधनको कैद करनेके लिये कहा था। अगर कृष्ण उस समय उसे कैद करते तो लोग यही कहते कि उन्होंने क्रोधमें आ ऐसा किया। क्योंकि अबतक उन्होंने ऐसा करना नहीं विचारा था। जो काम क्रोधवश किया जाता है वह पापबुद्धिजनित है। आदर्श पुरुषको इस निन्दित कामसे बचना चाहिये।

किक है और न अविश्वासके योग्य ही कुछ है। पर क्षेपक मिलानेवालोंसे यह नहीं देखा गया। क्षेपक मिलानेके लिये उनके हाथ खुजलाने लगे। उन्होंने सोचा कि इतनी बड़ी घटना हो गयी उसमें एक भी अस्वाभाविक और अद्भुत बात नहीं, फिर भला कृष्णकी ईश्वरता कैसे बनी रहेगी? कदाचित् यही सोच विचारकर उन्होंने कृष्णके हंसने और उठकर चल देनेके बीचमें विराट् रूप घुसेड़ दिया। भीष्मपर्व्वके भगवद्गीता-पर्व्वाध्यायमें फिर विराट् रूपका (यह चाहे क्षेपक हो या न हो) वर्णन आया है। इन दोनों विराट् रूपोंके वर्णनमें बड़ा भेद है। गीताके ग्यारहवें अध्यायमें विराट् रूपका जो वर्णन है वह प्रथम श्रेणीके कविकी रचना है। साहित्य जगत्में वैसी रचना दुर्लभ है। पर भगवद्यान पर्व्वाध्यायमें विराट् रूपका वर्णन जिसका लिखा है उसके लिये काव्यरचना विडम्बनामात्र है। भगवद्गीताके ग्यारहवें अध्यायमें भगवान श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं, "तुम्हारे सिवा और किसीने यह रूप पहले नहीं देखा है।" पर यहां कौरव सभामें दुर्योधनादि वह रूप पहले ही देख चुके थे। फिर उसी अध्यायमें भगवान कहते हैं, "तुम्हारे सिवा और कोई मनुष्य वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, दान, क्रिया और कठोर तपस्या करके भी मेरा यह रूप नहीं देख सकता है।" पर कुकवियोंकी कृपासे कौरव सभामें ऐरों गैरोंने भी विराट् रूप देख लिया। गीतामें यह भी लिखा है कि "अनन्य भक्तिसे ही मेरा यह रूप लोग जान वा देख सकते हैं और तत्वज्ञानसे ही उसमें लीन हो

सकते हैं ।" पर यहां दुष्ट, पापात्मा, भक्तिशून्य शत्रुओंने भी विराट्‌रूपका अवलोकन किया ।

मूर्ख भी कोई काम बिना प्रयोजन नहीं करता है । और जो विश्वरूपी है उसका कहना ही क्या है । यहां विराट् रूप दिखलानेकी कुछ आवश्यकता नहीं थी । दुर्योधनादि श्रीकृष्णको पकड़ रखनेका विचार करते थे, कुछ चेष्टा उन्होंने नहीं की । बाप और चाचाकी फटकार सुन दुर्योधन चुप हो गया था । अगर वह कुछ जोर भी करता तो उसकी कुछ न चलती । कृष्ण स्वयं इतने बली थे कि बलपूर्वक उन्हें कोई नहीं पकड़ सकता था । यह धृतराष्ट्रने कहा, विदुरने कहा और स्वयं कृष्णने भी कहा था । यदि कृष्णको अपने बचावकी सामर्थ्य न होती तो भी कुछ चिन्ता न थी, क्योंकि सात्यकी, कृतवर्मा आदि वृष्णिवीर उनकी सहायताके लिये तैयार थे । उनकी फाटकपर खड़ी थी। दुर्योधनकी सेनाके बारेमें कुछ नहीं लिखा है। इसलिये उन्हें बलपूर्व्वक पकड़ लेनेकी कुछ सम्भावना न थी। सम्भावना होनेपर भी डर जायं ऐसे कापुरुष कृष्ण नहीं थे। जो विराट्‌रूप है उसके लिये भयकी सम्भावना नहीं । इसलिये विराट्‌रूप दिखानेका यहां कोई कारण नहीं था। ऐसी अवस्थामें क्रुद्ध या दाम्भिक मनुष्योंको छोड़ और कोई शत्रुको डरानेका प्रयत्न नहीं करता है। जो विश्वरूप है वह क्रोधशून्य और दम्भशून्य है ।

इसीलिये यहां विराट्‌रूपकी कथा कुकविकी अलीक रचना समझ छोड़ देना ही उचित है । मैं वारंवार दिखला चुका हूं कि

कृष्णने मानुषी शक्तिसे ही काम लिया है दैवीसे नहीं। यहां इसके विपरीत करनेका कुछ कारण नहीं दिखाई देता है।

कुरु-सभासे उठकर श्रीकृष्ण कुन्तीसे बातचीत करने गये। वहांसे उपप्लव्य नगर चले। वहां पाण्डव थे। चलनेके समय उन्होंने कर्णको अपने रथपर बिठा लिया।

कृष्णको पकड़कर रखनेका विचार जिन्होंने किया था उनमें ही कर्ण भी था। कर्णको रथपर बिठाकर कृष्ण क्यों चले, यह अगले परिच्छेदमें बताऊंगा। इससे कृष्णचरित्र और भी साफ हो जाता है। साम और दण्डनीतिमें कृष्णकी नीतिज्ञता दिखा चुका हूं। अब भेदनीतिकी पारदर्शिता दिखाऊंगा। साथ ही यह भी दिखलाऊगा कि कृष्ण आदर्श पुरुष थे। उनकी दया, उनकी बुद्धि और उनकी लोकहितकी कामना अलौकिक थी।

आठवां परिच्छेद।

कृष्ण-कर्ण संवाद।

कृष्ण दयामय थे, वह सब जीवोंपर दया करते थे। महायुद्धमें असंख्य प्राणियोंका नाश होगा, इससे कोई क्षत्रिय व्यथित नहीं हुआ, केवल कृष्ण ही इसके लिये व्यथित थे। विराट नगरमें जब युद्धका प्रस्ताव हुआ था तब कृष्णने युद्धके विरुद्ध मत दिया था। अर्जुन जब युद्धका निमंत्रण देने गये

तब कृष्णने अस्त्र न धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। पर युद्ध बन्द नहीं हुआ। अब दूसरा उपाय न देख निराश हो वह सन्धिके लिये हस्तिनापुर आये। पर वहां भी कुछ नहीं हुआ। प्राणिहत्या न रुक सकी। तब वह दूसरा उपाय सोचने लगे।

कर्ण महावीर था। वह अर्जुनके तुल्य रथी था। दुर्योधन कर्णके भरोसे ही क्रूरता और युद्ध करनेके लिये तैयार था। यदि कर्ण उसकी पीठपर न होता तो वह कदापि युद्धका नाम न लेता। कर्ण अगर पाण्डवोंकी ओर आ जाय तो दुर्योधन युद्धसे हाथ खेंच लेगा। श्रीकृष्णने यही सब सोचकर एकान्तमें बात-चीत करनेके लिये कर्णको रथपर बिठा लिया था।

कृष्णको अपना मतलब निकालनेका सहज उपाय भी मालूम था जो और कोई नहीं जानता था।

कर्णको लोग अधिरथ नामक सूतका पुत्र जानते थे। वास्तवमें वह अधिरथका पुत्र नहीं था। उसे उसने पुत्रवत् पाला जरूर था। कर्णको यह नहीं मालूम था। वह अपने जन्मकी भी बात नहीं जानता था। वह सूतपत्नी राधाके गर्भसे नहीं हुआ था। वह सूर्यके वीर्य्य और कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। जिस समय कर्णका जन्म हुआ उस समय कुन्ती क्वारी थी इससे उसने उसे फेंक दिया था। वास्तवमें कर्ण युधिष्ठिरादि पाण्डवोंका ज्येष्ठ सहोदर था। यह बात कुन्तीके सिवा और कोई नहीं जानता था। हां, कृष्ण जानते थे; क्योंकि उनकी

अलौकिक बुद्धिके आगे सब बातें आप ही प्रगट हो जाती थीं। कुन्ती उनको बूआ थी। भोजराजके यहां यह घटना हुई थी। इससे मनुष्य बुद्धिसे उसका जान लेना असम्भव नहीं था।

कृष्ण यही बात रथपर बैठे कर्णको सुनाकर बोले "शास्त्रज्ञोंने कहा है कि जो कन्याका पाणिग्रहण करता है वही उस कन्याके सहोड़ (१) और कानीन (२) पुत्रोंका पिता होता है। हे कर्ण, तुम भी अपनी माताकी कन्यावस्थाके उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम धर्मसे उसके पुत्र हो। इसलिये चलो, धर्मशास्त्रके विरुद्ध (३) भी तुम राजेश्वर होगे।" उन्होंने कर्णको

---

(१) सहोड़=गर्भवती कुमारी कन्याका पुत्र जो विवाह होनेपर उत्पन्न होता है।

(२) कानीन=कुमारी कन्याका पुत्र। भाषान्तरकार।

(३) यह "विरुद्ध" शब्द कालीप्रसादसिंहके अनुवादमें है; पर यहां असंगत मालूम होता है। मेरे पास जो मूल महाभारत है उसमें है—

"निग्रहाद्धर्मशास्त्राणाम्।" यदि "निग्रहार्थमशास्त्राणाम्" हो तो अर्थ संगत हो जाय।

पीछे मालूम हुआ कि इसका एक पाठ "निग्रहाद्धर्मशास्त्राणाम्" भी है। यहां निग्रहका अर्थ मर्यादा है। यथा

"निग्रहो भर्त्सनेऽपि स्यात् मर्य्यादायाञ्च बन्धने।" इति मेदिनी।

"निग्रहो भर्त्सने प्रोक्तो मर्य्यादायाञ्च बन्धने।" इति विश्वः।

"नियमेन विधना ग्रहणं निग्रहः।" इति चिन्तामणिः।

यह समझा दिया कि तुम बड़े हो इसलिये तुम ही राजा होगे और पांचों पाण्डव तुम्हारी आज्ञामें रहकर सेवा करेंगे।

श्रीकृष्णके इस परामर्शसे सबका भला होता और धर्म्म बढ़ता। पहले कर्णको ही लीजिये। अगर वह कृष्णका कहना मान लेता, तो उसके राजेश्वर बननेमें क्या देर थी? फिर भाइयोंसे शत्रुताकी जगह मित्रता हो जाती और इससे धर्म्म बढ़ता। इससे दुर्योधनका भी भला होता। युद्ध होनेसे उसका राज्य ही नहीं सारा वंश नष्ट होगया। अगर युद्ध न होता, तो राज्य भी बच जाता और सबके प्राणोंकी रक्षा होती। हां, पाण्डवोंका हिस्सा जरूर लौटाना पड़ता। इससे पाण्डवों की भी भलाई होती। वह फिर अपने भाईबन्दों तथा अगणित प्राणियोंकी हत्यासे बच जाते और कर्णके साथ आनन्दसे राज्य-का सुख भोगते। सबसे हित और धर्म्मकी बात इससे यह होती कि अगणित मनुष्योंके प्राणोंकी रक्षा होती।

कर्णने कृष्णके परामर्शकी उपयोगिता स्वीकार की, पर लाचार था। वह जानता था कि युद्धमें दुर्योधनकी जीत नहीं होगी। पर तो भी कृष्णकी बात न मान सका, क्योंकि उसे कलङ्कका टीका लगता। वह बुरी तरह फंस गया था। अधिरथ और राधाने उसका पालन पोषण किया था। उनके यहां रहकर उसने सूतवंशकी कन्यासे ब्याह किया था। और उससे बेटे पोते भी हो चुके थे। भला उन्हें वह किस तरह छोड़ देता? इसके सिवा वह तेरह वर्षसे दुर्योधनके यहां राज्य

सुख भोग रहा था। ऐसी दशामें दुर्योधनका साथ छोड़कर पाण्डवोंकी ओर जाता, तो उसकी बड़ी बदनामी होती। लोग यही कहते कि कर्ण बड़ा कृतघ्न है, लालची है, डरपोंक है, पाण्डवोंसे डर गया। यही सब सोचकर कर्णने कृष्णकी बात नहीं मानी।

कृष्ण बोले, "मेरी बात तुम्हारे चित्तमें नहीं बैठी तो अवश्य ही पृथिवीका संहार होने वाला है।"

कर्णने इसका उपयुक्त उत्तर दिया। फिर कृष्णसे गले गले मिलकर उदासभावसे वह लौट गया।

कृष्णचरित्र समझानेके लिये कर्णचरित्रकी विस्तृत आलोचना व्यर्थ है। इससे उस विषयमें कुछ नहीं लिखा। कर्णका चरित्र बड़ा मनोहर और महत्वपूर्ण है।

नवां परिच्छेद।

—:-०-:—

उपसंहार।

श्रीकृष्णके लौट आनेपर युधिष्ठिरने पूछा, कहो हस्तिनापुर जाकर क्या कर आये ?

इसपर श्रीकृष्ण अपनी तथा औरोंकी कही हुई बातें दुहरा गये। पर पिछले अध्यायोंमें जो बातें हैं उनसे इनका कुछ भी मेल नहीं है। मेल होनेसे पुनरुक्ति हो जाती। शायद इसीसे किसी महापुरुषने यह राग अलापा है।

भगवद्यान-पर्व्वाध्याय यहीं समाप्त होता है। फिर सैन्य-

निर्याण-पर्व्वाध्याय है। इसमें कामकी बात कुछ नहीं है। इसकी कुछ कथाएं मौलिक और अमौलिकसी मालूम होती हैं। कृष्णके बारेमें विशेष कुछ नहीं है। कृष्ण और अर्ज्जुनके परामर्शके अनुसार पाण्डवोंने धृष्टद्युम्नको सेनापति नियुक्त किया। बलरामने मदिरा पीकर कृष्णको थोड़ी डांट बतायी और कहा कि तू कौरव पाण्डवोंको एक दृष्टिसे नहीं देखता है। कौरव-सभामें जो कुछ हुआ था उसकी भी थोड़ी चर्चा है। बस इसके सिवा और कुछ नहीं है।

इसके बाद उलूक-दूतागमन पर्व्वाध्याय है। यह बिलकुल ही गया बीता है। इसमें गाली गुफताके सिवा और कुछ नहीं है। दुर्योधन और शकुनी वगैरहने सलाह कर उलूकको पाण्डवोंके पास भेजा। उसने आकर पाण्डवों और कृष्णको खूब गालियां दी। पाण्डवोंने भी उनका मुंहतोड़ जवाब दिया। कृष्णने विशेष कुछ नहीं कहा। क्योंकि उनके जैसा मनुष्य, जिसे गुस्सा छू भी नहीं गया, गाली गलौज नहीं करता है। बल्कि बात बढ़ न जाय इसलिये उन्होंने उलूकको पहिले ही विदा कर देनेकी चेष्टा की थी। वह उलूकसे बोले "जल्द जाकर दुर्योधनसे कह दे कि पाण्डवोंने तुम्हारी बातें समझ लीं। अब तुम्हारी जो इच्छा है वही होगी।" इतना करनेपर भी कृष्ण और अर्ज्जुनको ज्यादे गालियां सुननी पड़ीं।

उलूक माननेवाला आदमी न था, क्योंकि वह दुर्योधनका सगा भाई था। वह फिर गालियोंकी फुलझड़ी छोड़ने लगा।

पाण्डवोंने व्याज समेत उसकी गालियां लौटा दीं। कृष्ण भी चुप न रह सके। बोले कि, "मैं युद्ध न करूंगा, शायद इसीसे तुम लोगोंका मिजाज बढ़ गया है, पर याद रखो जिस तरह आग तिनकोंको जलाकर खाक कर डालती है उसी तरह मैं भी क्रोधकर अन्तमें सारी पृथिवीको भस्म कर डालूंगा।"

उलूकदूतागमन-पर्व्वाध्यायसे महाभारतकी लड़ाईका कुछ सरोकार नहीं है। इसमें न रचनाचातुर्य्य है और न कविता ही है। बल्कि कहीं कहीं इसमें ऐसी बातें हैं जो महाभारतकी और और कथाओंसे विरुद्ध पड़ती हैं। अनुक्रमणिकाध्यायमें सञ्जय और कृष्णके दूतकर्म्मकी कथा है, पर उलूककी नहीं है। इन कारणोंसे पहली तहमें इसे नहीं मानता हूं।

इसके उपरान्त रथातिरथसंख्यान और फिर अश्वोपाख्यान पर्व्वाध्याय हैं। इनमें कृष्णकी कुछ भी चर्चा नहीं है। बस यहीं उद्योगपर्व्व समाप्त होता है।

इति पञ्चम खण्ड।

इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध विचारकर आप लोग बतावें कि अब क्या करना चाहिये। उन्होंने अपना अभिप्राय भी प्रगट कर दिया कि कोई धार्म्मिक मनुष्य दूत होकर दुर्योधनके पास जाय और सन्धि कर युधिष्ठिरको आधा राज्य दिलवा दे। कृष्ण सन्धि चाहते हैं, युद्ध नहीं। वह युद्धके इतने विरोधी थे कि उन्होंने केवल आधा राज्य लेकर ही सन्धि करनेकी सम्मति दे दी। और जब युद्ध किसी तरह न रुक सका, तब उन्होंने स्वयं अस्त्र न धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली।

बलदेवने जूएके कारण युधिष्ठिरकी कुछ निन्दा कर कृष्णकी हांमें हां मिलायी और कहा कि सन्धिसे प्राप्त धन ही सुख देने-वाला होता है, पर जो धन लड़ाईसे मिलता है वह धन ही नहीं है। सुरापायी बलदेवकी यह उक्ति सोनेके अक्षरोंमें लिखकर युरपके घर घरमें रख देनेसे मनुष्य जातिकी कुछ भलाई हो सकती है।

बलदेवकी बात समाप्त होनेपर सात्यकीने खड़े होकर अपना अभिप्राय प्रगट किया। सात्यकी स्वयं वीर योद्धा और कृष्णका शिष्य था। महाभारत युद्धमें पाण्डवोंके तरफदारोंमें अर्ज्जुन और अभिमन्युके बाद सात्यकीका ही नाम है। कृष्णके मुंहसे सन्धिका प्रस्ताव सुनकर सात्यकी कुछ बोल न सका, पर बलदेवको उसका समर्थन करते देख वह आग बबूला हो गया और उसने क्लीव, कापुरुष आदि शब्दोंसे उनकी पूरी खबर ली। बलदेवने युधिष्ठिरपर द्यूतक्रीड़ाका जो दोष लगाया था उसका

प्रतिवाद कर सात्यकीने कहा कि अगर पाण्डवोंका सारा राज्य कौरव न लौटा दें, तो उन्हें समूल नष्ट कर देना चाहिये।

इसके बाद द्रुपदकी वक्तृता हुई। इनकी और सात्यकीकी एक राय थी। इन्होंने युद्धकी तैयारी करने और मित्र राजाओंके यहां दूत भेजकर सेना संग्रह करनेकी सम्मति पाण्डवोंको दी। पर साथ ही दुर्योधनके यहां दूत भेजनेके लिये भी कहा।

अन्तमें फिर श्रीकृष्णकी वक्तृता हुई। द्रुपद बूढ़े तथा नातेमें बड़े थे इस कारण कृष्णने स्पष्ट शब्दोंमें उनका विरोध नहीं किया। पर यह कह दिया कि युद्ध होनेपर उसमें सम्मिलित होनेकी मेरी इच्छा नहीं है। यह बोले "कौरव-पाण्डवोंसे मेरा समान सम्बन्ध है। उन लोगोंने मर्य्यादा लंघन कर हमारे साथ कभी अशिष्ट व्यवहार नहीं किया। हम यहां व्याहके न्योतेमें आये हैं और आप भी आये हैं। विवाह हो गया, अब हम लोग राजीखुशी अपने अपने घर चलें।" बूढ़े बड़ोंके लिये इससे बढ़कर और क्या फटकार हो सकती थी? कृष्ण और भी बोले "यदि दुर्योधन सन्धि न करे, तो पहले और लोगोंके पास दूत भेजना, पीछे हम लोगोंको बुलाना।" अर्थात् इस युद्धमें हमारी आनेकी वैसी इच्छा नहीं है। यह कह कृष्ण द्वारका चल दिये।

कृष्ण युद्धके बिलकुल विपक्षमें थे, यहांतक कि उन्होंने पाण्डवोंको आधा राज्य लेने कहा पर युद्धके लिये राय नहीं दी। वह कौरव, पाण्डव किसीके भी पक्षमें न थे। दोनोंसे

उनका समान सम्बन्ध था। यह वह स्वयं स्वीकार कर चुके हैं। इसके बाद जो कुछ हुआ उससे यही दो बातें और भी भली भांति सिद्ध होती हैं।

इधर दोनों ओर युद्धकी तैयारियां शुरू हो गयीं। फौजें इकट्ठी होने लगीं और भिन्न भिन्न राजाओंके यहां दूत भेजे जाने लगे। कृष्णको युद्धका न्योता देनेके लिये अर्ज्जुन द्वारका गया। दुर्योधन भी वहां पहुंचा। दोनों एक ही रोज एक ही समय कृष्णके पास पहुंचे। फिर जो हुआ वह महाभारतसे उद्धृत किये देता हूं:—

"वासुदेव उस समय सोये थे। दुर्योधन पहले वहां पहुंच-कर कृष्णके सिरहाने अच्छे आसनपर जा बैठा। इन्द्रनन्दन अर्ज्जुन पीछे पहुंचा और हाथ जोड़ बड़े विनीतभावसे श्रीकृष्ण-के पायताने बैठ गया। वृष्णिनन्दन कृष्णने जागकर पहले धनञ्जय और पीछे दुर्योधनको देखा। उन्होंने दोनोंका स्वागत कर आदरके साथ आगमनका कारण पूछा।

दुर्योधनने हंसते हुए कहा "हे यादव, इस युद्धमें आपको सहायता देनी होगी। यद्यपि आपके साथ हम दोनोंका समान सम्बन्ध और समान मित्रता है, तथापि मैं पहले आया हूं। साधु-गण पहले आनेवालेका ही पक्ष ग्रहण करते हैं। आप साधुपुरुषोंमें श्रेष्ठ और माननीय हैं, इसलिये आज आप उसी सदाचारका प्रति-पालन कीजिये।" कृष्ण बोले—"हे कुरुवीर, आप पहले आये, इसमें सन्देह नहीं। पर मेरी दृष्टि पहले कुन्तीकुमारपर पड़ी

है, इसलिये मैं आप दोनोंकी सहायता करूंगा। लोग कहते हैं कि पहले बालककी ही सहायता करनी चाहिये। इसलिये पहले कुन्तीकुमारकी ही सहायता करनी उचित है।" यह कह भगवान यदुनन्दनने धनञ्जयसे कहा—"हे कौन्तेय, पहले तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करूंगा। एक ओर मेरे समान एक अरब नारायण नामक गोप योद्धा हैं और दूसरी ओर मैं हूं—लेकिन मैं अभी कहे देता हूं कि मैं न तो अस्त्र छूऊंगा और न युद्ध करूंगा। अब इन दोनोंमें जो तुम्हें पसन्द हो, चुन लो।"

धनञ्जयने यह सुनकर भी कि जनार्द्दन युद्ध नहीं करेंगे, उनको ही पसन्द किया। राजा दुर्योधन एक अरब नारायणी सेना पाकर और श्रीकृष्ण युद्ध न करेंगे, सुनकर फूले अंग न समाया।"

उद्योगपर्व्वके इस अंशकी आलोचना कर हम यह कई बातें समझ सकते हैं।

पहली—यद्यपि कृष्णका मत अपना धर्म्मार्थयुक्त अधिकार नहीं छोड़नेका है, तथापि वह बलसे क्षमाको अधिक पसन्द करते थे, यहांतक कि बलप्रयोगके बदले वह आधा राज्य छोड़ देना भी अच्छा समझते थे।

दूसरी—कृष्ण सर्वत्र समदर्शी थे। सर्व्वसाधारणका यही विश्वास है कि वह पाण्डवोंके पक्षमें और कौरवोंके विपक्षमें थे। पर उद्धृत अंश देखनेसे जान पड़ता है कि वह किसीके पक्षमें न थे।

तीसरी—वह स्वयं अद्वितीय वीर होकर भी लड़ना पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने पहले ऐसी राय दी जिसमें लड़ाई न हो, पर जब लड़ाई ठन ही गयी तब लाचार हो उन्हें एक तरफ होना पड़ा। पर अस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। ऐसी महिमा और किसी क्षत्रियकी नहीं देखी जाती है। जितेन्द्रिय और सर्व्वत्यागी भीष्मकी भी नहीं है।

इसके बाद भी युद्ध रोकनेके लिये कृष्णने बहुत प्रयत्न किया था। यह आश्चर्य्यका विषय है कि जो क्षत्रियोंमें युद्धके प्रधान विरोधी थे और जो सब जगह अकेले ही समदर्शी थे उन्हें ही लोग महाभारत युद्धका मूल और प्रधान परामर्शदाता समझते हैं और पाण्डवोंकी ओरका प्रधान कुचक्री कहते हैं। इसी हेतु कृष्णचरित्रकी विस्तृत आलोचना आवश्यक हुई है।

कृष्णने युद्धमें अस्त्र न छूनेकी प्रतिज्ञा की थी। अर्ज्जुन सोचने लगा कि उनसे कौन काम लेना चाहिये। बहुत सोच विचारकर अर्ज्जुनने श्रीकृष्णसे अपना सार्थी बननेके लिये अनुरोध किया। सार्थी बनना क्षत्रियोंके लिये नीच काम है। कर्णने जब मद्रके राजा शल्यसे सार्थी बननेके लिये निवेदन किया तब वह बहुत बिगड़ उठा था। परन्तु आदर्शपुरुष अहङ्कारशून्य होते हैं। इसलिये कृष्णने अर्ज्जुनका सार्थी बनना तुरत स्वीकार कर लिया। वह सब दोषोंसे शून्य और सब गुणोंसे सम्पन्न थे।

दूसरा परिच्छेद ।

सञ्जयप्रयाण ।

इधर दोनोंमें लड़ाईकी तैयारियां होती रहीं, उधर द्रुपदके परामर्शके अनुसार युधिष्ठिरादिने द्रुपदके पुरोहितको सन्धिके लिये धृतराष्ट्रके पास भेजा, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। क्योंकि दुर्योधन विना युद्धके इतनी भी भूमि देना नहीं चाहता था जितनीमें सूईकी नोक गड़ सके। और इधर भीम, अर्जुन और कृष्णको (१) याद कर धृतराष्ट्रकी नानी मर रही थी। इसलिये अपने अमात्य सञ्जयको भेजा।

"तुम्हारा राज्य भी हम बेईमानीसे ले लेंगे, पर तुम युद्ध मत करना, यह काम अच्छा नहीं है।" ऐसी बात निर्लज्जके सिवा

(१) उद्योगपर्वमें इसके बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं कि उस समय विपक्षी भी कृष्णकी प्रधानता मानते थे। धृतराष्ट्र पाण्डवोंके और और मददगारोंके नाम लेकर अन्तमें कहता है, "वृष्णिसिंह कृष्ण जिसकी ओर हों, उसका सामना कौन कर सकता है ?" (२१ वां अध्याय) फिर कहता है "वही कृष्ण पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं। उनका मुकाबला युद्धमें कौन अकेला कर सकता है ? हे सञ्जय! कृष्ण पाण्डवोंके लिये जैसा पराक्रम दिखलाते हैं, वह मैं सुन चुका हूं। उनके काम याद कर मैं हरदम बेचैन रहता हूं। कृष्ण जिसके अगुआ हैं उसका

और कोई नहीं कह सकता है। पर दूतको लज्जा कैसी? सञ्जयने आकर पाण्डवोंकी सभामें लम्बी चौड़ी वक्तृता झाड़ दी। उसके कथनका मर्म यही है कि युद्ध बड़ा भारी अधर्म्म है, तुम वही अधर्म्म करना चाहते हो, इसलिये तुम बड़े अधर्म्मी हो!" युधिष्ठिरने इसके जवाबमें बहुतसी बातें कही थीं। उनमें जो हमारे कामको हैं उन्हें नीचे उद्धृत करता हूं।

"हे सञ्जय! इस पृथिवीपर देवताओंके भी मांगने योग्य जो धन सम्पत्ति है, वह तथा प्राजापत्य स्वर्ग और ब्रह्मलोक भी मैं अधर्म्मसे लेना नहीं चाहता हूं। जो हो, महात्मा कृष्ण धार्म्मिक नीतिमान और ब्राह्मणोंके उपासक हैं। वह कौरव पाण्डव दोनोंके हितैषी हैं। वह बहुतसे महाबली राजाओंका शासन करते हैं। अब वही कहें कि मुझे क्या करना चाहिये, यदि सन्धि तोड़ दूं तो मेरी निन्दा होती है और युद्ध न करूं तो धर्म्म जाता है। प्रतापशाली शिविर, नप्ता और चेदी, अन्धक, वृष्णि, भोज, कुकुर सञ्जय वासुदेवकी बुद्धिसे ही शत्रुओंका दमन कर मित्रोंको प्रसन्न रखते हैं। इन्द्रकल्प उग्रसेन आदि

सामना करनेके लिये कौन तैयार होगा? कृष्ण अर्ज्जुनके सारथी हुए हैं सुनकर डरके मारे मेरा हृदय कांप रहा है।" एक जगह और धृतराष्ट्र कहता है "पर केशव भी अपराजेय, तीनों लोकोंके स्वामी और महात्मा हैं। जो सब लोकोंमें एक मात्र श्रेष्ठ हैं, भला उनके सामने कौन ठहर सकता है?" ऐसी ऐसी उसमें बहुत सी बातें हैं।

वीर और महाबली मनस्वी सत्यपरायण यादव सदा कृष्णके उपदेश सुना करते हैं। कृष्ण जैसे रक्षक और कर्त्ता पाकर ही काशीके नृप बभ्रुने उत्तम श्री पायी है। ग्रीष्मके अन्तमें मेघ जिस प्रकार प्रजाओंको जल देते हैं उसी प्रकार वासुदेव काशीके राजाको इच्छित धन प्रदान करते हैं। कर्म्मवीर केशव ऐसे गुणी हैं। वह बड़े साधु और हमारे प्रिय हैं। मैं कदापि उनकी बात न उठाऊंगा।"

वासुदेव बोले "हे सञ्जय! मैं सदा पाण्डवोंकी वृद्धि, समृद्धि और हित तथा पुत्रों सहित राजा धृतराष्ट्रका अभ्युदय चाहता हूं। कौरवपाण्डवोंमें सन्धि हो जाय बस यही मेरी इच्छा है। मैं इसके सिवा और कुछ परामर्श इन्हें नहीं देता हूं। अन्यान्य पाण्डवोंके सामने युधिष्ठिरसे मैंने कई बार सन्धिकी बात सुनी है पर महाराज धृतराष्ट्र और उनके पुत्र बड़े ही अर्थ-लोभी हैं। पाण्डवोंके साथ उनकी सन्धि होनी बड़ी ही कठिन है। इसलिये विवाद धीरे धीरे बढ़ जायगा, इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? हे सञ्जय! मैं और धर्म्मराज युधिष्ठिर धर्म्मसे कदापि विचलित नहीं हुए, जानकर भी तुमने क्यों अपना कार्य्य साधन करनेवाले उत्साही स्वजन-परिपालक राजा युधिष्ठिरको अधर्म्मी कहा?"

इतना कह श्रीकृष्ण धर्म्मकी व्याख्या करने लगे। कृष्ण-चरित्रके लिये यह बहुत आवश्यक है। कह चुका हूं कि कृष्णके जीवनके दो उद्देश्य थे—धर्म्मराज्यकी स्थापना और धर्म्मका

प्रचार। उनके धर्म्मराज्य स्थापनाका पूरा वर्णन महाभारतमें है। किन्तु उनके प्रचारित धर्म्मकी बातें भीष्मपर्व्वके अन्तर्गत गीता-पर्व्वाध्यायमें विशेषकर हैं। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि गीतामें जो धर्म्म कहा गया है वह गीताकारने कृष्णके मुंहसे जरूर कहलाया है, पर वह कृष्णका कहा हुआ है या गीताकारका, इसका क्या प्रमाण है? सौभाग्यकी बात है कि गीता-पर्व्वाध्यायके अतिरिक्त महाभारतके और और स्थानोंमें भी कृष्णके कहे हुए धर्म्मोपदेश मिलते हैं। गीतामें जिस नवीन धर्म्मका वर्णन है तथा महाभारतके अन्यान्य स्थानोंमें कृष्णने धर्म्मकी जो व्याख्या की है, इन दोनोंमें यदि एकता हो तो वही कृष्णका कहा और फैलाया धर्म्म कहा जा सकता है। महाभारतकी ऐतिहासिकता यदि मानी जाय और महाभारत-कारने जो धर्म्म-व्याख्या स्थान स्थानपर कृष्णके मुखसे करायी है, यदि सर्वत्र एकसी हो और प्रचलित धर्म्मसे भिन्न प्रकारकी हो, तो यह कृष्णका ही प्रचारित धर्म्म कहा जायगा। और फिर गीतामें जिस धर्म्मका पूर्णरूपसे और विस्तारपूर्व्वक वर्णन है उससे कृष्णके यहां कहे हुए धर्म्मसे मेल हो तो गीतोक्त धर्म्म अवश्य ही कृष्णकथित है।

अच्छा अब यहां देखना चाहिये कि कृष्ण सञ्जयसे क्या कहते हैं:—

"शास्त्रोंमें यह विधि रहनेपर भी कि ब्राह्मण पवित्र और परिवार पालक होकर वेदाध्ययन करते हुए कालयापन करें वह बहुतेरी

बातोंमें बुद्धि लड़ाया करते हैं। कोई कर्म्म करते हुए और कोई कर्म्म त्यागकर केवल वेदज्ञानके भरोसे मोक्ष मान बैठे हैं। पर जैसे भोजनके विना तृप्ति नहीं होती है, वैसे ही कर्म्म न कर केवल वेदज्ञ हो जानेसे ब्राह्मण कदापि मोक्ष नहीं पाते हैं। जिन विद्याओंसे कर्म्मोंका साधन होता है वही फल देनेवाली हैं, जिनसे कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं होता वह नितान्त निष्फल हैं। इसलिये जल पीते ही जैसे प्यास जाती है उसी तरह इस समय जिस कर्म्मसे प्रत्यक्ष फल मिले वही करना चाहिये। हे सञ्जय, कर्म्मके वश ही इस प्रकार विधि हुई है, इसलिये कर्म्म ही सबसे प्रधान है। जो मनुष्य कर्म्मसे किसी और वस्तुको उत्तम समझता है उसके सब कर्म्म ही निष्फल होते हैं।

"देखो देवता कर्म्मके बलसे प्रभावशाली हुए हैं, वायु कर्म्मबलसे सदा बहती रहती है। सूर्य्य कर्म्मबलसे आलस्यरहित हो अहोरात्र परिभ्रमण करता है, चन्द्रमा कर्म्मबलसे नक्षत्र मण्डलीसे परिवृत हो पन्द्रह दिन उदय होता है। अग्नि कर्म्मबलसे प्रजागणका कर्म्म संशोधन कर निरन्तर उत्ताप प्रदान करता है; पृथिवी कर्म्मबलसे अत्यन्त भारी बोझ सहज ही ढोती है। नदियां सब कर्म्मबलसे प्राणियोंको तृप्त कर जल धारण करती हैं, अमित बलशाली देवराज इन्द्रने देवताओंमें प्रधानता प्राप्त करनेके निमित्त ब्रह्मचर्य्य धारण किया था। इन्द्र उसी कर्म्मबलसे दशों दिशाएं और नभोमण्डल प्रतिध्वनित

कर जल बरसाता है और उसने विवेकसे भोगाभिलाष और प्रिय वस्तुएं छोड़कर श्रेष्ठता प्राप्त की तथा दम, क्षमा, समता, सत्य, और धर्म्मकी रक्षा कर देवताओंके राज्यपर अधिकार जमा रखा है। भगवान वृहस्पतिने इन्द्रिय निरोधकर ब्रह्मचर्य्य धारण किया था। इसीसे वह देवताओंके आचार्य्य हुए। रुद्र, आदित्य, यम, कुबेर, गन्धर्व, यक्ष, अप्सरा, विश्वावसु और नक्षत्र कर्म्मके प्रभावसे विराजमान हैं। ब्रह्मविद्या, ब्रह्मचर्य्य और अन्यान्य क्रियाओंका अनुष्ठान कर महर्षियोंने श्रेष्ठता पायी है।"

कर्म्मवाद कृष्णके पहले भी प्रचलित था, पर प्रचलित मतके अनुसार वैदिक कर्म्मकाण्ड ही उस समय कर्म्म माना जाता था। उस समयके प्रचलित धर्म्ममें कर्म्म शब्दसे मनुष्यजीवनके समस्त कर्त्तव्य कर्म्म, जिन्हें अंग्रेज ड्युटी (Duty) कहते हैं, नहीं समझे जाते हैं। गीतामें ही कर्म्म शब्दका पूर्व्व प्रचलित अर्थ बदल गया है—कर्त्तव्य, अनुष्ठेय, ड्युटी (Duty) का ही नाम साधारण रीतिपर कर्म्म हो गया है। और अभी हो रहा है। भाषागत भेद बहुत है, पर मर्म्मार्थ एक ही है। जो यहां बक्ता है वही सचमुच गीतामें भी है, यह बात मानी जा सकती है।

कर्त्तव्य कर्म्मके यथाविहित निर्व्वाहका (ड्युटी यानी फर्ज-अदा करनेका) दूसरा नाम स्वधर्म्म पालन है। गीताके आरम्भमें ही श्रीकृष्णने अर्ज्जुनको स्वधर्म्म-पालनका उपदेश किया है।

यहां भी श्रीकृष्ण उसी स्वधर्म्मपालनका उपदेश करते हैं यथा :—

"हे सञ्जय, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सबका धर्म्म भली भाँति जानकर भी कौरवोंकी भलाईके विचारसे पाण्डवोंको हानि पहुंचानेकी क्यों चेष्टा करते हो ? धर्म्मराज युधिष्ठिर वेदज्ञ हैं। अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करना उनका कर्त्तव्य है। वह युद्धविद्यामें पारदर्शी हैं और हाथी घोड़े तथा रथ चलानेमें निपुण हैं। इस समय पाण्डव यदि कौरवोंका संहार न कर भीमसेनको समझा बुझा लें और राज्य पानेका कुछ और उपाय कर सकें तो धर्म्मरक्षा और पुण्य दोनों हों। या यह लोग क्षत्रियधर्म्मका प्रतिपालन कर अपना काम निकालें और फिर दुर्भाग्यवश कालके गालमें समा जायं तो वह भी अच्छा ही है। जान पड़ता है, तुम सन्धि करना ही उत्तम समझते हो। पर पूछना यह है कि क्षत्रियोंकी धर्म्मरक्षा युद्ध करनेसे होती है या नहीं करनेसे ? इन दोनोंमें तुम जिसे अच्छा कहोगे, मैं वही करूंगा।"

इसके उपरान्त श्रीकृष्णने चारों वर्णोंका धर्म्म बताया है। गीताके अठारहवें अध्यायमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका जो धर्म्म लिखा है ठीक वही यहां भी है। महाभारतमें इसके अनेकों प्रमाण मिलते हैं कि गीतोक्त धर्म्म और महाभारतमें अन्यत्र लिखा हुआ कृष्णोक्त धर्म्म एक ही है। इसलिये यह एक तरहसे सिद्ध है कि गीताका धर्म्म कृष्णका कहा हुआ

है—वह कृष्णके नामसे केवल प्रसिद्ध ही नहीं है, बल्कि यथार्थ-में कृष्णका रचा हुआ भी है। कृष्णने सञ्जयसे और भी बहुत सी बातें कहीं। उनमेंसे दो एक यहां लिखता हूं।

दूसरेका राज्य छीन लेनेकी अपेक्षा यूरपवालोंके लिये और कुछ भी गौरवका काम नहीं है। दूसरेका राज्य लेनेका नाम अंग्रेजीमें है Conquest (विजय), Glory (यश), Extension of Empire (साम्राज्य विस्तार) इत्यादि। अंग्रेजीकी तरह यूरपकी अन्यान्य भाषाएं भी इसका गुणानुवाद करती हैं। केवल Gloire (यश) शब्दके मोहमें फंसकर प्रशियाका राजा द्वितीय फ्रेड्रिक तीन वार यूरपमें युद्धाग्नि भड़काकर लाखों मनुष्योंके सर्व्वनाशका कारण हुआ था। खूनके प्यासे राक्षसोंके सिवा और लोग इस तरहके Gloire और तस्करतामें सहज ही कुछ भेद नहीं समझेंगे। परायेका राज्य छीननेवाला बड़ा चोर तथा और चोर छोटे चोर हैं (१)। पर यह कहना बड़ा कठिन है, क्योंकि दिग्विजयमें भी ऐसी कुछ मोहनी शक्ति है कि आर्य्य क्षत्रिय भी इसके मोहमें फंसकर प्रायः धर्म्माधर्म्म भूल जाते थे। यूरपमें केवल डायोजिनिज (Diogenes) ने महावीर अलकजेंडर (सिकन्दर) से कहा था कि "तू एक बड़ा डाकू है, और कुछ नहीं।" भारतवर्षमें भी श्रीकृष्णने परराज्यलो-

---

(१) हां, जहां केवल परोपकारके लिये दूसरेका राज्य लिया जाता है वहां कुछ और बात हो सकती है। इसका विचार मेरी सामर्थ्यके बाहर है, क्योंकि मैं राजनीतिज्ञ नहीं।

लुप राजाओंको यही बात कही थी—उनका कहना है कि छोटा चोर लुक छिपकर चोरी करता है और बड़ा चोर डंकेकी चोट करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं:—

"चोर छिपकर चोरी करे या खुले मैदान, दोनों अवस्थाओंमें वह निन्दाके योग्य है। इसलिये दुर्योधनका काम भी एक तरहसे चोरोंका सा काम कहा जा सकता है।"

इन तस्करोंके हाथसे अपने सर्वस्वकी रक्षा करना कृष्ण परम धर्म्म समझते थे। आजकलके नीतिज्ञोंकी भी राय यही हैं। छोटे मोटे चोरके हाथसे अपनी सम्पत्तिके बचानेको अंग्रेजीमें Justice (न्याय) और बड़े चोरके हाथसे बचानेको Patriotism (देशानुराग) कहते हैं। अपनी भाषामें इन दोनोंका नाम स्वधर्म्म-पालन है। कृष्ण कहते हैं:—

"इस कामके लिये प्राण भी देने पड़ें, तो यह भी प्रशंसाका काम है। पर पैतृक राज्यके उद्धारसे पीछे पैर देना कदापि उचित नहीं है।"

सञ्जयको धर्म्मका ढकोसला करते देखकर कृष्णने उचित फटकार भी बतायी थी। उन्होंने कहा, "तुम अभी राजा युधिष्ठिरको धर्म्मका उपदेश देना चाहते हो, पर उस समय (जब दुःशासनने सभामें द्रौपदीपर अत्याचार किया था) सभामें दुःशासनको तुमने धर्मोपदेश नहीं किया था।" कृष्ण यों तो बराबर प्रियवादी थे, पर दोष दिखलानेके समय स्पष्ट ही बोलते थे। वह सत्यको ही सदा प्रिय मानते थे।

सञ्जयको फटकार बतानेके बाद कृष्णने कहा कि कौरवपाण्डवोंके हित साधनके लिये मैं स्वयं हस्तिनापुर जाऊंगा। बोले "जिसमें पाण्डवोंकी अर्थहानि न हो और कौरव भी सन्धिके लिये सम्मत हो जायं, इसके लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा। इससे बड़ा पुण्य होगा और कौरवोंकी भी प्राणरक्षा हो सकती है।"

लोगोंकी भलाईके लिये, असंख्य मनुष्योंकी प्राणरक्षाके लिये, कौरवोंकी रक्षाके लिये, कृष्ण स्वयं इस दुष्कर कर्म्ममें लग गये। दुष्कर इसलिये कि कृष्ण पाण्डवोंकी ओर हो चुके, इसलिये कौरव उनके साथ शत्रुका सा वर्त्ताव कर सकते थे। पर उन्होंने लोकहित साधनके लिये निरस्त्र हो शत्रुओंकी पुरीमें चले जाना ही श्रेय समझा।

तीसरा परिच्छेद

यान-सन्धि।

यहीं सञ्जययान-पर्व्वाध्याय समाप्त होता है। इसके अन्तिम भागमें देखा जाता है कि कृष्ण हस्तिनापुर जानेकी प्रतिज्ञा कर वहां गये। किन्तु सञ्जययान-पर्व्वाध्याय और भगवद्यान-पर्व्वाध्यायके बीचमें और तीन पर्व्वाध्याय हैं जिनके नाम 'प्रजागर' 'सनत्सुजात' और 'यानसन्धि' हैं। पहले दो तो क्षेपक

हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। उनमें महाभारतकी कुछ कथा नहीं है, धर्म्म और नीतिकी बड़ी सुन्दर कथाएं हैं। कृष्णकी कुछ चर्चा ही उनमें नहीं है। इसलिये इन दोनों पर्व्वाध्यायोंसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं।

यान-सन्धि पर्व्वाध्यायमें सञ्जयका हस्तिनापुर लौटकर आना, धृतराष्ट्रसे सब बातें कह सुनाना, और फिर धृतराष्ट्र, दुर्योधनादि कौरवोंका वादानुवाद है। सबकी लम्बी लम्बी वक्तृताएं हैं। उनमें पुनरुक्ति और व्यर्थ बातोंकी भरमार है। दो स्थानोंमें कृष्णका जिक्र है।

पहले अट्ठावनवें अध्यायमें धृतराष्ट्र सञ्जयसे अर्ज्जुनकी बातें विस्तारपूर्व्वक सुनकर हठात् पूछ बैठता है, "वासुदेव और अर्ज्जुनने जो कहा वह सुननेको मैं उत्सुक हूं, इसलिये वही कहो।"

इसके उत्तरमें सभामें जो कुछ हुआ था वह न कहकर सञ्जयने एक मनगढ़न्त कहानी आरम्भ कर दी। कहने लगा कि मैं दबे पांव अर्थात् चोरोंकी तरह पाण्डवोंके अन्तःपुरमें घुस गया, जहां अभिमन्यु आदि भी नहीं जा सकते थे। वहां जाकर कृष्ण और अर्ज्जुनको देखा। दोनों मदिरा पीकर उन्मत्त हो रहे थे। द्रौपदी और सत्यभामाके पांवोंपर पांव रखे अर्ज्जुन बैठा है। नयी बातचीत कुछ नहीं हुई। कृष्णने घमण्डके साथ कहा कि मैं जब सहाय हूं तब अर्ज्जुन सबको मार डालेगा।

अर्ज्जुनने क्या कहा, वह यहां कुछ नहीं है, हालांकि, धृतराष्ट्र वही सुना चाहता था। अट्ठावनवें अध्यायके अन्तमें है कि "अनन्तर महावीर किरीटी कृष्णके वचन सुनकर रोमाञ्चित करनेवाले वाक्य बोलने लगा।" इससे यह मालूम होता है कि अर्ज्जुनने जो कुछ कहा वह उनसठवें अध्यायमें है, पर ऐसा नहीं है। वहां कुछ मामला ही और है। उनसठवें अध्यायमें धृतराष्ट्रने दुर्योधनको जरा दबाकर सन्धि करनेके लिये कहा। साठवेंमें दुर्योधनने कड़ककर जवाब दिया। इकसठवेंमें कर्णने आकर बीचबिचाव किया और एक व्याख्यान झाड़ दिया। भीष्मने कर्णको खरी खोटी सुना दी। बस दोनोंमें चखचख हो गयी। बासठवें अध्यायमें भीष्म और दुर्योधनकी ठायंठायं हुई। तिरसठवेंमें भीष्मका भाषण है। चौसठवेंमें फिर बाप-बेटेकी कहासुनी है। इतनी देरके बाद धृतराष्ट्र अकस्मात् पूछता है कि अर्ज्जुनने क्या कहा? इसपर सञ्जय अट्ठावनवें अध्यायकी टूटी हुई लड़ी ठीक कर अर्ज्जुनकी बातें कहने लगा। जान पड़ता है कि अब किसी पाठकको यह माननेमें सन्देह नहीं होगा कि उनसठवां, साठवां, इकसठवां, बासठवां, तिरसठवां और चौसठवां अध्याय क्षेपक हैं। इन कई अध्यायोंमें महाभारतकी क्रिया एक पद भी आगे नहीं बढ़ती है। यह अध्याय स्पष्ट रूपसे क्षेपक हैं इसीसे इनका उल्लेख किया।

जिन कारणोंसे यह छः अध्याय क्षेपक कहे जा सकते हैं उन्हींसे अट्ठावनवां अध्याय भी कहा जा सकता है। उसके

बादके अध्याय क्षेपकपर क्षेपक हैं। अट्ठावनवें अध्यायके बारेमें यह भी कहा जा सकता है कि यह केवल अप्रासङ्गिक और असलग्न ही नहीं, वरञ्च कृष्णके पूर्व्वोक्त वचनका बिलकुल विरोधी है। अनुक्रमणिका या पर्व्वसंग्रहाध्यायमें इन बातोंकी गन्ध भी नहीं है। मालूम होता है, कोई रसिक लेखक असुर-संहारी विष्णु और सुरसंहारिणी सुरा दोनोंका भक्त था उसीने अपने दोनों उपास्य देवताओंको एकत्र देखनेके लिये यह अट्ठा-वनवां अध्याय रच डाला है।

यान-सन्धि पर्व्वाध्यायकी यह हुई कृष्णके बारेकी पहली बात। अब दूसरी सुनिये। यह सड़सठवें अध्यायसे सत्तरवें-तक चार अध्यायोंमें है। इनमें धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जय कृष्णकी महिमा वर्णन करता है। सञ्जयने पहले जिन्हें मद्यसे उन्मत्त बताया था, यहां उन्हें ही जगदीश्वर बताता है। यह भी क्षेपक ही जान पड़ता है। क्षेपक हो या न हो इससे मेरा कुछ मतलब नहीं। यदि और कारणोंसे हम कृष्णको ईश्वर मानते हों तो फिर सञ्जयके वचनोंकी आवश्यकता क्या है? और यदि न मानते हों तो सञ्जयके वाक्य ऐसे नहीं जिनसे हम मानने लग जायं। इसलिये सञ्जयकी वाक्यावलीकी आलोचना वृथा है। कृष्णके मनुष्यचरित्रकी एक भी बात उसमें नहीं मिली। और यही मेरा आलोच्य विषय है।

यानसन्धि-पर्व्वाध्याय यहीं समाप्त होता है।

चौथा परिच्छेद।
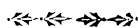
श्रीकृष्णके हस्तिनापुर जानेका प्रस्ताव।

श्रीकृष्ण अपने प्रतिज्ञानुसार सन्धिके लिये हस्तिनापुर जानेको तैयार हुए। जानेके समय पाण्डव और द्रौपदी सबने ही उनसे कुछ कुछ कहा। उन्होंने सबकी ही बातोंका जवाब दिया। यह बातें अवश्य ही ऐतिहासिक नहीं मानी जायंगी। पर कवियों और इतिहासवेत्ताओंने जो बातें कृष्णसे कहलायी हैं उनसे मालूम हो जाता है कि वह लोग कृष्णको कैसा समझते या जानते थे। उनकी बातोंका सारांश यहा लिखता हूं।

युधिष्ठिरकी बातोंका जवाब श्रीकृष्ण एक ठौर देते हैं, "हे महाराज, क्षत्रियोंके लिये ब्रह्मचर्य्यादि विधेय नहीं है। समस्त आश्रमोंके लोग क्षत्रियोंको मांगनेसे मना करते हैं। विधाताने संग्राममें विजय प्राप्त करना या प्राण त्याग करना क्षत्रियोंका नित्य धर्म्म स्थिर कर दिया है। इसलिये क्षत्रियोंके लिये दीनता बड़ी ही निन्दनीय है। हे शत्रुनाशक युधिष्ठिर, यदि आप दीनताको अपने पास आने देंगे तो अपना राज्य कभी प्राप्त न कर सकेंगे। इसलिये आप भुजबल प्रकाश कर शत्रुओंका विनाश कीजिये।"

गीतामें भी श्रीकृष्णने अर्ज्जुनसे यही बात कही थी। इससे जो सिद्धान्त निकलता है वह पहले ही कहा जा चुका है।

भीमकी बातका वह जवाब देते हैं—"मनुष्य पुरुषकार छोड़कर केवल दैवके भरोसे या दैवको छोड़कर केवल पुरुषकारके भरोसे नहीं रह सकता है। इसलिये जो व्यक्ति इस प्रकार निश्चय कर कर्म्म करता है वह कार्य्य सिद्ध न होनेसे दुःखित, या सिद्ध होनेसे सन्तुष्ट नहीं होता है।"

गीतामें भी यही कहा है (१)। श्रीकृष्ण अर्ज्जुनसे कहते हैं:—

"उपजाऊ भूमि यथा नियम जोती और बोयी जानेपर भी वर्षाके विना अन्न नहीं उपजा सकती है। कोई अपने पुरुषार्थसे उनमें जल भी सींचे तो भी दैवप्रभावसे वह सूख सकता है। इसलिये प्राचीन महात्माओंने निश्चय किया है कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनोंके बिना कार्य्य सिद्ध नहीं होता है। मैं यथासाध्य पुरुषार्थ कर सकता हूं, पर प्रारब्धपर मेरा कुछ वश नहीं।"

इस बातका उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूं। कृष्णने अपना ईश्वर होना यहां एकदम अस्वीकार किया है। क्योंकि वह मानवशक्तिसे ही काम लेते थे। ईश्वरी शक्तिसे ही काम लेनेका अभिप्राय ईश्वरका हो तो अवतार लेनेकी जरूरत नहीं रहती।

और लोगोंकी बात पूरी होनेपर द्रौपदी बोली। उसके मुंहसे एक ऐसी बात निकली जो औरतोंके मुंहसे निकलना आश्चर्य्यकी बात है। द्रौपदीने कहा, "अवध्यको वध करनेसे जो पाप लगता है वही वध्यको वध न करनेसे लगता है।"

(१) सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। गीता २—४८

यह बात औरतोंके मुंहसे भले ही अनूठी मालूम पड़े, पर कई साल पहले मैंने 'बङ्गदर्शन' नामक मासिक पत्रमें द्रौपदीके चरित्रका जो चित्र खेंचा था उसके लिये यह बहुत ही ठीक है। स्त्रियोंके मुंहसे यह बात अच्छी लगे या न लगे, पर यह सच्चा धर्म्म है और कृष्णका भी यही सिद्धान्त है, यह मैं जरासन्ध-वधकी आलोचनामें तथा अन्यत्र समझा चुका हूं।

द्रौपदीकी इस वक्तृताके उपसंहारमें कविताका अपूर्व्व कौशल है। वह अंश यों है:—

यह सुनकर द्रुपदनन्दिनी जिसका वर्ण श्याम था और जिसके बाल घूंघुरवाले, बड़े सुन्दर, सुवासित, सब लक्षणोंसे युक्त और काले नागसे थे, नेत्रोंमें आंसू भरकर दीनताके साथ फिर कृष्णसे कहने लगी, "हे जनार्द्दन, दुष्ट दुःशासनने मेरे यही बाल खेंचे थे। शत्रु सन्धिके लिये कहें तो इन बालोंकी याद कर लेना। भीम और अर्ज्जुन तो दीन हो सन्धिके लिये तैयार बैठे हैं, इसमें मेरी कुछ हानि नहीं है। मेरे वृद्ध पिता अपने महारथी पुत्रों सहित शत्रुओंसे लड़ेंगे और मेरे पांचों लड़के अभिमन्युको आगे कर शत्रुओंका नाश करेंगे। दुष्ट दुःशासनकी श्यामल भुजाएं कटकर जबतक धरतीपर लोटते मैं न देखूंगी, तबतक मुझे शान्ति कहां? मैं अपने हृदयमें क्रोधको धधकती हुई आगकी तरह रखे तेरह वर्षसे बैठी हूं। अब तेरह वर्ष बीत जानेपर भी उसके ठंढी करनेका कुछ भी उपाय होते नहीं देखती हूं। आज फिर धर्म्मपथपर चलनेवाले वृकोदरके वाक्य-शल्योंसे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।"

निविड़नितम्बिनी विशालनयनी कृष्णा यह कहकर कांपती हुई रोने लगी। उसके गर्म आंसुओंसे उसके दोनों स्तन भींग गये। महाबाहु वासुदेव उसे समझाकर बोले, "हे कृष्णे, तुम थोड़े ही दिनोंमें कौरवोंकी स्त्रियोंको रोती हुई देखोगी। जिस तरह तुम रो रही हो, वैसे ही कौरवोंकी स्त्रियां अपने भाईबन्दोंके मारे जानेपर रोएंगी। मैं युधिष्ठिरके नियुक्त करनेपर भीम, अर्ज्जुन और नकुलके साथ कौरवोंके वधमें लगूंगा। धृतराष्ट्रके लड़के कालकी प्रेरणासे मेरी बात न मानेंगे और शीघ्र ही कुत्तों और स्यारोंके आहार बनकर धरतीपर लेटेंगे। यदि हिमालय पर्वत चले, पृथ्वी उतरावे, आकाशमण्डल तारागोंके सहित गिर पड़े, तथापि मेरी बात असत्य नहीं होगी। हे कृष्णे, रोओ मत, मैं सत्य कहता हूं, तुम शीघ्र ही अपने पतियोंको शत्रुओंका संहार कर राज्य प्राप्त करते देखोगी।"

यह उक्ति रक्तके प्यासे हिंसक स्वभाववालेकी नहीं है और न क्रोधियोंकी है। यह ऐसे मनुष्यकी केवल भविष्यवाणी है जो अपनी सर्वत्रगामी और सर्व्वकालव्यापी बुद्धिके प्रभावसे भविष्यमें क्या होगा, प्रत्यक्ष देखते थे। कृष्ण भलीभांति जानते थे कि दुर्योधन राजपाट लौटाकर कदापि सन्धि नहीं करेगा। यह जानकर भी वह सन्धि करने चले, इसका कारण यह है कि जो कर्तव्य है उसे करना ही पड़ेगा, फलकी सिद्धि हो चाहे न हो। हो गयी तो वाहवाह, न हुई तो वाहवाह! गीतामें कहा हुआ

उसका यही अमृतमय धर्म्म है। स्वयं उन्होंने अर्ज्जुनको सिखाया है :—

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।"

इसी नीतिके अनुसार आदर्श योगी श्रीकृष्ण आगे क्या होगा जानकर भी सन्धिके लिये कौरव सभामें चले ।

पांचवां परिच्छेद ।
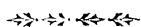
यात्रा ।

यात्राके समय श्रीकृष्णके सब ही काम मनुष्यके उपयोगी और समयोचित हुए थे । कौरव-सभामें जानेकी इच्छासे उन्होंने रेवती नक्षत्र, कार्त्तिक मास और मैत्र मुहूर्त्तमें स्नानध्यानसे निश्चिन्त हो वसनभूषण धारण कर सूर्य्य और अग्निकी पूजा की तथा विश्वासी ब्राह्मणोंसे मङ्गलपाठ सुना । फिर बैलकी पूंछ तथा कल्याण करनेवाले पदार्थोंको देख, ब्राह्मणोंको प्रणाम और अग्निकी प्रदक्षिणा कर उन्होंने यात्रा की ।

श्रीकृष्णके गीतोक्त धर्म्ममें उस समयके प्रबल काम्यकर्म्म-परायण वैदिक धर्म्मकी निन्दा है । पर तो भी वह वेदपरायण ब्राह्मणोंका कभी अनादर नहीं करते थे । वह आदर्श मनुष्य थे । इससे वह ब्राह्मणोंके साथ वही बर्त्ताव करते थे जो उस समय उचित था । उस समयके ब्राह्मण भी विद्वान्, ज्ञानवान्,

धर्म्मात्मा और परस्वार्थी थे। वह सदा समाजके हितसाधनमें लगे रहते थे, इससे और वर्ण उनकी पूजा करते थे और यह उचित भी था। कृष्ण भी इसी हेतु उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते थे। इसका प्रमाण मार्गमें ऋषियोंका समागम है। इसका वर्णन इस प्रकार है :—

"महाबाहु केशवने कुछ दूर जानेके बाद ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान कई ऋषियोंको रास्तेकी दोनों ओर खड़े देखा। उन्होंने देखते ही तुरत रथसे उतर प्रणाम किया और पूछा :—'हे महर्षि, कहिये सब लोग कुशलसे तो हैं? धर्म्मका अनुष्ठान अच्छी तरह होता है न? क्षत्रियादि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंके अधीन हैं न? आप लोग कहांसे आये, अब कहां जानेका विचार है? आप लोगोंको क्या जरूरत है? मुझे आपका कौनसा काम करना होगा? आप लोग किसलिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं?'

"इसपर महाभाग जामदग्न्यने कृष्णको आलिंगन कर कहा कि हे मधुसूदन, हममें कोई देवर्षि, कोई ब्रह्मश्रुत ब्राह्मण, कोई राजर्षि और कोई तपस्वी हैं। हमने कई बार देवासुरोंका समागम देखा है। अभी हम क्षत्रियों, राजाओं और आपको देखनेके लिये जा रहे हैं। हम लोग कौरव-सभामें आपका धर्म्मार्थयुक्त वचन सुनना चाहते हैं। हे यादवश्रेष्ठ, आप, भीष्म, द्रोण, तथा विदुर आदि महात्मा जो सत्य और हितकर वचन बोलेंगे उनके सुननेके लिये हमलोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा है। आप अब शीघ्र कौरवोंके यहां पधारिये। हम लोग आपको

वहां सभामण्डपमें दिव्य आसनपर बैठे और तेजसे प्रकाशित होते देखकर आपसे बातचीत करेंगे ।"

यहां यह भी कह देना उचित है कि यह जामदग्न्य परशुराम श्रीकृष्णके समसामयिक कहे जाते हैं। रामायणमें यह रामचन्द्रके समसामयिक कहे जाते हैं। और पुराणोंमें लिखा है कि वह राम और कृष्ण दोनोंके पहले हुए हैं और विष्णुके अवतार हैं। पुराणोके दश अवतार कहांतक संगत हैं, इसका विचार दूसरी पुस्तकमें करूंगा।

हस्तिनापुरका इस यात्रासे जान पड़ता है कि श्रीकृष्णको सर्वसाधारण भी मानते थे। इस यात्राका कुछ और वर्णन नीचे देता हूं :

"देवकीनन्दन कृष्ण धानके हरेभरे सुन्दर परम पवित्र खेतों और अति मनोहर पशुओंको देखते हुए बहुतेरे नगर और राज्य पार कर गये। कौरवोंसे रक्षित, सदा प्रसन्न, निश्चिन्त, व्यसनरहित पुरवासीगण कृष्णके दर्शनकी कामना कर उपप्लव्य नगरसे आकर सड़कपर प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देरके बाद महात्मा कृष्णके आ जानेपर सबने विधिपूर्व्वक उनकी पूजा की।

"इधर भगवान मरीचिमालीके किरणोंको त्यागकर लोहित कलेवर धारण करनेपर शत्रुनाशी मधुसूदन वृकस्थल पहुंचकर रथसे तुरत उतर पड़े। शौचादिसे निवृत्त हो सन्ध्यावन्दन करने लगे। उधर दारुक कृष्णके आज्ञानुसार घोड़ोंको रथसे खोलकर शास्त्रानुसार उनकी सेवा करने लगा। महात्मा मधुसूदन सन्ध्या

करनेके उपरान्त अपने साथके मनुष्योंसे बोले 'हे परिचारको ! युधिष्ठिरके कामके अनुरोधसे आज यहीं रात काटनी पड़ेगी।' परिचारकोंने उनका अभिप्राय समझ क्षणभरमें तम्बू खड़ाकर विविध प्रकारका सुन्दर भोजन तैयार कर दिया। पीछे वहांके स्वधर्म्मावलम्बी आर्य्य कुलीन ब्राह्मणोंने आरातिकुलकालान्तक महात्मा हृषिकेशके समीप आकर पूजा की और आशीर्वाद दिये। फिर अपने अपने घर ले चलनेकी अभिलाषा प्रगट की। भगवान मधुसूदन उनका अभिप्राय जानकर उनके घर गये। और उनकी पूजा कर वापिस आये। पीछे उन ब्राह्मणोंके साथ मीठे मीठे पदार्थ भोजन कर उन्होंने वहीं सुखसे रात बिता दी।" यह सर्व्वथा मनुष्य-चरित्र होनेपर भी आदर्श पुरुषके ही उपयुक्त हैं।

कोई देवता समझकर कृष्णका आदर सम्मान नहीं करता था। हां, श्रेष्ठ मनुष्यका जैसा आदर सम्मान हो सकता है, वैसा ही उनका हुआ। और आदर्श मनुष्य लोगोंके साथ जैसा वर्त्ताव कर सकता है या उसके करनेकी सम्भावना है, वैसा ही उन्होंने किया।
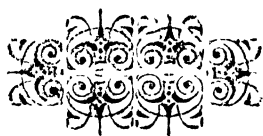
छठा परिच्छेद।

हस्तिनापुरमें पहला दिन।

कृष्ण आते हैं, सुनकर वृद्ध धृतराष्ट्रने उनके स्वागतके लिये पूरी तैयारी की। रत्नखचित सभाभवन बनवाया और उनको देनेके लिये बहुतसे घोड़े, हाथी, रथ, दास, "बिन बच्चे की दासियां" भेड़ें, अश्वयुक्त रथ, मणि आदि वह संग्रह करने लगा।

यह सब देखकर विदुरने कहा "वाह! तुम जैसे धार्मिक हो वैसे ही बुद्धिमान भी हो। पर यह सब भेंट चढ़ाकर कृष्णको तुम फुसला न सकोगे। जिस काम के लिये वह आते हैं। पहले उसका बन्दोबस्त करो, वह उसीसे प्रसन्न होंगे, भेंट पूजा पाकर प्रसन्न नहीं होंगे।

धृतराष्ट्र धूर्त और विदुर सीधे थे। दुर्योधन दोनों ही था। वह बोला "कृष्ण पूजनीय अवश्य हैं, पर उनकी पूजा नहीं होगी। युद्ध तो रुकेगा नहीं, फिर उनके आदर सत्कारकी आवश्यकता क्या है? अभी आदर सत्कार करनेसे लोग समझेंगे कि हम डर तथा खुशामदसे ऐसा करते हैं। मैंने इससे अच्छा उपाय सोचा है। वह आवेंगे तो मैं उन्हें कैद कर रखूंगा। कृष्णके भरोसे ही पाण्डव कूदते हैं। मैं कृष्णको ही फंसा लूंगा बस पाण्डव आप ही नाक रगड़ते आवेंगे।"

यह सुनकर धृतराष्ट्रने लाचार हो पुत्रको फटकारा। क्यों-

कि कृष्ण दूत होकर आते हैं। कृष्णके भक्त भीष्म दुर्योधनको उलटो सीधी सुनाकर सभासे उठ गये।

नगरवासी और कौरव बड़े आदर और सम्मानसे कृष्णको कुरुसभामें ले आये। उनके लिये जो रत्नखचित सभा बनी थी या सजावट हुई थी उसे उन्होंने आंख उठाकर भी नहीं देखा। वह धृतराष्ट्रके भवनमें जाकर कुरुसभामें बैठे और जो जिस योग्य था उससे वैसे ही बातचीत करने लगे। फिर दीनबन्धु कृष्ण राजभवनसे दीनभवनकी ओर चले।

विदुर धृतराष्ट्रका एक तरहका भाई था। दोनों ही व्यासजी-के औरस पुत्र थे। पर धृतराष्ट्र राजा विचित्रवीर्य्यकी रानीके गर्भसे और विदुर उसकी दासी वेश्याके गर्भसे हुए थे। विदुर-को विचित्रवीर्य्यका क्षेत्रज पुत्र माननेपर भी उसकी जातपांतका पता नहीं लगता है, क्योंकि उसका जन्म ब्राह्मणके औरस, क्षत्रियाके क्षेत्र और वेश्याके गर्भसे हुआ था। (१) यह साधारण

(१) महाभारतके सब नायकोंकी जातपांतके बारेमें ऐसा ही गड़बड़झाला है। पाण्डवोंका भी यही हाल है। पाण्ड-वोंकी परदादी सत्यवती दास-कन्या थी। भीष्मकी माताकी जाति छिपानेकी शायद खास जरूरत थी, इसीसे वह गंगानन्दन कहलाये। धृतराष्ट्र और पाण्डु ब्राह्मणके औरस, क्षत्रियाके गर्भसे उत्पन्न हुए। स्वयं व्यासजी धीवरकी कुमारी कन्याके पुत्र हैं। पाण्डु और धृतराष्ट्रकी जातपांतका कुछ भी ठिकाना नहीं है। आजकल वह होते, तो जातिसे अलग कर दिये

मनुष्य पर परम धार्मिक था। कृष्ण राजभवन त्यागकर र-जाते। पाण्डु के लड़के कुन्तीके गर्भसे जरूर हुए, पर वह अपने बापके जने नहीं हैं। पाण्डु में पुत्रोत्पादन की शक्ति ही न थी। उनके लड़के इन्द्रादिके जने कहे जाते हैं। इधर द्रोणाचार्यके पिता भारद्वाज ऋषि थे पर उनकी माता एक कलसी थी। जिन्हें कलसीके गर्भधारणपर विश्वास न होगा वह द्रोणके मातृकुलके बारेमें विशेष सन्देह करेंगे। पाण्डवोंके पिताके विषयमें जितना गोलमाल है कर्णके बारेमें भी उतना ही है। सब से बढ़कर बात तो यह है कि वह कानीन है। द्रौपदी और धृष्टद्युम्नके मातापिता कौन हैं, यह कोई नहीं कह सकता है। यह दोनों यज्ञसे उत्पन्न हुए थे।

उस समय विवाहमें कुछ बखेड़ा न था। अनुलोम प्रतिलोम विवाहकी बात नहीं कहता हूं। कई ऋषियोंके धर्मपत्नियां क्षत्रियोंकी कन्याएं थीं, जैसे अगस्तकी पत्नी लोपामुद्रा, ऋष्यशृङ्गकी शान्ता, ऋचीककी भार्य्या, जमदग्निकी भार्य्या (कोई परशुरामकी ही भार्य्या कहता है) रेणुका इत्यादि। आजकल भी लोग कहते हैं कि परशुरामने जब पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया तब ब्राह्मणोंके औरससे ही पीछेके क्षत्रिय हुए। फिर ब्राह्मणकी कन्या देवयानी क्षत्रिय ययातिकी धर्मपत्नी थी। खानेपीनेका भी उस समय कुछ विचार नहीं था। यह इतिहास देखनेसे मालूम होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एक दूसरेका छूआ खाते थे।

के घर उतरे और वहीं उन्होंने भोजन किया । आज भी लोग कहते हैं "दुरजोधनकी मेवा त्यागी, साग विदुरघर खायो ।" पाण्डवोंकी माता कृष्णकी बूआ कुन्ती विदुरके ही घर रहती थी । वन जानेके समय पाण्डव उसे वहीं रख गये थे । कृष्ण कुन्तीको प्रणाम करने गये । कुन्ती अपने बेटों और बहूकी दुःख-कहानी याद कर कृष्णके सामने बहुत रोयी कलपी। कृष्ण-ने इसके उत्तरमें जो कुछ कहा वह बड़े महत्वका है । जो सर्वाङ्ग मनुष्य-चरित्र भलीभांति जानता है उसके सिवा और कोई इसका महत्व नहीं समझ सकता है । मूर्खोंको तो बात ही नहीं है । श्रीकृष्ण कहते हैं:—

"पाण्डव निद्रा, तन्द्रा, हर्ष, क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्णको जीतकर वीरोंकी तरह सुखसे वास करते हैं। वह लोग इन्द्रियों-का सुख परित्याग कर वीरोचित सुखसे सन्तुष्ट हैं। वह महाबली महोत्साही वीर थोड़ेसे कभी सन्तोष नहीं करेंगे। वीर लोग अत्यन्त दुःख चाहे अत्यन्त सुख ही भोगते हैं। *और इन्द्रियोंका सुख चाहनेवाले मध्यम अवस्थामें ही सन्तुष्ट रहते हैं पर वह दुःखका घर है । राज्यप्राप्ति या वनवास ही सुखका मूल कारण है ।"*

"राज्यप्राप्ति या वनवास"(१) यह आजकलके हिन्दू नहीं सम-

---

(१) मिल्टनने अपने तंगदिल शैतानसे कहलाया है, "स्वर्गके दासत्वसे नरकका राज्य अच्छा है।" मैं जानता हूं, ऐसे बहुत पाठक हैं जो इस क्षुद्र उक्ति और ऊपर लिखी हुई महावाणीमें कुछ

झते हैं। समझते तो इतना दुःख न रहता। जिस दिन समझेंगे उस दिन दुःख भी नहीं रहेगा। हिन्दुओंके पुराणों और इतिहासोंमें ऐसी बातोंके रहते हिन्दू मेमोंके लिखे उपन्यास पढ़कर दिन काटते है या सभामें पांच आदमी इकट्ठे होकर चिड़ियोंकी तरह चूं चूं करते हैं।

कृष्णने कुन्तीसे यह भी कहा, "आप उन्हें शत्रुओंका नाश कर सब लोगोंपर राज्य करते और अनन्त सम्पत्ति भोगते देखेंगी।"

मतलब यह कि कृष्ण भली भांति जानते थे कि सन्धि नहीं होगी. युद्ध होगा तो भी वह सन्धिके लिय हस्तिनापुर गये, क्योंकि जो कर्त्तव्य है उसका पालन करना चाहिये, फल हो चाहे न हो। फलाफलसे अनासक्त हो कर्त्तव्य साधन करना चाहिये, इसे ही उन्होंने गीतामें कर्मयोग कहा है। युद्धकी अपेक्षा सन्धि मनुष्योंके लिये हितकर है, इसलिये सन्धि करना कर्त्तव्य है। परन्तु यथासाध्य चेष्टा करनेपर भी सन्धि न हो सकी तो कृष्णने ही अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित किया और सहायता दी। क्योंकि सन्धि न हुई, तो युद्ध ही कर्त्तव्य है। जिस कर्मयोगका उपदेश श्रीकृष्णने गीतामें किया है उसके वह स्वयं प्रधान योगी हैं। उनके आदर्श चरित्रकी आलोचना बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे करनेपर भेद नहीं मानेंगे। उनके मनुष्य होनेमें भी मुझे पूरा सन्देह है। छोटे दिलवाला दूसरेका ऐश्वर्य्य नहीं देख सकता है। महात्मा कर्त्तव्यके अनुरोधसे देख सकता है। उसकी विशाल चित्तवृत्तियां केवल महादुःखकी ओर ही जायंगी या महासुखकी ओर। और किसी ओर न जायंगी।

वास्तविक मनुष्यत्व समझमें आ सकेगा, इसीसे इतना परिश्रम कर रहा हूं।

कृष्ण कुन्तीसे विदा हो फिर कौरवोंकी सभामें पहुंचे। वहां दुर्योधनने भोजनका निमंत्रण दिया। पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। दुर्योधनने इसका कारण पूछा। कृष्णने पहले तो लौकिक नीति स्मरण कराकर कहा, "दूत काम हो जानेपर भोजन करते और भेंट लेते हैं। मेरा काम हो जाय तो मैं भेंट पूजा लूंगा।" पर दुर्योधनने न माना। वारंवार आग्रह करने लगा। तब फिर कृष्णने कहा, "लोग प्रेमसे या दुखी होकर दूसरेका अन्न खाते हैं। आप प्रमसे मुझे खिलाना नहीं चाहते हैं और मैं भी आफतका मारा नहीं हूं, फिर मैं आपका अन्न क्यों खाऊं?"

भोजनका न्योता मानना एक मामूली वात है। पर मामूली बातोंका जमाव ही हमारा दैनिक जीवन है। मामूली बातोंके लिये भी नीति है, अथवा होनी चाहिये। बड़े बड़े कामोंकी नीतिका जो मूल है वही छोटे छोटे कामोंकी नीतिका भी है। सबका मूल धर्म्म है। महात्मा और नीचात्मामें बस यही भेद है कि नीचात्मा धर्म्म न छोड़नेपर भी मामूली कामोंमें नीतिके अनुसार नहीं चल सकता, क्योंकि वह नीतिका मूल नहीं ढूंढ़ता है। आदर्श मनुष्य छोटे मोटे कामोंमें भी नीतिका मूल खोजते हैं। श्रीकृष्णने देखा कि दुर्योधनका न्योता मानना सरलता और सत्यताके विरुद्ध है। इसलिये उन्होंने

दुर्योधनको सीधा और सच्चा उत्तर दे दिया। स्पष्ट बात कठोर होनेपर भी उन्होंने कहनेमें सङ्कोच नहीं किया। अकपट व्यवहार धर्म्मसम्मत हो, तो उसे मैं कठोर नहीं कह सकता। इस धर्म्मविरुद्ध लज्जाके मारे हमें छोटे छोटे अधर्म्मोंमें भी प्रायः फंसना पड़ता है।

कृष्ण फिर कौरवसभासे उठकर विदुरके घर गये।

रातको विदुरके साथ श्रीकृष्णकी बहुत बातचीत हुई। विदुरने उनसे कहा कि तुम्हारा यहां आना अनुचित हुआ क्योंकि दुर्योधन किसी तरह सन्धि न करेगा। कृष्णने जो उत्तर दिया था उसके कुछ शब्द यों हैं:—

"हाथी घोड़े रथ सहित सारी विपदग्रस्त पृथिवीको जो मृत्युसे बचा सकेगा उसे बड़ा धर्म्म होगा।"

यूरपके हर महलमें यह वाक्य सोनेके अक्षरोंमें लिखकर रखना चाहिये। यहांतक कि शिमलेका राजभवन भी खाली न रह जाय। कृष्ण फिर कहते हैं:—

"विपदमें पड़े हुए भाईको बचानेका जो यथासाध्य प्रयत्न नहीं करता है उसे पण्डित लोग क्रूर कहते हैं। बुद्धिमान मित्रोंकी चोटीतक पकड़कर उन्हें बुरी राह जानेसे रोकते हैं।++ यदि वह (दुर्योधन) मेरी हितकी बातें सुनकर भी मुझपर शङ्का करे, तो मेरी कुछ भी हानि नहीं है। उलटे मुझे परम सन्तोष होगा कि मैं उसे समझाकर अपने बोझसे हलका हो गया। भाईबन्दोंके आपसके झगड़ेके समय जो अच्छी सलाह नहीं देता वह कभी अपना नहीं है।"

यूरपवालोंका विश्वास है कि कृष्ण निरे परस्त्रीलोलुप और पापी थे। यहां वालोंमें भी अभी किसी किसीका यही विश्वास है और किसीका यह है कि कृष्णने मनुष्यहत्याके लिये जन्म लिया था और वह 'कुचक्री' थे अर्थात् अपना मतलब निकालनेके लिये षड़यंत्र रचा करते थे। पर वह ऐसे नहीं थे वह लोकहितैषियोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, धर्म्मोपदेशकोंमें श्रेष्ठ और आदर्श मनुष्य थे। यही समझानेके लिये इतना लिखा है।

सातवां परिच्छेद ।

हस्तिनापुरमें दूसरा दिन ।

दूसरे दिन सवेरे स्वयं दुर्योधन और शकुनी कृष्णको बुलाकर दरबारमें ले गये। बड़ा भारी दरबार था। नारदादि देवर्षि और जमदग्नि आदि ब्रह्मर्षि वहां उपस्थित थे। कृष्ण बड़ी लम्बी चौड़ी वक्तृता देकर सन्धिके लिये राजा धृतराष्ट्रको समझाने लगे। ऋषियोंने भी समझाया। पर कुछ न हुआ। धृतराष्ट्रने कहा:—"सन्धि मेरी सामर्थ्यके बाहर है, दुर्योधनसे कहो।" कृष्ण, भीष्म, द्रोण आदिने दुर्योधनको बहुत समझाया, पर वह टससे मस न हुआ। सन्धि करना तो दूर रहा, उलटे उसने कृष्णको दो चार खरी खोटी सुना दीं। कृष्णने भी उसका मुंहतोड़ जवाब दिया। दुर्योधनकी बेईमानीका भण्डाफोड़ हो गया। वह आगबबूला हो चल दिया।

इसपर श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको वही काम करनेका परामर्श दिया जो समस्त पृथिवीकी राजनीतिका मूलमन्त्र है। राज्य-शासनका मूलमन्त्र, प्रजाकी रक्षाके हेतु दुष्टोंका दमन करना है। अर्थात् बहुतोंके हितके लिये एकको दण्ड देना उचित है। समाजकी रक्षाके लिये हत्यारेकी हत्या करनी चाहिये। जिसके कैद न करनेसे हजारों मनुष्योंके प्राण जाते हों उसे पकड़कर कैद करना चाहिये। यही ज्ञानियोंका उपदेश है। यूरपके समस्त राजाओं और मन्त्रियोंने मिलकर इसी हेतु सन् १८१५ ई० में नेपोलियनको आजन्मके लिये कारागारमें भेजा था। इसी लिये महानीतिज्ञ श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको सलाह दी कि दुर्योधनको कैद कर पाण्डवोंसे सुलह कर लीजिये। उन्होंने यह भी कहा कि देखिये मैंने यदुवंशकी रक्षाके लिये अपने मामा कंसतकको मार डाला। पर श्रीकृष्णकी बात नहीं मानी गयी।

इधर दुर्योधन बिगड़कर कृष्णको कैद कर लेनेके लिये कर्णसे सलाह करने लगा।

सात्यकी, कृतवर्म्मा आदि कृष्णके भाईबन्धु सभामें उपस्थित थे। सात्यकी कृष्णका बड़ा भक्त और प्रिय था। वह अस्त्रविद्यामें अर्ज्जुनका शिष्य और वीरतामें उसके ही समान था। महा बुद्धिमान सात्यकीको दुर्योधनका अभिप्राय मालूम हो गया। उसने कृतवर्म्माको ससैन्य नगरद्वारपर तैयार रहनेके लिये कहकर कृष्णसे सारा हाल कह दिया। फिर भरी सभामें धृतराष्ट्रसे कहा। विदुरने सुनकर धृतराष्ट्रसे कहा,

"आगमें गिरकर जिस तरह पतङ्ग जल जाते हैं उसी तरह क्या यह भी नहीं जल मरेंगे? श्रीकृष्ण चाहें तो युद्धमें परास्त कर सबको यमपुर भेज देंगे।" इत्यादि।

पीछे कृष्णने जो कुछ कहा वह वास्तवमें आदर्श पुरुषके योग्य है। वह बलवान थे, इसीसे क्षमाशील और क्रोधशून्य थे। वह धृतराष्ट्रसे बोले:

"सुनता हूं कि दुर्योधन आदि गुस्सा होकर मुझे कैद करना चाहते हैं। पर आप आज्ञा कर देखिये कि मैं उनपर आक्रमण करता हूं या वह मुझपर करते हैं। मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि मैं अकेला ही इन सबकी खबर ले सकता हूं। पर मैं निन्दित और पापजनक काम कुछ नहीं करूंगा। पाण्डवोंका धन लेनेके लालचमें आपके लड़के ही अपना नाश आप करेंगे। वास्तवमें यह मुझे पकड़नेकी इच्छा कर युधिष्ठिरकी भलाई ही कर रहे हैं। मैं आज ही इन्हें और इनके पिछलगोंको कैद कर पाण्डवोंके हवाले कर सकता हूं, इसमें मुझे पापभागी भी नहीं बनना पड़ेगा। पर आपके सामने ऐसा क्रोध और पापबुद्धिजनित गर्हित काम मैं नहीं करूंगा। मैं आज्ञा देता हूं कि दुष्ट लोग दुर्योधनके इच्छानुसार ही काम करें।" (१)

यह सुनकर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको बुलवा भेजा और आनेपर फटकारा। कहा:

(१) कालीप्रसन्न सिंहके बङ्गला महाभारतकी बड़ी प्रशंसा है, इसलिये मैंने मूलसे बिना मिलाये ही उनका अनुवादित अंश

"तू बड़ा कठोर, पापी और नीच है। इसीसे यह अयश दिलानेवाला साधुओंके अयोग्य असाध्य पाप करनेके लिये तू तैयार हुआ है। कुलद्रोही मूढ़ोंकी तरह दुष्टोंके साथ मिलकर तू दुर्द्धर्ष जनार्द्दनको पकड़ रखना चाहता है। बालक जिस प्रायः उद्धृत किया है। किन्तु कृष्णकी इस उक्तिमें कुछ असम्बद्ध दोष पाया जाता है, जैसे एक ठौर वह कहते हैं कि इस काममें मुझे पापभागी भी नहीं बनना पड़ेगा और इसके बाद ही दो पंक्ति नीचे उसी कामको पापजनित कहते हैं। इसपर मूलसे मिलाकर देखा। मूलमें यह दोष नहीं है। मूल यों है

राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा।
एते वा मामहं चैनाननुजानीहि पार्थिव॥
एतान् हि सर्व्वान् संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे।
न चाहं निन्दितं कर्म कुर्य्यात् पापं कथञ्चन॥
पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान् हास्यन्ति ते सुताः।
एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः॥
अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत।
निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्करं भवेत्॥
इदन्तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म्म भारत।
सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम्॥
एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत्।
अहन्तु सर्व्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप॥

"किं दुष्करं भवेत्, का अर्थ—"पापभागी नहीं बनना पड़ेगा"

प्रकार चन्द्रमाको पकड़ना चाहता है उसी प्रकार तू भी इन्द्रादि देवताओंसे भी न जीते जानेवाले केशवको पकड़नेकी इच्छा करता है। देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और मनुष्य भी जिसका सामना नहीं कर सकते उन केशवको क्या तू नहीं जानता है? बेटा, हाथोंसे हवा नहीं पकड़ी जाती है, हथेलीसे आग नहीं छूई जा सकती है, सिरपर पृथ्वी कभी उठायी नहीं जा सकती और न बलसे केशव ही पकड़े जा सकते हैं।"

विदुरने भी दुर्योधनको डांटा। विदुरके चुप होनेपर वासुदेव बड़े जोरसे खिलखिला उठे। पीछे सात्यकी और कृतवर्म्माका हाथ पकड़ चल दिये।

यहांतक तो महाभारतमें जो कुछ लिखा है वह सुसंगत और स्वाभाविक है, किसी तरहकी गड़बड़ नहीं है। न अलौनहीं है। इसका मतलब यह जान पड़ता है कि "दुर्योधन मुझे कैद करना चाहता है, मैं यदि उसे ही अभी पकड़कर ले जाऊं तो क्या यह बुरा काम होगा?" अर्थात् दुर्योधनको कैद कर ले जाना बुरा काम नहीं है, क्योंकि बहुतोंकी भलाईके लिये एकको त्यागना श्रेय है। इस हेतु कृष्णने धृतराष्ट्रसे दुर्योधनको कैद करनेके लिये कहा था। अगर कृष्ण उस समय उसे कैद करते तो लोग यही कहते कि उन्होंने क्रोधमें आ ऐसा किया। क्योंकि अबतक उन्होंने ऐसा करना नहीं विचारा था। जो काम क्रोधवश किया जाता है वह पापबुद्धिजनित है। आदर्श पुरुषको इस निन्दित कामसे बचना चाहिये।

किक है और न अविश्वासके योग्य ही कुछ है। पर क्षेपक मिलानेवालोंसे यह नहीं देखा गया। क्षेपक मिलानेके लिये उनके हाथ खुजलाने लगे। उन्होंने सोचा कि इतनी बड़ी घटना हो गयी उसमें एक भी अस्वाभाविक और अद्भुत बात नहीं, फिर भला कृष्णकी ईश्वरता कैसे बनी रहेगी ? कदाचित् यही सोच विचारकर उन्होंने कृष्णके हंसने और उठकर चल देनेके बीचमें विराट् रूप घुसेड़ दिया। भीष्मपर्व्वके भगवद्गीता-पर्व्वाध्यायमें फिर विराट् रूपका (यह चाहे क्षेपक हो या न हो) वर्णन आया है। इन दोनों विराट् रूपोंके वर्णनमें बड़ा भेद है। गीताके ग्यारहवें अध्यायमें विराट् रूपका जो वर्णन है वह प्रथम श्रेणीके कविकी रचना है। साहित्य जगत्में वैसी रचना दुर्लभ है। पर भगवद्यान पर्व्वाध्यायमें विराट् रूपका वर्णन जिसका लिखा है उसके लिये काव्यरचना विडम्बनामात्र है। भगवद्गीताके ग्यारहवें अध्यायमें भगवान श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं, "तुम्हारे सिवा और किसीने यह रूप पहले नहीं देखा है।" पर यहां कौरव सभामें दुर्योधनादि वह रूप पहले ही देख चुके थे। फिर उसी अध्यायमें भगवान कहते हैं, "तुम्हारे सिवा और कोई मनुष्य वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, दान, क्रिया और कठोर तपस्या करके भी मेरा यह रूप नहीं देख सकता है।" पर कुकवियोंकी कृपासे कौरव सभामें ऐरों गैरोंने भी विराट् रूप देख लिया। गीतामें यह भी लिखा है कि "अनन्य भक्तिसे ही मेरा यह रूप लोग जान वा देख सकते हैं और तत्वज्ञानसे ही उसमें लीन हो

सकते हैं।" पर यहां दुष्ट, पापात्मा, भक्तिशून्य शत्रुओंने भी विराट्‌रूपका अवलोकन किया।

मूर्ख भी कोई काम बिना प्रयोजन नहीं करता है। और जो विश्वरूपी है उसका कहना ही क्या है। यहां विराट् रूप दिखलानेकी कुछ आवश्यकता नहीं थी। दुर्योधनादि श्रीकृष्णको पकड़ रखनेका विचार करते थे, कुछ चेष्टा उन्होंने नहीं की। बाप और चाचाकी फटकार सुन दुर्योधन चुप हो गया था। अगर वह कुछ जोर भी करता तो उसकी कुछ न चलती। कृष्ण स्वयं इतने बली थे कि बलपूर्वक उन्हें कोई नहीं पकड़ सकता था। यह धृतराष्ट्रने कहा, विदुरने कहा और स्वयं कृष्णने भी कहा था। यदि कृष्णको अपने बचावकी सामर्थ्य न होती तो भी कुछ चिन्ता न थी, क्योंकि सात्यकी, कृतवर्मा आदि वृष्णिवीर उनकी सहायताके लिये तैयार थे। उनकी फाटकपर खड़ी थी। दुर्योधनकी सेनाके बारेमें कुछ नहीं लिखा है। इसलिये उन्हें बलपूर्व्वक पकड़ लेनेकी कुछ सम्भावना न थी। सम्भावना होनेपर भी डर जायं ऐसे कापुरुष कृष्ण नहीं थे। जो विराट्-रूप है उसके लिये भयकी सम्भावना नहीं। इसलिये विराट्‌रूप दिखानेका यहां कोई कारण नहीं था। ऐसी अवस्थामें क्रुद्ध या दाम्भिक मनुष्योंको छोड़ और कोई शत्रुको डरानेका प्रयत्न नहीं करता है। जो विश्वरूप है वह क्रोधशून्य और दम्भशून्य है।

इसीलिये यहां विराट्‌रूपकी कथा कुकविकी अलीक रचना समझ छोड़ देना ही उचित है। मैं वारंवार दिखला चुका हूं कि

कृष्णने मानुषी शक्तिसे ही काम लिया है दैवीसे नहीं। यहां इसके विपरीत करनेका कुछ कारण नहीं दिखाई देता है।

कुरु-सभासे उठकर श्रीकृष्ण कुन्तीसे बातचीत करने गये। वहांसे उपप्लव्य नगर चले। वहां पाण्डव थे। चलनेके समय उन्होंने कर्णको अपने रथपर बिठा लिया।

कृष्णको पकड़कर रखनेका विचार जिन्होंने किया था उनमें ही कर्ण भी था। कर्णको रथपर बिठाकर कृष्ण क्यों चले, यह अगले परिच्छेदमें बताऊंगा। इससे कृष्णचरित्र और भी साफ हो जाता है। साम और दण्डनीतिमें कृष्णकी नीतिज्ञता दिखा चुका हूं। अब भेदनीतिकी पारदर्शिता दिखाऊंगा। साथ ही यह भी दिखलाऊंगा कि कृष्ण आदर्श पुरुष थे। उनकी दया, उनकी बुद्धि और उनकी लोकहितकी कामना अलौकिक थी।

आठवां परिच्छेद।

कृष्ण-कर्ण संवाद।

कृष्ण दयामय थे, वह सब जीवोंपर दया करते थे। महायुद्धमें असंख्य प्राणियोंका नाश होगा, इससे कोई क्षत्रिय व्यथित नहीं हुआ, केवल कृष्ण ही इसके लिये व्यथित थे। विराट नगरमें जब युद्धका प्रस्ताव हुआ था तब कृष्णने युद्धके विरुद्ध मत दिया था। अर्जुन जब युद्धका निमंत्रण देने गये

तब कृष्णने अस्त्र न धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। पर युद्ध बन्द नहीं हुआ। अब दूसरा उपाय न देख निराश हो वह सन्धिके लिये हस्तिनापुर आये। पर वहां भी कुछ नहीं हुआ। प्राणिहत्या न रुक सकी। तब वह दूसरा उपाय सोचने लगे।

कर्ण महावीर था। वह अर्जुनके तुल्य रथी था। दुर्योधन कर्णके भरोसे ही क्रूरता और युद्ध करनेके लिये तैयार था। यदि कर्ण उसकी पीठपर न होता तो वह कदापि युद्धका नाम न लेता। कर्ण अगर पाण्डवोंकी ओर आ जाय तो दुर्योधन युद्धसे हाथ खेंच लेगा। श्रीकृष्णने यही सब सोचकर एकान्तमें बातचीत करनेके लिये कर्णको रथपर बिठा लिया था।

कृष्णको अपना मतलब निकालनेका सहज उपाय भी मालूम था जो और कोई नहीं जानता था।

कर्णको लोग अधिरथ नामक सूतका पुत्र जानते थे। वास्तवमें वह अधिरथका पुत्र नहीं था। उसे उसने पुत्रवत् पाला जरूर था। कर्णको यह नहीं मालूम था। वह अपने जन्मकी भी बात नहीं जानता था। वह सूतपत्नी राधाके गर्भसे नहीं हुआ था। वह सूर्यके वीर्य्य और कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। जिस समय कर्णका जन्म हुआ उस समय कुन्ती क्वारी थी इससे उसने उसे फेंक दिया था। वास्तवमें कर्ण युधिष्ठिरादि पाण्डवोंका ज्येष्ठ सहोदर था। यह बात कुन्तीके सिवा और कोई नहीं जानता था। हां, कृष्ण जानते थे; क्योंकि उनकी

अलौकिक बुद्धिके आगे सब बातें आप ही प्रगट हो जाती थीं। कुन्ती उनकी बूआ थी। भोजराजके यहां यह घटना हुई थी। इससे मनुष्य बुद्धिसे उसका जान लेना असम्भव नहीं था।

कृष्ण यही बात रथपर बैठे कर्णको सुनाकर बोले "शास्त्रज्ञोंने कहा है कि जो कन्याका पाणिग्रहण करता है वही उस कन्याके सहोड़ (१) और कानीन (२) पुत्रोंका पिता होता है। हे कर्ण, तुम भी अपनी माताकी कन्यावस्थाके उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम धर्मसे उसके पुत्र हो। इसलिये चलो, धर्मशास्त्रके विरुद्ध (३) भी तुम राजेश्वर होगे।" उन्होंने कर्णको

(१) सहोड़=गर्भवती कुमारी कन्याका पुत्र जो विवाह होनेपर उत्पन्न होता है।

(२) कानीन=कुमारी कन्याका पुत्र। भाषान्तरकार।

(३) यह "विरुद्ध" शब्द कालीप्रसादसिंहके अनुवादमें है पर यहां असंगत मालूम होता है। मेरे पास जो मूल महाभारत है उसमें है—

"निग्रहाद्धर्मशास्त्राणाम्।" यदि "निग्रहार्थमशास्त्राणाम्" हो तो अर्थ संगत हो जाय।

पीछे मालूम हुआ कि इसका एक पाठ "निग्रहाद्धर्मशास्त्राणाम्" भी है। यहां निग्रहका अर्थ मर्यादा है। यथा

"निग्रहो भर्त्सनेऽपि स्यात् मर्य्यादायाञ्च बन्धने।" इति मेदिनी।

"निग्रहो भर्त्सने प्रोक्तो मर्य्यादायाञ्च बन्धने।" इति विश्वः।

"नियमेन विधना ग्रहणं निग्रहः।" इति चिन्तामणिः।

यह समझा दिया कि तुम बड़े हो इसलिये तुम ही राजा होगे और पांचों पाण्डव तुम्हारी आज्ञामें रहकर सेवा करेंगे।

श्रीकृष्णके इस परामर्शसे सबका भला होता और धर्म्म बढ़ता। पहले कर्णको ही लीजिये। अगर वह कृष्णका कहना मान लेता, तो उसके राजेश्वर बननेमें क्या देर थी? फिर भाइयोंसे शत्रुताकी जगह मित्रता हो जाती और इससे धर्म्म बढ़ता। इससे दुर्योधनका भी भला होता। युद्ध होनेसे उसका राज्य ही नहीं सारा वंश नष्ट होगया। अगर युद्ध न होता, तो राज्य भी बच जाता और सबके प्राणोंकी रक्षा होती। हां, पाण्डवोंका हिस्सा जरूर लौटाना पड़ता। इससे पाण्डवों-की भी भलाई होती। वह फिर अपने भाईबन्दों तथा अगणित प्राणियोंकी हत्यासे बच जाते और कर्णके साथ आनन्दसे राज्य-का सुख भोगते। सबसे हित और धर्म्मकी बात इससे यह होती कि अगणित मनुष्योंके प्राणोंकी रक्षा होती।

कर्णने कृष्णके परामर्शकी उपयोगिता स्वीकार की, पर लाचार था। वह जानता था कि युद्धमें दुर्योधनकी जीत नहीं होगी। पर तो भी कृष्णकी बात न मान सका, क्योंकि उसे कलङ्कका टीका लगता। वह बुरी तरह फंस गया था। अधिरथ और राधाने उसका पालन पोषण किया था। उनके यहां रहकर उसने सूतवंशकी कन्यासे ब्याह किया था। और उससे बेटे पोते भी हो चुके थे। भला उन्हें वह किस तरह छोड़ देता? इसके सिवा वह तेरह वर्षसे दुर्योधनके यहां राज्य

सुख भोग रहा था। ऐसी दशामें दुर्योधनका साथ छोड़कर पाण्डवोंकी ओर जाता, तो उसकी बड़ी बदनामी होती। लोग यही कहते कि कर्ण बड़ा कृतघ्न है, लालची है, डरपोंक है, पाण्डवोंसे डर गया। यही सब सोचकर कर्णने कृष्णकी बात नहीं मानी।

कृष्ण बोले, "मेरी बात तुम्हारे चित्तमें नहीं बैठी तो अवश्य ही पृथिवीका संहार होने वाला है।"

कर्णने इसका उपयुक्त उत्तर दिया। फिर कृष्णसे गले गले मिलकर उदासभावसे वह लौट गया।

कृष्णचरित्र समझानेके लिये कर्णचरित्रकी विस्तृत आलोचना व्यर्थ है। इससे उस विषयमें कुछ नही लिखा। कर्णका चरित्र बड़ा मनोहर और महत्त्वपूर्ण है।

नवां परिच्छेद।

—:-०-:

उपसंहार।

श्रीकृष्णके लौट आनेपर युधिष्ठिरने पूछा, कहो हस्तिनापुर जाकर क्या कर आये ?

इसपर श्रीकृष्ण अपनी तथा औरोंकी कही हुई बातें दुहरा गये। पर पिछले अध्यायोंमें जो बातें हैं उनसे इनका कुछ भी मेल नहीं है। मेल होनेसे पुनरुक्ति हो जाती। शायद इसीसे किसी महापुरुषने यह राग अलापा है।

भगवद्यान-पर्वाध्याय यहीं समाप्त होता है। फिर सैन्य-

निर्याण-पर्व्वाध्याय है। इसमें कामकी बात कुछ नहीं है। इसकी कुछ कथाएं मौलिक और अमौलिकसी मालूम होती हैं। कृष्णके बारेमें विशेष कुछ नहीं है। कृष्ण और अर्ज्जुनके परामर्शके अनुसार पाण्डवोंने धृष्टद्युम्नको सेनापति नियुक्त किया। बलरामने मदिरा पीकर कृष्णको थोड़ी डांट बतायी और कहा कि तू कौरव पाण्डवोंको एक दृष्टिसे नहीं देखता है। कौरव-सभामें जो कुछ हुआ था उसकी भी थोड़ी चर्चा है। बस इसके सिवा और कुछ नहीं है।

इसके बाद उलूक-दूतागमन पर्व्वाध्याय है। यह बिलकुल ही गया बीता है। इसमें गाली गुफताके सिवा और कुछ नहीं है। दुर्योधन और शकुनी वगैरहने सलाह कर उलूकको पाण्डवोंके पास भेजा। उसने आकर पाण्डवों और कृष्णको खूब गालियां दी। पाण्डवोंने भी उनका मुंहतोड़ जवाब दिया। कृष्णने विशेष कुछ नहीं कहा। क्योंकि उनके जैसा मनुष्य, जिसे गुस्सा छू भी नहीं गया, गाली गलौज नहीं करता है। बल्कि बात बढ़ न जाय इसलिये उन्होंने उलूकको पहिले ही विदा कर देनेकी चेष्टा की थी। वह उलूकसे बोले "जल्द जाकर दुर्योधनसे कह दे कि पाण्डवोंने तुम्हारी बातें समझ लीं। अब तुम्हारी जो इच्छा है वही होगी।" इतना करनेपर भी कृष्ण और अर्ज्जुनको ज्यादे गालियां सुननी पड़ीं।

उलूक माननेवाला आदमी न था, क्योंकि वह दुर्योधनका सगा भाई था। वह फिर गालियोंकी फुलझड़ी छोड़ने लगा।

पाण्डवोंने ब्याज समेत उसकी गालियां लौटा दीं। कृष्ण भी चुप न रह सके। बोले कि, "मैं युद्ध न करूंगा, शायद इसीसे तुम लोगोंका मिजाज बढ़ गया है, पर याद रखो जिस तरह आग तिनकोंको जलाकर खाक कर डालती है उसी तरह मैं भी क्रोधकर अन्तमें सारी पृथिवीको भस्म कर डालूंगा।"

उलूकदूतागमन-पर्व्वाध्यायसे महाभारतकी लड़ाईका कुछ सरोकार नहीं है। इसमें न रचनाचातुर्य्य है और न कविता ही है। बल्कि कहीं कहीं इसमें ऐसी बातें हैं जो महाभारतकी और और कथाओंसे विरुद्ध पड़ती हैं। अनुक्रमणिकाध्यायमें सञ्जय और कृष्णके दूतकर्म्मकी कथा है, पर उलूककी नहीं है। इन कारणोंसे पहली तहमें इसे नहीं मानता हूं।

इसके उपरान्त रथातिरथसंख्यान और फिर अश्वोपाख्यान पर्व्वाध्याय हैं। इनमें कृष्णकी कुछ भी चर्चा नहीं है। बस यहीं उद्योगपर्व्व समाप्त होता है।

इति पञ्चम खण्ड।

षष्ठ खण्ड ।

यो निषण्णो भवेद्रात्रौ दिवा भवति विष्ठितः ।

इष्टानिष्टस्य च द्रष्टा तस्मै द्रष्टात्मने नमः ॥

शान्तिपर्व ४७ अध्याय ।

कुरुक्षेत्र ।

पहला परिच्छेद ।
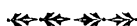
भीष्मका युद्ध ।

अब कुरुक्षेत्रका महायुद्ध आरम्भ होता है। इसका वर्णन महाभारतके चार पर्व्वोंमें है। दुर्य्योधनके सेनापतियोंके नामों-पर इन चारों पर्व्वोंके नाम क्रमसे भीष्मपर्व्व, द्रोणपर्व्व, कर्ण-पर्व्व और शल्यपर्व्व रखे गये हैं।

इन युद्धपर्व्वोंको महाभारतका निकृष्ट अंश समझना चाहिये, क्योंकि पुनरुक्ति, अत्युक्ति, असङ्गति और अरुचिकर, अस्वाभाविक तथा अनावश्यक वर्णनसे यह परिपूर्ण हैं। इनका बहुत थोड़ा भाग पहली तहके अन्तर्गत जान पड़ता है। कितना अंश मौलिक और कितना अमौलिक है, यह स्थिर करना बड़ा कठिन है। कांटोंमेंसे फूल चुन लेना टेढ़ी खीर है। खैर, कृष्णके सम्बन्धमें जहां जो बात मिलेगी उसकी आलोचनाके लिये यथा-साध्य चेष्टा करूंगा।

भीष्मपर्व्वके आरम्भमें जम्बूखण्ड-विनिर्म्माण-पर्व्वाध्याय है। इसका युद्धसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। महाभारतसे भी स्वल्प

हा है। श्रीकृष्णके बारेमें तो एक शब्द भी नहीं है। इसके बाद भगवद्गीता-पर्व्वाध्याय है। इसके पहले चौबीस अध्यायोंके बाद गीताका आरम्भ होता है। इन चौबीस अध्यायोंमें कृष्णकी कुछ विशेष बात नहीं है। युद्धके पहले श्रीकृष्णने अर्जुनसे दुर्गास्तव पाठ करनेके लिये कहा। अर्ज्जुनने पाठ कर लिया। अपने अपने विश्वासके अनुसार देवताओंकी आराधना कर किसी बड़े काममें हाथ लगाना चाहिये। इससे परमात्माकी आराधना होती है। परमात्मा एक ही है। चाहे जिस नामसे पुकारो।

फिर गीता है। कृष्णचरित्रका यही प्रधान अंश है। इस अनुपम, पवित्र गीतोक्त धर्म्मसे ही कृष्णके आदर्श मनुष्य या देवता होनेका विशेष परिचय मिलता है।

पर मैं गीताके बारेमे यहां कुछ न कहूंगा, क्योंकि गीताका धर्म्म अलग पुस्तकोंमें कुछ थोड़ासा समझाया है। एक लिख चुका हूं (१) ओर दूसरी लिख रहा हूं (२)। गीतासम्बन्धो मेरे विचार इन्हीं दोनों पुस्तकोंमें मिलेंगे। यहां फिर दुहरानेकी जरूरत नहीं है।

भगवद्गोता-पर्व्वाध्यायके बाद भीष्मवध-पर्व्वाध्याय है। यहीं युद्धका आरम्भ है। कृष्ण युद्धमें अर्ज्जुनके सारथी मात्र हैं। सारथी बड़े अभागे होते थे। महाभारतमें जिन युद्धोंका वर्णन है वह प्रायः दो दो रथियोंमें हुए हैं। रथी एक दूसरेके

(१) उसका नाम "धर्म्मतत्व" है।

(२) गीताकी बंगला टीका।

घोड़े और सारथीको मार गिरानेकी चेष्टा करता है। इसका कारण यह है कि घोड़े और सारथीके गिरनेसे रथ नहीं चल सकता है। और रथके न चलनेसे रथी निकम्मा हो जाता है। सारथी बेचारे न लड़ते हैं और न लड़ना जानते हैं। पर तो भी विना अपराध और विना लड़े रणभूमिमें काम आते हैं। श्रीकृष्णको भी यही पापड़ बेलने पड़े थे। उनके प्राण नहीं गये, पर अट्ठारह रोजमें वाणोंके मारे उनकी देह चलनी हो गयी। और सारथी अपनी रक्षा आप नहीं कर सकते थे, क्योंकि वह क्षत्रिय नहीं वैश्य थे। पर कृष्ण आत्मरक्षामें समर्थ होकर भी कर्त्तव्यके अनुरोधसे चुपचाप बैठे मार खाते थे।

कह चुका हूं कि श्रीकृष्णने युद्धमें अस्त्र न धारण करनेकी प्रतिज्ञा की थी। पर एक दिन उन्होंने अस्त्र धारण किया। केवल धारण ही किया, चलाया नहीं था। इसकी घटना इस प्रकार है :

भीष्म दुर्योधनके सेनापति होकर युद्ध करते थे। वह युद्धमें ऐसे निपुण थे कि पाण्डवोंकी सेनामें अर्ज्जुनको छोड़ और कोई उनके समान नहीं था। पर अर्ज्जुन जी खोलकर उनके साथ युद्ध नहीं करता था। क्योंकि वह अर्ज्जुनके बाबा थे और उन्होंने ही अनाथ पाण्डवोंको लड़कपनमें पाला पोसा था। भीष्म उस समय दुर्योधनके अनुरोधसे निरपराध पाण्डवोंके शत्रु बनकर अनिष्ट करनेके लिये उनके साथ युद्ध करते हैं। इसलिये उन्हें मार डालना अर्ज्जुनका धर्म्म था। पर तोभी

पुरानी बात याद कर अर्ज्जुन उनके साथ लड़नेमें किसी तरह राजी नहीं था। इस हेतु वह भीष्मसे बहुत बचा बचाकर लड़ता था, पर भीष्म पाण्डवसेनाके अच्छे अच्छे वीरोंको बेतरह काट रहे थे। यह देखकर श्रीकृष्ण एक रोज रथसे कूद पड़े और भीष्मको मारनेके लिये चक्र ले स्वयं दौड़े।

कृष्णको आते देखकर कृष्णभक्त भीष्म परमानन्दित हो बोल उठे :—

"एह्येहि देवेश जगन्निवास !
नमोस्तु ते माधव चक्रपाणे !
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ !
रथोत्तमात् सर्व्वशरण्य संख्ये ॥"

अर्थात्

आओ ! आओ ! देवोंके ईश ! जगत्के निवास ! हे चक्रधारी माधव ! तुम्हें नमस्कार है। हे लोकनाथ ! सबकी शरण ! युद्धमें शीघ्र ही मुझे इस उत्तम रथसे गिराओ।

कृष्णको जाते देख अर्ज्जुन भी उनके पीछे चला। उन्हें समझा बुझाकर लौटा लाया और उसने जी खोलकर लड़नेकी प्रतिज्ञा की।

इसका वर्णन दो बार हुआ है, एक तो तीसरे दिनकी लड़ाईमें और दूसरे, नवें दिनकीमें। दोनों स्थानोंमें श्लोक एक ही है। इसलिये लिखनेवालेने भूलसे या जानबूझकर एक ही घटना दो बार लिखी है। संस्कृत ग्रन्थोंमें प्रायः ऐसा होता

है। इसकी रचनाशैलीपर विचार करनेसे यह महाभारतकी पहली तहकी रचना कही जा सकती है। कविता प्रथम श्रेणी-की, भाव और भाषा उदार तथा सरल हैं। पहली तहमें जितनी मौलिकता हो सकती है उतनी ही इसमें भी है।

कृष्णकी प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें कृष्णभक्तोंने इस घटनाके सहारे एक नयी बात गढ़ डाली है। काशीदास (१) तथा कथक्कड़ोंने इस प्रतिज्ञाभंगपर कृष्णका माहात्म्य कीर्त्तन किया है। उनका कहना है कि जैसे कृष्णने प्रतिज्ञा की कि मैं अस्त्र धारण न करूंगा वैसे ही भीष्मने भी प्रतिज्ञा की थी कि मैं कृष्णसे अस्त्र धारण कराऊंगा। इसलिये भक्तवत्सल कृष्णने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर अपने भक्तकी प्रतिज्ञा रख ली।

अक्ल लड़ाकर यह बात गढ़नेकी कुछ जरूरत नहीं मालूम होती है। मूल महाभारतमें भीष्मकी प्रतिज्ञा कहीं नहीं मिलती है। कृष्णकी भी प्रतिज्ञा भंग नहीं होती है उनकी प्रतिज्ञाका मत-लब यही है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा। दुर्योधन और अर्ज्जुन दोनोंने एक ही समय युद्धमें चलनेका न्योता दिया, तो उन्होंने दोनोंके साथ समान बर्त्ताव करनेके लिये कहा, "मेरे समान बलवाली मेरी नारायणी सेना एक आदमी ले और एक आदमी मुझे ले।" "अयुद्धमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः।" बस यही उनकी प्रतिज्ञा है और यह पूरी भी हुई। कृष्णने युद्ध नहीं किया। चक्र लेकर उनके दौड़नेका उद्देश्य और कुछ नहीं था,

(१) बंगला महाभारतके रचयिता। भाषान्तरकार।

केवल लड़नेके लिये अर्ज्जुनको उत्तेजित करना था। सारथी बराबर ऐसा करते थे और उससे फल हुआ भी था।

युद्धके नवें दिन रातको कृष्णने ऐसे ही एक बात कही थी। भीष्मको हारते न देख युधिष्ठिर भाईबन्दोंको नवीं रात बुलाकर भीष्मके मारनेकी सलाह करने लगे। कृष्ण बोले कि मुझे आज्ञा दीजिये मैं भीष्मको अभी मारता हूं या अर्ज्जुनसे कहिये वह भी यह काम कर सकता है।

युधिष्ठिर इसपर राजी नहीं हुआ। वह जानता था कि कृष्ण चाहें तो भीष्मका वध कर सकते हैं। पर उसने कहा कि अपने गौरवके हेतु तुम्हें मैं मिथ्यावादी नहीं बनाया चाहता हूं। तुम अयुध्यमान यानी बिन लड़े ही मेरी सहायता करो। युधिष्ठिरने अर्ज्जुनके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा। पीछे कृष्णकी रायसे वह अपने भाइयों और कृष्णको ले भीष्मके मारनेका उपाय पूछने भीष्मके पास गया।

भीष्मने अपने मरनेका उपाय आप ही बता दिया। देखनेमें तो काम वैसा ही हुआ जैसा उन्होंने बताया था, पर वास्तवमें वैसा नहीं हुआ। कृष्णने जो कहा था, वही हुआ। अर्जुनने ही भीष्मको रथसे गिराकर शरशय्यापर सुलाया था। दूसरी तहके कविने मूल महाभारतपर अपनी कलम चलाकर शिखंडीका एक किस्सा गढ़ डाला जो असङ्गत और अनावश्यक है तथा पहले देखनेमें तो मनोहर, पर पीछे नहीं है। कृष्णचरित्रसे इसका कुछ सम्बन्ध नहीं, इसलिये इसकी आलोचनामें हाथ नहीं लगाया।

दूसरा परिच्छेद ।

जयद्रथवध ।

भीष्मके बाद द्रोणाचार्य्य सेनापति हुए। द्रोणपर्व्वके आरम्भमें कृष्णको कोई विशेष काम करते नहीं देखता हूं। वह निपुण सारथियोंकी तरह अपना काम किये जाते थे। यह बात सोलहों आने झूठ है कि कुरुक्षेत्र युद्धके कर्त्ता धर्त्ता और नेता श्रीकृष्ण थे। हां, बीच बीचमें युधिष्ठिर और अर्जुनको नेक सलाह वह जरूर दे देते थे। इसके सिवा वह कुछ न करते थे। द्रोणाभिषेक–पर्व्वाध्यायोंमें ग्यारहवें अध्यायमें सञ्जयने कृष्णके बलविक्रमकी बड़ी महिमा गायी है। पर इससे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता है। यह अध्याय क्षेपक मालूम होता है। कृष्णके बल-विक्रम-वर्णनका अभाव भी महाभारतमें या और कहीं नहीं है। मैं उनके मानवचरित्रकी समालोचना करनेका इच्छुक हूं। मानवचरित्र कामोंसे प्रगट होता है, इसलिये उनके केवल कार्योंका ही अनुसन्धान करूंगा।

द्रोणपर्व्वके आरम्भमें भगदत्तवधके समय कृष्णकी भी कुछ करतूत है। भगदत्त महावीर था। पाण्डवोंकी ओरसे जब कोई उसका सामना न कर सका, तब अर्ज्जुन आकर उससे भिड़ा। भगदत्तने अपनेको अशक्त देख अर्ज्जुनपर वैष्णवास्त्र चलाया। अर्ज्जुन या और कोई उसे नहीं रोक सकता था। इस-

लिये कृष्णने अर्ज्जुनको पीछे रख वह अस्त्र अपनी छातीपर रोक लिया। वह उनकी छातीपर वैजयन्ती माला हो गया।

यह अस्त्र अनैसर्गिक और कल्पनातीत है। जो अनैसर्गिक है उसे माननेके लिये मैं पाठकोंसे नहीं कहता। और यह किसी सत्यका आधार भी नहीं हो सकता है। इससे यह छोड़नेके ही योग्य है।

यदि सच पूछिये तो श्रीकृष्ण द्रोणपर्व्वमें अभिमन्युवधके बाद कार्यक्षेत्रमें आते हैं। जिस दिन सप्तरथियोंने अन्यायसे अभिमन्युको घेरकर मारा था उस दिन कृष्ण और अर्ज्जुन वहां नहीं थे। वह कृष्णकी नारायण सेनासे लड़ रहा था। कृष्णने यह सेना दुर्योधनको दी थी। एक ओर स्वयं रहकर और दूसरी ओर अपनी सेना भेजकर उन्होंने दोनों पक्षवालोंसे समान बर्त्ताव किया था।

कृष्ण और अर्ज्जुन सन्ध्याको डेरेपर आये, तो उन्होंने अभिमन्युके मारे जानेका समाचार सुना। सुनकर अर्ज्जुन शोकसे बड़ा व्याकुल हो गया (१)। योगेश्वर कृष्णको भला शोकमोहसे क्या काम? उनका पहला काम अर्ज्जुनको समझाना और दिलासा देना था। उन्हों अर्ज्जुनको जो जो बातें कहकर समझाया वह उनके ही योग्य थीं।

उन्होंने गीतामें जो धर्म कहा है उसीके अनुसार यहां भी

(१) ऐसे भी पाठक होंगे जिनसे कहना पड़ेगा कि अभिमन्यु अर्ज्जुनका पुत्र और कृष्णका भानजा था।

अर्ज्जुनको उपदेश दिया। ऋषियोंने युधिष्ठिरको यह कहकर समझाया कि सब ही मरे हैं और सब ही मरते हैं। पर श्रीकृष्णने यह नहीं कहा। उन्होंने कहा, "युद्धजीवी क्षत्रियोंकी यही रीति है। युद्धमें मरना ही क्षत्रियोंका सनातन धर्म्म है।"

अभिमन्युकी माता सुभद्राको श्रीकृष्णने यह कह ढाढ़स दिया कि "कुलीन और धीर क्षत्रियोंको जैसे प्राण त्यागना चाहिये वैसे ही तेरे पुत्रने त्यागा है। इसलिये शोक करना व्यर्थ है। महारथी, धीर और पिताके समान पराक्रमी अभिमन्युने भाग्यसे ही वीरोंकी बांछित गति पायी है। महावीर अभिमन्यु बहुतेरे शत्रुओंका संहार कर पुण्यजनित, सर्वकामप्रद अक्षय लोक गया है। साधु लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्र और प्रज्ञासे जो गति चाहते हैं तेरे पुत्रको वही गति मिली है। हे सुभद्रे! तू वीरजननी, वीरपत्नी, वीरनन्दिनी और वीरभगिनी है, इसलिये शोक करना उचित नहीं है।"

मैं जानता हूं, इन बातोंसे माताका शोक दूर नहीं होता है। पर मैं चाहता हूं कि इस अभागे देशमें ऐसी बातें सुनी और सुनायी जायं।

इधर पुत्रशोकसे आर्त अर्ज्जुन क्रोधमें आकर एक कठिन प्रतिज्ञा कर बैठा। उसने सुना कि अभिमन्युकी मृत्युका कारण जयद्रथ है। बस उसने सौगन्ध खा ली कि कल सूर्य्यास्तके पहले जयद्रथका वध न करूं तो आगमें जल मरूंगा।

अर्ज्जुनकी इस प्रतिज्ञासे दोनों दलोंमें खलबली पड़ गयी।

पाण्डवोंकी सेनामें कुहराम मच गया । बाजे बज उठे । इधर कोलाहल सुन कौरवोंका माथा ठनका । वह टोह लगाकर जयद्रथके बचानेका बांधनू बांधने लगे ।

कृष्णने देखा, बड़ी मुश्किल हुई । अर्ज्जुनने झोंकमें आकर कसम तो खा ली, पर इसका पूरा होना सहज नहीं है । जयद्रथ स्वयं महारथी है, सिन्धु सौवीर देशका अधिपति है, बड़ी सेनाका स्वामी है, और दुर्योधनका बहनोई है । कौरवोंके बांके लड़ाके जहांतक बनेगा उसे बचावेंगे । इधर पाण्डवोंकी ओर अभिमन्युके शोकसे सब ही मुखिया व्याकुल हो रहे हैं - कोई सलाह करना नहीं चाहता है । इसलिये कृष्णने स्वयं अगुआ बनकर कुछ करनेका मनसूबा बांधा । उन्होंने कौरवोंकी छावनी-में जासूस भेजा । जासूसने आकर कहा कि कौरवोंने प्रतिज्ञाकी बात सुन ली है, द्रोणाचार्य व्यूह रचेंगे, और उनके पीछे कर्ण आदि सब कौरव दलके वीर इकट्ठे हो जयद्रथकी रक्षा करेंगे । यह दुर्भेद्य व्यूह भेदकर सब वीरोंको एक साथ पराजित करना और फिर महावीर जयद्रथका बध करना अर्ज्जुनके लिये भी असाध्य हो सकता है । यह असाध्य हो, तो अर्ज्जुनकी आत्म-हत्या निश्चित है ।

कृष्णने सोचसाचकर उपाय ढूंढ़ निकाला । उन्होंने अपने सारथी दारुकको बुलाकर आज्ञा दी कि कल सवेरे अपना रथ सुन्दर घोड़े जोतकर और अस्त्रशस्त्रसे लैस कर तैयार रखना । उन्होंने सोचा कि यदि अर्ज्जुन दिनभरमें व्यूह तोड़कर सब वीरों-

को पराजित न कर सका, तो मैं स्वयं लड़कर जयद्रथवधका पथ परिष्कार कर दूंगा ।

कृष्णको लड़ना न पड़ा । अर्ज्जुनने स्वयं सबको मार भगाया, पर कहीं कृष्णको युद्ध करना ही पड़ता तो उनकी "अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेवतः" यह प्रतिज्ञा भंग न होती । क्योंकि जिस युद्धके लिये उन्होंने प्रतिज्ञा की थी वह यह नहीं था । वह कौरवपाण्डवोंका राज्य सम्बन्धी युद्ध था और यह अर्ज्जुनकी प्रतिज्ञा सम्बन्धी है । इसका उद्देश्य दूसरा है । यह युद्ध जयद्रथ और अर्ज्जुनकी जीवनरक्षाके लिये था । यदि अर्ज्जुन प्रतिज्ञा पूरी न कर सकता तो वह आगमें जल मरता । यह युद्ध पहले नहीं ठना था इसलिये "अयुध्यमानः संग्रामे" इसमें नहीं लगता है । अर्ज्जुन कृष्णका सखा, शिष्य और बहनोई था । इसलिये अर्ज्जुनको आत्महत्यासे बचाना कृष्णका कर्त्तव्य था ।

खैर कृष्ण तथा और सब लोग रातको सो रहे । यहांपर मनगढ़न्त स्वप्नकी एक कहानी है । स्वप्नमें कृष्ण अर्ज्जुनके पास पहुंचे और फिर वहांसे दोनों हिमालय पर्व्वतपर गये । वहां उन्होंने महादेवकी उपासना की । पाशुपत अस्त्र वनवासके समय ही वह पा चुके थे, पर उन्होंने फिर मांगा और पाया इत्यादि । यह बातें समालोचनाके योग्य नहीं हैं ।

दूसरे दिन सूर्य्यास्तके पहले जो अर्ज्जुनने जयद्रथका वध कर डाला । इसमें कृष्णने कुछ भी नहीं किया था । पर तो भी कहा जाता है कि कृष्णने तीसरे पहर सूर्य्यको योग बलसे छिपा दिया

और जयद्रथके मारे जानेपर फिर निकाल दिया। उन्होंने ऐसा क्यों किया ? इसलिये जिसमें सूर्यास्त हुआ है समझकर जयद्रथ अर्ज्जुनके सामने चला आवे और उसके रक्षक प्रसन्न हो असावधान हो जायं। पर इस धोखेबाजीको यहां कुछ जरूरत न थी। सूरज छिपनेके पहले अर्ज्जुन और जयद्रथ एक दूसरेको देखते थे और प्रहार करते थे। और सूरजके छिप जानेपर भी वही हुआ जो पहले होता था। कौरवोंकी ओरके सब वीरोंको हराये बिना अर्ज्जुन जयद्रथको न मार सका था। पर सूरजको छिपानेवाला योगबल इधर इन बातोंको काट रहा है। भ्रम उपजानेवाली इन बातोंकी जरूरत क्यों हुई, यह अगले परिच्छेदमें कहूंगा।

तीसरा परिच्छेद।

दूसरी तहके कवि।

इतनी दूरतक तो हमलोग मजेमें सीधी राहसे चले आये। पर अब रास्ता बड़ा बेढब है। महाभारत एक समुद्र है। इसके स्थिर जलमें नौकापर मृदुगम्भीर शब्द सुनते अबतक हम आ रहे थे। पर अचानक तूफानके आ जानेसे लहरोंके मारे हमारी नौका उथलपुथल हो रही है। अब हम महाभारतकी दूसरी तहके कवियोंके हाथोंमें बेतरह आ पड़े हैं।

इनके हाथोमें पड़कर कृष्णचरित्र बिलकुल ही बदल गया है। जो उदार था वह क्षुद्र और संकीर्ण होता जाता है, जो सीधा सादा था वह चतुराइयोंसे भरा जाता है, जो सत्यसे पूर्ण था वह असत्य और धूर्त्तताका खजाना हो रहा है और जो न्याय और धर्म्मका भाण्डार था वह अन्याय और अधर्म्मसे कलुषित हो रहा है। दूसरी तहके कवियोंके मारे कृष्णचरित्रकी यह दुर्दशा हुई है।

पर क्यों ऐसा हुआ? दूसरी तहके कवि बिलकुल ही गयेबीते नहीं हैं। उनकी रचनाचातुरी चमक रही है। वह धर्म्मा-धर्म्मके ज्ञानसे कोरे नहीं हैं। फिर कृष्णकी ऐसी दशा उन्होंने ? इसका बड़ा गूढ़ कारण है। हम बराबर देखते हैं और देखेंगे कि पहली तहके कविने श्रीकृष्णको कहीं अव-तार नहीं बनाया और न वह स्वयं कभी यह बात मुंहपर लाये हैं। उन्होंने अपनी मानवी प्रकृतिका ही परिचय बारबार दिया और मनुष्यशक्तिसे ही काम लिया है। कविने भी उन्हें प्रायः वैसाही दरसाया है। पहली तह देखनेसे सन्देह भी होता है कि जिस समय यह बनी थी उस समय सब कोई श्रीकृष्णको अवतार नहीं मानते थे। श्रीकृष्णके मनमें भी सब समय यह भाव नहीं उठता था कि मैं अवतार हूं। मतलब यह कि महाभारतकी पहली तह प्राचीन किंवदन्तियोंका संग्रहमात्र है और उनमें काव्यालङ्कारकी भरमार है। आख्यायिकाके ढंगपर यह किंवदन्तियां यथास्थान सन्निवेशित कर दी गयी हैं। पर जब

दूसरी तह महाभारतपर चढ़ी है तब मालूम होता है, कृष्णको सब लोग ईश्वर मानने लग गये थे। इसलिये दूसरी तहके कवियोंने भी उन्हें ईश्वरके अवतारकी तरह जाना और माना है। इनकी रचनासे कृष्ण भी अपनेको अवतार कहते हैं और दैवी शक्तिसे काम लेते हैं। कवि यह भी जानते हैं कि ईश्वर पुण्यमय है। पर एक बात प्रगट करनेके लिये यह बहुत व्यग्र देख जाते हैं। यूरपवाले भी उसीके पीछे दौड़ाते हैं। उनका कथन है कि भगवान दयामय है, दया करके ही उसने सृष्टि की है, वह जावोंका कल्याण ही चाहता है। फिर पृथिवीपर दुःख क्यों है? वह पुण्यमय है, पुण्य ही उसका अभीष्ट है, फिर पृथिवीपर पाप कहांसे आया? ईसाइयोंके लिये इसकी मीमांसा बड़ी कठिन है, पर हिन्दुओंके लिये सहज है। हिन्दुओंके मतसे ईश्वर ही जगत् है। वह स्वयं सुखदुःख और पापपुण्यसे परे है। हम जिसे सुखदुःख कहते हैं वह उसके लिये सुखदुःख नहीं है। हम जिसे पापपुण्य समझते हैं उसके लिये वह कुछ नहीं है। उसने लीलाके लिये यह जगत् बनाया है। जगत् उससे अलग नहीं है उसीका अंश है। उसने अपनी सत्ताको अविद्यासे ढक लिया है, इसीसे वह सुखदुःख, पापपुण्यका आधार हुई है। इसलिये पापपुण्य और सुखदुःख उसकी मायासे उत्पन्न हैं। सुख-दुःख और पापपुण्य उसीसे निकले हैं। उसकी मायासे दुःख मिलता है और उसीकी मायासे लोग पाप करते हैं। कृष्णने

कालियको जब बहुत सताया, तब विष्णुपुराणका रचयिता कालियके मुंहसे कहलाता है:—

"यथाहं भवता सृष्टो जात्यारूपेण चेश्वर ।
स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मम ॥"

अर्थात् आपने मुझे सर्प बनाया इसीसे मैं हिंसा करता हूं ।

प्रहलाद विष्णुके स्तवमें कहता है:—

"विद्याविद्ये भवान् सत्यमसत्यं त्वं विषामृते"। (१)

अर्थात् आप विद्या, आप ही अविद्या, आप सत्य, आप ही असत्य, आप विष और आप ही अमृत हैं ।

उसके सिवा जगत्में कुछ नहीं है। धर्म्म, अधर्म्म, ज्ञान, अज्ञान, सत्य, असत्य, बुद्धि, दुर्बुद्धि, न्याय, अन्याय, सब उसी-से निकले हैं ।

कृष्णने स्वयं गीतामें कहा है:—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥

७ अ० १२ श्लोक

अर्थात् जो सात्त्विक, राजस और तामस भाव हैं वह सब मुझसे ही उत्पन्न हुए जान, मैं उनके अधीन नहीं, वही मेरे अधीन हैं ।

शान्तिपर्व्वमें जहां भीष्म "सत्यात्मने नमः", "धर्म्मात्मने नमः," कह श्रीकृष्णकी स्तुति करते हैं वहीं "कामात्मने नमः"

(१) विष्णुपुराण, १ अंश, ११ अध्याय ।

"घोरात्मने नमः," "कार्यात्मने नमः," "क्रूरात्मने नमः" इत्यादि इत्यादि कह नमस्कार करते हैं। और अन्तमें कहते हैं, "सर्व्वात्मने नमः।" प्राचीन हिन्दूशास्त्रसे ऐसे कितने ही वाक्य उद्धृत कर सैकड़ों पन्ने भरे जा सकते हैं।

यदि यही बात है, तो मैं एक बड़ी बात समझा सकता हूं। दुःख जगदीश्वरका प्रेरित है, इसके सिवा दुःखका और दूसरा कारण नहीं है। जो पापी अपने पापोंके कारण निन्दित और दण्डित हैं उनके बारेमें लोगोंको समझा सकता हूं कि इनकी पापबुद्धि जगदीश्वरकी प्रवर्त्तित है, इसके विचारका मालिक वही है, तुम कौन होते हो?

दूसरी तहके कवि इसी तत्वकी अवतारणामें भीतर ही भीतर लगे थे। श्रेष्ठ कवि आजकलके लेखकोंकी तरह भूमिकामें ही सब बातें कहकर काव्यकी अवतारणा नहीं करते हैं। उनके काव्योंका मर्म्म जाननेके लिये यत्नपूर्व्वक चेष्टा करनी पड़ती है। शेक्सपीअरके एक एक नाटकका मर्म्म समझनेके लिये हजारों प्रतिभाशाली कृतविद्य पुरुषोंने कितना सोचा विचारा तथा लिखा और हमलोग उसके समझनेके लिये कितनी अकल लड़ाते हैं। पर अपने इस अपूर्व्व महाभारतके एक अध्यायका असली भेद जाननेके लिये हमने एक क्षण भी चेष्टा न की। जैसे एक ओर वैष्णव लोग हरिसंकीर्त्तनके समय खोलपर (१) थाप पड़ते ही रोते और धरतीमें लोटते हैं और दूसरी ओर नयी

(१) बंगालका मृदङ्ग विशेष। भा० का०

रोशनीवाले नुइसेन्स (Nuisance) यानी वाहियात कह नाक सकोड़ लेते हैं, वैसे ही एक दल तो हिन्दुओंके प्राचीन ग्रन्थोंके नाम सुनते ही लोटपोट होता और तुच्छ बातें सुनकर भक्ति-रससे देशको बहा देता है और दूसरा सबको ही मिथ्या, उपधर्म्म, अश्राव्य, त्याज्य और निन्दाके योग्य कहता है। समझनेकी चेष्टा कोई नहीं करता है। शब्दोंका अर्थ जानकर ही वह तृप्त हो जाते हैं। समझते हैं कि मैंने सब जान लिया। सबसे बड़ा दुःख तो यह है कि समझानेपर भी कोई समझना नहीं चाहता है।

ईश्वर ही सब है और उससे ही सब कुछ हुआ है। उसीसे ज्ञान और उसीसे ज्ञानका अभाव या भ्रांति निकली है। उसीसे बुद्धि और उसीसे दुर्बुद्धि आयी है। उसीसे सत्य और उसीसे असत्य पैदा हुआ है। उसीसे न्याय और उसीसे अन्याय उत्पन्न हुआ है। मनुष्य-जीवनका प्रधान उपादान यह ज्ञान, बुद्धि, सत्य तथा न्याय और उनके न होनेपर भ्रान्ति, दुर्बुद्धि, असत्य या अन्याय यह सब ही ईश्वरके प्रेरित हैं। परन्तु ज्ञान, बुद्धि, सत्य और न्याय उसीसे निकले हैं, यह समझानेकी जरूरत नहीं, हिन्दुओंके लिये यह स्वतः सिद्ध है। हां, भ्रान्ति, दुर्बुद्धि आदि भी उसीसे निकले हैं, यह अच्छी तरह समझानेकी जरूरत है। महाभारतकी दूसरी तहके कवि कमसे कम ऐसा ही समझते हैं। आजकलके ज्योतिषी कहा करते हैं कि हम चन्द्रमाके सामनेका ही भाग सदासे देखते आते हैं, पिछला भाग

कभी नहीं देखा । यह कवि उसी अदृष्टपूर्व्व जगत्के रहस्यका पिछला भाग हम सबको दिखलाना चाहते हैं । वह जयद्रथवधमें दिखलाते हैं कि भ्रान्ति ईश्वरप्रेरित है, घटोत्कचवधमें दिखावेंगे कि दुर्बुद्धि भी उसीकी प्रेरित है, द्रोणवधमें दिखावेंगे कि असत्य भी उसीका प्रेरित है और दुर्योधनवधमें दिखावेंगे कि अन्याय भी वहींसे आया है । एक बात और भी बाकी है वह यह कि बाहुबलके आगे ज्ञानबल, बुद्धिबल, सत्यबल और न्यायबल कुछ नहीं है । राजनीतिमें तो विशेषकर बाहुबलकी प्रधानता है । महाभारत विशेषकर राजनीतिक अर्थात् ऐतिहासिक काव्य है, इसका मूल इतिहास है । इसलिये इसमें बाहुबलका स्थान ज्ञान, बुद्धि आदिके ऊपर है । दूसरी तहवाले कवियोंको मालूम होता है कि ज्ञान–अज्ञान, बुद्धि-दुर्बुद्धि, सत्यासत्य और न्यायान्याय ईश्वरीय नियोगके अधीन है, केवल यह कहनेसे ही राजनीतिक तत्व पूरा नहीं हुआ । बाहुबल या उसके अभावके बारेमें भी वही बात है । इसको स्पष्ट करनेके लिये उन्होंने मौसलपर्व्व बना डाला है । वहां कृष्णके न होनेसे स्वयं अर्ज्जुन लठधर किसानोंसे हार गया है ।

मैं जिसे ईश्वरीय नियोग कहता हूं अथवा दूसरी तहवाले जिसे ईश्वरकी प्रेरणा समझते हैं, यूरपवालोंने उसकी जगह कानून (Law) बना रखा है । महाभारतके इन कवियोंकी बुद्धिमें कानूनको जगह मिली थी या नहीं, मैं कह नहीं सकता । पर इतना कह सकता हूं कि जो कानूनके ऊपर है,

जिससे कानून निकला है, उसे उन्होंने अच्छीतरह समझाया था। उन्होंने समझाया था कि सब ही ईश्वरकी इच्छा है। कृष्णको कर्मक्षेत्रमें लाकर इन कवियोंने वही ईश्वरेच्छा समझानेकी चेष्टा की है।

चौथा परिच्छेद।

घटोत्कचवध।

जयद्रथवधमें श्रीकृष्णके बारेमें और एक बात अस्वाभाविक लिखी है। अर्ज्जुन जयद्रथका सिर काटने चला, तो श्रीकृष्ण बोले, अच्छा सुनो, एक बात कहता हूं। इसके बापने तपस्या कर वर पाया है कि जो जयद्रथका सिर मिट्टीमें फेंकेगा उसका सिर भी टुकड़े टुकड़े हो जायगा। इसलिये तुम इसका सिर मिट्टीमें मत फेंक देना। इसका बाप जहां बैठा सन्ध्यावन्दन कर रहा है वहां इसका सिर बाणोंके सहारे ले जाकर उसकी गोदमें गिरा दो। अर्ज्जुनने वही किया। बेचारा बुड्ढा सन्ध्या कर उठने लगा, तो कटा सिर उसकी गोदसे धरतीपर गिर पड़ा। गिरते ही बुड्ढेका सिर टुकड़े टुकड़े हो गया।

अस्वाभाविक समझकर मैं इसे छोड़ देता हूं। पर इसके बाद घटोत्कचवधकी वीभत्स लीला वर्णन करनी पड़ेगी।

हिडिम्ब नामक एक राक्षस था। हिडिम्बा उसकी बहन थी। भीमने शायद हिडिम्बको मार हिडिम्बासे व्याह कर

लिया। बस दोनोंका जोड़ खूब मिल गया! खैर, राक्षसीके गर्भसे एक पुत्र हुआ। उसका नाम घटोत्कच था। वह भी राक्षस ही था। बड़ा बलवान था। कुरुक्षेत्रमें बापताऊकी ओरसे वह भी दलबल समेत लड़ता था। मैं समझता हूं, इसकी अक्ल मारी गयी थी। क्योंकि यह शत्रुओंको खा जानेके बदले उनके साथ धनुषवाण लेकर आदमियोंकी तरह लड़ता था। दुर्भाग्यसे दुर्योधनके दलमें भी एक राक्षस था। दोनों राक्षसोंकी घमासान लड़ाई हुई।

इसी दिन एक भयङ्कर लीला हो गयी। और रोज तो दिनमें ही लड़ाई होती थी; आज रोशनी जलाकर रातको होने लगी। रातको निशाचरोंका बल बढ़ जाता है, इसीलिये घटोत्कच बेतरह मारकाट करने लगा। कौरवोंकी ओरका कोई भी उसका सामना न कर सका। उनकी ओरके राक्षसराम भी खेत रहे। केवल कर्ण ही अकेला घटोत्कचके साथ लड़ने लगा। अन्तमें वह भी हैरान हो गया। कर्णके पास इन्द्रकी दी हुई एक शक्ति थी। इस शक्तिके विषयमें एक बड़ा अद्भुत किस्सा है, पर उसे लिखकर पाठकोंको तंग करना मैं नहीं चाहता। उसके सम्बन्धमें बस इतना ही कह देना यथेष्ट है कि इस शक्तिको कोई रोक नहीं सकता था। जिसके ऊपर वह छोड़ी जाती वह अवश्य मर जाता, पर वह फिर लौटकर नहीं आती थी। कर्णने वह शक्ति अर्जुनके लिये रख छोड़ी थी, पर आज लाचार हो उसे घटोत्कचपर ही चलानी पड़ी। शक्तिके लगते ही घटोत्कच

वहीं ढेर हो गया। मरनेके समय उसका शरीर विन्ध्याचलके समान लम्बा हो गया। उसके गिरनेसे एक अक्षौहिणी सेना दब मरी !!

ऐसे दोषोंके लिये पुराने हिन्दू कवियोंको क्षमा की जा सकती है, क्योंकि बालक और अशिक्षित स्त्रियां ऐसे किस्से बहुत चावसे सुनती हैं। खैर, यहांतक तो उन्होंने बालकों और अशिक्षित स्त्रियोंको खुश करनेके लिये लिखा। पर आगे जो कुछ लिखा है वह शायद अपने खुश होनेके लिये लिखा है। वह लिखते हैं कि घटोत्कचके मरनेपर पाण्डव शोकसे व्याकुल हो रोने लगे, पर श्रीकृष्ण रथपर नाच उठे ! वह तो अब गोप-बालक नहीं हैं, नाती-पोतेवाले हैं। अचानक उनके पागल हो जानेकी भी बात नहीं लिखी है। फिर रथपर नाच कैसा ! केवल नाच ही नहीं, सिंहनाद और खम ठोकना ! यह लीला देखकर अर्ज्जुनने पूछा, मामला क्या है ? इतनी नाचकूद क्यों ? कृष्णने कहा, "कर्णके पास एक शक्ति थी, तुम्हारे मारनेके लिये उसने उसे रख छोड़ा था। पर उसने उसे घटोत्कचपर चला दिया है। अब तुम्हें डर नहीं है। अब मजेमें कर्णसे लड़ो।" जयद्रथके लिये अर्ज्जुन और कर्णमें वारंवार युद्ध हुआ और कर्ण हार गया। उस समय इन्द्रकी शक्तिकी याद किसीको नहीं आयी, कविजी भी भूल गये। यदि उस समय याद आ जाती, तो जयद्रथ नहीं मारा जाता। कर्ण ही उसका रक्षक था, पर उस समय चुपचाप रह गया। खैर, इस

शक्तिकी घटना अस्वाभाविक है, इसलिये इसपर कुछ कहना व्यर्थ है। हां, जिस बातके लिये घटोत्कचकी चर्चा चलायी थी वह यह है। कृष्ण अर्ज्जुनके प्रश्नका उत्तर दे कहते हैं:

"जो हो, मैंने तुम्हारे हितके लिये धुरन्धर वीर जरासन्ध, शिशुपाल, निषाध, एकलव्य, हिडिम्ब, किर्म्मीर, वक, अलायुध, उग्रकर्म्मा घटोत्कच आदि राक्षसोंको एक एक कर विविध उपायोंसे मारा है।"

यह बात सच नहीं है। कृष्णने शिशुपालका वध अवश्य किया था, पर अर्ज्जुनकी भलाईके लिये नहीं। उसने भरी सभामें उनका अपमान किया था और युद्धके लिये ललकारा था,इसलिये या राजसूययज्ञकी रक्षाके लिये उन्होंने उसे मारा था। जरा-सन्धको उन्होंने स्वयं नहीं मारा। हां, उसके मारनेमें सहायता अवश्य दी थी। यह भी उन्होंने अर्ज्जुनके हितके लिये नहीं, कैदी राजाओंको छुड़ानेके लिये किया था। वक, हिडिम्ब, किर्म्मीर आदिके वध और एकलव्यका अंगूठा कटवा लेनेसे कृष्णका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। वह इस बारेमें कुछ नहीं जानते और न घटनाके समय वह बेचारे उपस्थित ही थे। महाभारतमें एक ठौर लिखा है सही कि कृष्णने एकलव्यको मारा था, पर अंगूठा कटवानेवाली बात उसका विरोध करती है। सच तो यों है कि यह सब बातें ठीक नहीं हैं।

फिर कृष्णके मुंहसे यह झूठी बातें कहलानेका मतलब क्या है?

इस बारेमें और एक बात कहूंगा। भक्तजन कह सकते हैं कि कृष्णकी इच्छासे ही सब कुछ होता है। उनकी ही इच्छासे हिडिम्बादि मारे गये और घटोत्कचपर कर्णने शक्ति चलायी थी। पर यह सङ्गत नहीं है। क्योंकि कृष्ण स्वयं कहते हैं कि, "विविध उपायोंसे मारा है।" और यदि इच्छामय सर्व्वकर्त्ता अपनी इच्छासे ही सब काम कर लेगा, तो फिर मनुष्यशरीर धारण करनेकी जरूरत ही क्या है? मैं कई बार दिखला चुका हूं कि कृष्णने इच्छाशक्तिसे कुछ नहीं किया। जो कुछ उन्होंने किया वह पुरुषार्थसे ही किया है। उन्होंने स्वयं यह बात कही है और वह यथास्थान दे दी गयी है। यह भी दिखला चुका हूं कि वह इच्छा और प्रयत्न करके भी सन्धि न कर सके और न कर्णको ही युधिष्ठिरकी ओर ला सके। यदि उनकी इच्छासे ही काम होता तो तुच्छ जड़ पदार्थ एक शक्तिके लिये इच्छामयको इतनी चिन्ता क्यों होने लगी।

इसमें असल बात वही है जो पिछले परिच्छेदमें कह आया हूं। बुद्धि ईश्वरप्रेरित है और दुर्बुद्धि भी ईश्वरप्रेरित है, बस यही कवि कहना चाहते हैं। कर्णने अर्ज्जुनके मारनेके लिये इन्द्रकी शक्ति उठा रखी थी, पर पीछे घटोत्कचपर चला दी। यह उसकी दुर्बुद्धि थी। कृष्ण कहते हैं कि यह मेरा काम था, अर्थात् दुर्बुद्धि ईश्वरप्रेरित है। शिशुपालने दुर्बुद्धिके वश सभामें कृष्णका असह्य अपमान किया था। जरासन्धको सम्मुख संग्राममें जीतना कठिन था। पाण्डव क्या कृष्णके साथ यादव भी उसे

परास्त न कर सके थे। किन्तु शारीरिक बलमें भीम उससे बलवान था। जरासन्ध जैसे राजराजेश्वर सम्राट्का भीमसे अकेले हाथापायी करना उसकी दुर्बुद्धि थी। कृष्णको उक्तिका मर्म्म यही है कि वह भी मेरी ही प्रेरित थी। द्रोणाचार्य्यने अनार्य्य एकलव्यसे गुरुदक्षिणामें उसके दाएं हाथका अंगूठा मांगा था। अंगूठा न रहनेसे एकलव्य वाण न चला सकता और उसकी इतने परिश्रमकी धनुर्विद्या निष्फल हो जाती, पर एकलव्यने इसकी कुछ परवा न कर गुरुदक्षिणा दे ही दी। यह एकलव्यकी दारुण दुर्बुद्धि थी। कृष्णके कहनेका मतलब यही था कि यह दुर्बुद्धि मेरी यानी ईश्वरप्रेरित थी। राक्षसोंके वधके बारेमें भी यही समझना चाहिये। यह सब ही बातें दूसरी तहकी हैं।

पांचवां परिच्छेद।

द्रोणवध।

प्राचीन समयमें यहां केवल क्षत्रिय ही युद्ध करते थे, ऐसा नहीं, ब्राह्मण और वैश्य भी करते थे। महाभारतमें ही इसकी कथा है। दुर्योधनके सेनापतियोंमें द्रोण, उनके साले कृप और पुत्र अश्वत्थामा यह तीनों ब्राह्मण ही थे। और विद्याओंकी तरह युद्धविद्यामें भी ब्राह्मण आचार्य्य होते थे। द्रोण और कृप युद्धाचार्य्य थे। इसीसे यह द्रोणाचार्य्य और वह कृपाचार्य्य कहलाते थे।

इधर ब्राह्मणोंके साथ युद्ध करनेमें भी बड़ी विपद् थी। क्योंकि रणमें भी ब्राह्मणका वध करनेसे ब्रह्महत्या लगती थी। इसीसे ब्राह्मण योद्धाओंके कारण कमसे कम महाभारतकार बड़ी मुश्किलमें पड़े थे। उन्होंने कृप और अश्वत्थामाको युद्धमें नहीं मरने दिया। कौरवोंकी ओरके सब मारे गये। केवल यही दो बच गये। महाभारतकारने इन दोनोंको तो अमर कह पिण्ड छुड़ा लिया। पर द्रोणाचार्य्यको मारे विना काम न चला। भीष्मके बाद वही सबसे प्रधान योद्धा थे। उनके रहते पाण्डव कभी विजयी न होते। पर महाभारतकारजी यह भी कहना नहीं चाहते कि धार्म्मिक राजपुरुषोंमेंसे कोई द्रोणाचार्य्यको मारकर ब्रह्महत्याका भागी हुआ। द्रोणाचार्य्यको अकेला परास्त कर ले ऐसा पाण्डवोंकी ओर अर्ज्जुनके सिवा कोई नहीं था। पर द्रोणाचार्य्य अर्ज्जुनके गुरु थे। इस कारण वह उन्हें किसी तरह भी नहीं मार सकता था। लाचार महाभारतकारको चालाकी करनी पड़ी।

अगले जमानेमें पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीके पिता द्रुपदके साथ द्रोणका बड़ा झगड़ा हुआ था। द्रुपद द्रोणके समान पराक्रमी न हो सका। बल्कि और भी अपमानित हुआ। इसलिये उसने द्रोणके वधके लिये यज्ञ किया। यज्ञकुण्डसे द्रोणका मारनेवाला पुत्र प्रगट हुआ। उसका नाम धृष्टद्युम्न था। कुरुक्षेत्रयुद्धमें वह पाण्डवोंका सेनापति था। पाण्डवोंको भरोसा था कि धृष्टद्युम्न ही द्रोणको मारेगा। जो ब्राह्मणका वध कर-

नेके हेतु दैवकर्म्मसे उत्पन्न हुआ है उसके लिये ब्रह्महत्या पाप नहीं है।

पर महाभारतमें एक मनुष्यका हाथ नहीं है। जिसके मनमें जैसा आया उसने वैसा ही लिख मारा। पंद्रह रोजतक लड़ाई हुई, पर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य्यका कुछ न कर सका। उलटे हार गया। द्रोणके मारे जानेकी आशा जाती रही और पाण्डवोंकी सेना रोज कटने लगी। पीछे द्रोणके मार डालनेका एक जघन्य उपाय सोचा गया। इसका कलंक श्रीकृष्णपर लगाया जाता है। वही इसके अगुआ बनाये गये हैं। कृष्ण कहते हैं :

"हे पाण्डवो! औरोंकी बात क्या, स्वयं इन्द्र भी द्रोणाचार्य्यको जीत नहीं सकता है। पर अस्त्रशस्त्र न रहनेपर मनुष्य भी उन्हें मार सकता है। इसलिये तुम लोग धर्म्म छोड़ो और उनके हरानेका बन्दोबस्त करो।"

दस बारह पन्ना पहले कविने जिसके मुंहसे कहलाया है कि, "मैं शपथ खाकर कहता हूं कि जिस स्थानपर ब्रह्म, सत्य, दम, शौच, धर्म्म, श्री, लज्जा, क्षमा, धैर्य्य, वास करता है वहीं मैं वास करता हूं (१)। जिसने गीतामें कहा है कि धर्म्मसंरक्षणके लिये ही मैं युगयुगमें होता हूं, जिसका चरित्र धार्म्मिक पुरुषका सा अबतक जान पड़ा है, जिसके धर्म्मकी दृढ़ता शत्रुओंने भी स्वीकार की है(२), वह क्या पुकारकर कहेगा, "धर्म्म छोड़ो" ?

(१) घटोत्कचवध-पर्व्वाध्यायका १८ वां अध्याय देखो।

(२) धृतराष्ट्र वाक्य देखो।

कभी नहीं। इसीसे कहता हूं कि महाभारतमें बहुत आदमियोंके हाथ हैं। जिसकी जैसी इच्छा हुई उसने वही लिख मारा।

कृष्ण कहने लगे, मैं ठीक जानता हूं कि अश्वत्थामाके मारे जानेकी खबर पाकर द्रोणाचार्य्य फिर युद्ध करनेवाले नहीं हैं, इसलिये कोई उनके पास जाकर कहे कि अश्वत्थामा युद्धमें मारा गया।

अर्ज्जुनने झूठ बोलना मंजूर नहीं किया। युधिष्ठिरने बहुत कहने सुननेपर कर लिया। भीमने अश्वत्थामा नामका एक हाथी मारकर द्रोणाचार्य्यसे कह दिया कि "अश्वत्थामा मारा गया।" द्रोण जानते थे कि मेरा पुत्र बड़ा बलवान है। शत्रु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। इसलिये भीमकी बातका उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वह धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये और भी मन लगाकर लड़ने लगे। पर फिर युधिष्ठिरसे उन्होंने पूछा कि क्या सचमुच अश्वत्थामा मारा गया? वह जानते थे कि युधिष्ठिर कभी अधर्म्म नहीं करता और न झूठ बोलता है, इसीसे उन्होंने युधिष्ठिरसे पूछा था। युधिष्ठिर बोले, हां अश्वत्थामा हाथी मारा गया। पर हाथी शब्द अव्यक्त रहा (१)।

---

(१) "अश्वत्थामा हत इति गजः" यह वाक्य महाभारतका नहीं है। जान पड़ता है, किसी कथक्कड़ने बनाया है। मूल महाभारतमें यह नहीं है। महाभारतमें है-

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।
अव्यक्तमब्रवीद्वाक्यं हतः कुञ्जर इत्युत॥

इससे भी कुछ नहीं हुआ। द्रोण पहले तो जरा अनमनेसे हुए पर फिर घमासान लड़ाई करने लगे। उनका मारनेवाला धृष्टद्युम्न लड़ते लड़ते अधमरा सा हो गया। उसके अस्त्रशस्त्र गिर पड़े और वह स्वयं रथसे गिर पड़ा। भीमने जाकर उसकी रक्षा की और द्रोणका रथ पकड़कर कुछ बातें कहीं। द्रोणको लड़ाईसे भागनेके लिये वही बातें यथेष्ट थीं। भीमसेन बोला :-

"हे ब्रह्मन्! यदि स्वधर्म्मसे असन्तुष्ट अस्त्रशस्त्रमें शिक्षित अधम ब्राह्मण युद्ध न करते तो क्षत्रियोंका कभी क्षय न होता। प्राणियोंकी हिंसा न करना ही पण्डितोंने प्रधान धर्म्म बतलाया है। ब्राह्मणोंको वही धर्म्म पालन करना चाहिये। आप भी ब्राह्मणश्रेष्ठ हैं, किन्तु चाण्डालकी तरह अज्ञानान्ध हो पुत्रकलत्रोंके उपकारके लिये धनकी इच्छासे अनेकों म्लेच्छों तथा प्राणियोंका प्राण नाश कर रहे हैं। अपने एक पुत्रके उपकारके हेतु स्वधर्म्म त्यागकर असंख्य जीवोंका नाश करनेमें आप क्यों नहीं लज्जित होते हैं?"

बातें बिलकुल सत्य हैं। इससे बढ़कर और क्या तिरस्कार हो सकता है? इस तिरस्कारसे दुर्योधन जैसा दुरात्मा राहपर न आवे, पर द्रोणाचार्य्य तो धर्म्मात्मा हैं, उनके लिये इतना ही बहुत है। इसके बाद अश्वत्थामाके मरनेकी चर्चा न चलानेसे भी काम चल जाता। पर तो भी वह चर्चा यहां दुबारा चलायी गयी।

अश्वत्थामाके मारे जानेका संवाद सुनकर द्रोणाचार्य्यने अस्त्रशस्त्र रख दिये और धृष्टद्युम्नने उनका सिर काट लिया।

अच्छा अब इसपर विचार कीजिये। जिस कामका वर्णन किया गया है यदि वह वास्तवमें ठीक हो, तो जितने उसमें शरीक थे सब ही महापापके भागी हैं। महाभारतके रचयिता भी ऐसा ही समझते हैं। उन्होंने लिखा है कि युधिष्ठिरका रथ पहले धरतीसे चार अंगुल ऊपर चलता था, पर पीछे धरतीपर चलने लगा। यह भी लिखा है कि इसी पापके कारण युधिष्ठिरको नरक देखना पड़ा था। मेरी रायसे ऐसे विश्वासघात और धोखा देकर गुरुकी हत्या करनेका दण्ड नरकका केवल दर्शन ही नहीं है, इसका उपयुक्त दण्ड अनन्त नरकवास है।

कृष्ण इस पापाचरणके अगुआ कहे जाते हैं, इसीलिये उन्हें भी इस महापापका भागी मानना पड़ेगा। पर इसका जवाब लोग यही देते हैं कि वह ईश्वर थे, वह स्वयं पापपुण्यके कर्त्ता-धर्त्ता थे। पापपुण्य जिसका बनाया है उसे भला पापपुण्य क्यों लगने लगा? पाप पुण्य उसे छू भी नहीं सकता है। यह कहना ठीक है, पर क्या इसीसे मनुष्यदेह धारण कर उन्हें पाप करना चाहिये? वह आप ही कहते हैं कि मैं धर्म्मसंस्थापनके लिये अवतीर्ण हुआ हूं। तो क्या वह पापाचरण करके धर्म्मका संस्थापन करेंगे? ऐसा तो उन्होंने कहीं नहीं कहा। वह गीतामें कहते हैं :—

"जनकादि कर्म्म करके ही सिद्ध हुए हैं। लोगोंको स्वधर्म्ममें

लगानेके लिये तुम भी कर्म्म करो। बड़े आदमी जो काम करते हैं और लोग भी वही करते हैं। वह जिसे मानते हैं और लोग भी उसे ही मानने लग जाते हैं। हे पार्थ! मुझे तीनों लोकमें कुछ नहीं करना है, पानेके योग्य और न पानेके योग्य मेरे लिये कुछ नहीं है, तो भी मैं कर्म्म करता हूं। (क्योंकि) मैं यदि आलसी हो कर्म्म न करूं, तो सब लोग मेरा अनुकरण कर कर्म्म करना छोड़ देंगे।" गीता ३ अ० २० -२३ श्लो०।

श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि मनुष्यशरीर धारण कर अपने कामोंसे धर्म्म-संस्थापन करना मेरा उद्देश्य है। इसलिये पापाचरणका उदाहरण दिखलाना उनका अभीष्ट नहीं हो सकता है।

फिर यह बात क्या है? इसका उत्तर सोचे विना मैंने कृष्णचरित्र लिखनेमें हाथ नहीं लगाया है। क्योंकि वृन्दावनकी गोपियां और 'अश्वत्थामा हत इति गजः इन दो बातोंसे ही श्रीकृष्णपर गहरा कलङ्क लगता है।

तब यह बातें कैसी हैं? अलौकिक हैं। पाठक यदि ध्यानपूर्व्वक यह पुस्तक पढ़ते हों तो समझेंगे कि प्रचलित महाभारत एक मनुष्यकी करतूत नहीं है। उसका कुछ भाग मौलिक या पहली तह है। बाकी अमौलिक और क्षेपक है। कौन मौलिक और कौन क्षेपक है, यह निरूपण करना कठिन है। पर इसके लिये मैंने कई नियम बना दिये हैं। उनकी ही याद पाठकोंको दिलाता हूं।

(क) उनमेंसे एक यह है—

"श्रेष्ठ कवियोंके कहे हुए चरित्र सब अंशोंमें सुसंगत होते हैं। यदि कहीं उसमें अन्तर पड़े, तो उसके प्रक्षिप्त होनेका सन्देह होगा इत्यादि (१)।

इसके उदाहरणमें मैंने कहा था कि कहीं भीमकी भीरुता या भीष्मकी परदारपरायणता मिले, तो उसे क्षेपक समझना होगा। यहां भी बस वही बात है, बल्कि उससे बढ़कर है। कहां परम धर्मात्मा युधिष्ठिर और कहां यह विश्वासघात, असत्यभाषण और धोखा देकर गुरुकी हत्या करना? यह दोनों बेमेल बातें हैं ऐसी असंगत और हो नहीं सकती। फिर महातेजस्वी, महाबली, निर्भीक भीमसेनके चरित्रके भी यह बिलकुल विपरीत है। भीमसेनको अपने बाहुबलका ही भरोसा था। वह शत्रु-ओंका सामना लड़कर ही करता था। राज्य पाने या प्राण बचानेके लिये भी वह लड़ना ही जानता था। अन्यत्र लिखा है कि अश्वत्थामाने नारायणास्त्र चलाया जिसका निवारण कोई नहीं कर सकता था और उससे सारी पृथ्वी नाश हो सकती थी। दिव्यास्त्रका जाननेवाला अर्ज्जुन भी उसका निवा-रण न कर सका। समस्त पाण्डवसेना उससे विनष्ट होने लगी। उससे बचनेका बस एक ही उपाय रणभूमि छोड़कर भाग जाना था। क्योंकि नारायणास्त्र रणसे भागेहुओंको नहीं छूता था। इसलिये कृष्णके आज्ञानुसार पाण्डवोंकी सारी सेना और सेना-पति प्राण बचानेके लिये अपनी अपनी सवारीसे उतर अस्त्रशस्त्र

(१) प्रथम खण्डका ६१ वां पृष्ठ देखिये।

छोड़ भाग चले। कृष्णकी आज्ञासे अर्ज्जुनने भी वही किया जो सबने किया था। पर भीमने एक न मानी। वह बोला "मैं बाणोंसे अश्वत्थामाका नारायणास्त्र काट गिराता हूं। मैं अपनी सोनेकी इस भारी गदासे नारायणास्त्रको काटकर यमराजकी तरह रणभूमिमें विचरण करूंगा। इस भूमण्डलमें सूर्य्यके समान जैसे कोई ज्योतिमान पदार्थ नहीं है वैसे ही मेरे समान कोई पराक्रमी नहीं है। ऐरावतके सूंड़के समान मेरे यह भुजदण्ड जो आप देखते हैं वह हिमालय पर्व्वतको भी गिरा सकते हैं। मुझमें दस हजार हाथियोंका बल है। देवलोकमें जैसे इन्द्रका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है, वैसे ही नरलोकमें मेरा भी नहीं है। आज मैं द्रोणके पुत्रका अस्त्र निवारण करता हूं. सब कोई मेरा बाहुबल देखो। यदि कोई इस नारायणास्त्रका प्रतिद्वन्द्वी न हो तो मैं मानता हूं कि भीमसेनने अपनी बड़ाईका पुल बांध दिया था, और यह कहानी भी विचित्र सी है। जो हो, इसे कोई सत्य नहीं मानेगा। यहां चरित्रचित्रणकी सङ्गतिपर बात हो रही है। नारायणास्त्रका निवारण चाहे मौलिक न हो, पर मौलिक महाभारतमें भीमका चरित्र सर्वत्र इसी ढङ्गपर चित्रित हुआ है। भीमके इस चरित्रसे और द्रोणाचार्यको धोखा देनेवाले आचरणसे कितना अन्तर है? भीम क्या ऐसे उपायसे अपने शत्रुका वध कर सकता है जिससे स्त्रियां भी घृणा करती हैं? नारायणास्त्र द्रोणाचार्य्यसे हजारों गुना भयङ्कर है। जो नारायणास्त्रके सामने सिंहकी तरह डटा रहा और जो नारायणास्त्र

के सामनेसे जबरदस्ती (१) हटाये विना नहीं हटा था, वह क्या अर्ज्जुनके समान योद्धा द्रोणके भयसे ऐसा नीच कर्म्म करेगा? कभी नहीं। जिस कविने ऐसा लिखा है वह कवि नहीं है। महाभारतकी रचना करना उसकी सामर्थ्यके बाहर है।

यह तो मैं दिखला चुका कि अश्वत्थामा नामक हाथीके मारे जानेवाली कहानीका मेल भीमके चरित्रसे नहीं मिलता है और न युधिष्ठिरके चरित्रसे ही मिलता है। इन दोनों चरित्रोंके साथ यह जितनी बेमेल है उससे कहीं बढ़कर श्रीकृष्णके चरित्रके साथ है। मैंने जो कुछ कहा है, पाठकोंने यदि उसे समझ लिया हो, तो इस बेमेल वालोंको भी समझ सकेंगे। और उजाले अन्धेरेमें, काले और उजलेमें, गर्म और ठंडेमें, मीठे और खट्टे में, रोग और भोगमें, भाव और अभावमें जितना अन्तर है कृष्णचरित्र और इस कहानीमें भी उतना ही है। जब एक नहीं—तीन तीन मौलिक चरित्रोंमें इसका कुछ भी मेल नहीं है, तब यह अवश्य ही क्षेपक है। इस-लिये इतर कविकी रचना समझकर इसे मैं छोड़ सकता हूं।

(ख) मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई है। कौन अंश क्षेपक और कौन मौलिक है, इसकी जांचके लिये जो कई नियम बनाये गये हैं उनमें केवल एकसे यह मरे हाथीकी कथा क्षेपक सिद्ध हुई है। जो परस्पर विरोधी हैं उनमेंसे एक अवश्य ही प्रक्षिप्त है। अब इस नियमसे परीक्षा करता हूं। अश्वत्थामा हाथीकी

(१) अर्ज्जुन और कृष्णने जबरदस्ती रथपरसे भीमको खेंच लिया था और उसके हथियार छीन लिये थे।

कहानीके साथ द्रोणाचार्य्यके वधकी एक और कथा महाभारतमें है। एक ही कारण बहुत था, पर यहां दोनों एकत्र हैं। अच्छा, अब वह दूसरा स्वतन्त्र विवरण भी महाभारतसे यहां दिये देता हूं। इसके समझानेके लिये पहलेसे कह देना चाहिये कि द्रोणाचार्य्य अधर्म्म युद्ध कर रहे थे। महाभारतमें लिखे हुए अन्यान्य दैवास्त्रोंमें ब्रह्मास्त्र भी एक है। जिस उपायसे निश्चय ही काम पूरा होता है उसे आजकल भी यहांवाले "ब्रह्मास्त्र" कहते हैं। जो अस्त्रोंका प्रयोग नहीं जानते हैं उनपर ब्रह्मास्त्र चलाना मना है और अधर्म्म है। यही ऋषियोंका मत है। द्रोणाचार्य्य अस्त्रानभिज्ञ सैनिकोंको ब्रह्मास्त्रसे जब विनष्ट कर रहे थे, तब :-

"विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, अङ्गिरा, सिकत, प्रश्नि, गर्ग, बालखिल्य, मरीचि तथा अन्यान्य छोटे छोटे साग्निक ऋषि द्रोणाचार्य्यको क्षत्रियोंका विनाश करते देखकर वहां शीघ्र आये और उन्हें ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छासे कहने लगे, 'हे द्रोण! तुम अधर्म्म युद्ध कर रहे हो, इसलिये अब तुम्हारे विनाशका समय आ गया है। तुम आयुध परित्याग कर हमारी ओर एक बार देखो। अब तुम्हें यह काम नहीं करना चाहिये। तुम वेदवेदाङ्गके वेत्ता और सत्यधर्म्मपरायण हो, इसलिये तुम्हारा यह काम बड़ा ही अनुचित है। तुम मोह त्याग आयुध रख दो और सत्य मार्गपर आओ। मर्त्यलोकमें वास करनेके दिन तुम्हारे पूरे हो गये। हे विप्र! अस्त्र न जाननेवालोंपर ब्रह्मास्त्र चलाकर तुमने बड़ा बुरा काम किया

है। अब जल्द अस्त्रशस्त्र फेंको, क्रूरता करना तुम्हें उचित नहीं है।"

इसपर द्रोणाचार्य्यने युद्ध करना छोड़ दिया। यह मैं पहले ही कह चुका हूं कि युधिष्ठिरसे अश्वत्थामाके मरनेकी खबर सुनकर भी उन्होंने युद्ध करना नहीं छोड़ा था। वह धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये उद्यत थे। सात्यकिने आकर उसे बचाया। सात्यकिके साथ जब कोई न लड़ सका, तब द्रोण भी हट गये। द्रोणके हटनेपर युधिष्ठिरने अपने वीरोंसे कहा "हे वीरो! तुम बड़ी सावधानीसे द्रोणकी ओर दौड़ो। महावीर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य्यका वध करनेके लिये यथासाध्य चेष्टा कर रहे हैं। आज रणभूमिमें द्रुपदनन्दनके काम देखनेसे जान पड़ता है कि वह क्रुद्ध हो द्रोणाचार्य्यका वध करेगा। इसलिये तुम सब मिलकर द्रोणाचार्य्यके साथ फिर युद्ध करो।"

यह सुनकर पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्य्यकी ओर दौड़ी। फिर महाभारतमें लिखा है कि :

"महारथी द्रोण भी मरनेका निश्चय कर पीछा करनेवाले वीरोंकी ओर बड़े वेगसे लौट पड़े। सत्यवादी महावीर द्रोणाचार्य्यके लौटनेपर मेदिनी कांप उठी, और प्रचंड वायु बहने लगी। सूर्य्यसे उल्कापात हुआ। उससे चारों ओर प्रकाश हो गया और लोग डर गये। द्रोणके अस्त्र सब प्रज्ज्वलित हो उठे। रथसे भयानक सांस और घोड़ेकी आंखोंसे आंसू निकलने लगे। फिर तुरत ही महारथी द्रोण नितान्त निस्तेज हो गये। उनकी

बायीं आंख और बायीं बांह फड़कने लगीं। वह सामने धृष्ट-द्युम्नको देख अनमनेसे हो गये और उन्होंने ब्रह्मवादी ऋषियोंकी बात याद कर धर्म्मयुद्ध करते हुए प्राण त्याग करना चाहा।"

पाठक देख लें कि यहां द्रोणके प्राण त्याग करनेकी इच्छाके कारणोंमें अश्वत्थामाका मृत्युसंवाद नहीं गिना गया है। विचार-वानोंके लिये यही एक प्रमाण बहुत है।

इतनेपर भी द्रोणने लड़ना नहीं छोड़ा। दस हजारसे कम सेना नष्ट होनेकी बात महाभारतकार कभी मुंहसे निकालते ही नहीं। वह कहते हैं कि द्रोणाचार्य्यने उस दशामें भी तीस हजार फौज काट डाली और धृष्टद्युम्नको हरा दिया। अबकी भीमने उसकी रक्षा की और द्रोणाचार्यका रथ (१) उठाकर तिरस्कार किया, जिसका हाल पहले लिख चुका हूं। वास्तवमें भीमकी फटकार सुनकर ही द्रोणने हथियार रख दिया था :

"और फिर रथपर अपने सब अस्त्रशस्त्र रखकर योगाभ्याससे समस्त जीवोंको अभय दान किया। उसी समय महावीर धृष्ट-द्युम्न मौका पा अपने रथपर धनुषबाण रख और तलवार ले द्रोणकी ओर दौड़ा। इस तरह द्रोणाचार्य्यको धृष्टद्युम्नके हाथमें पडता देख समरभूमिमें कुहराम पड़ गया। इधर ज्योतिर्म्मय महातपस्वी द्रोणाचार्य्यने योगके सहारे अनादि पुरुष विष्णुमें

(१) भीममें रथोंको पटक पटककर तोड़ डालनेकी आदत थी। रथ अगर इक्केकी तरह होते हों, तो आजकलके लोग भी तोड़ सकते हैं।

ध्यान लगा दिया। उनका मुख कुछ ऊपर उठ गया, वक्षस्थल स्थिर हो गया और आंखें दोनों बन्द हो गयीं। उन्होंने विषय-वासनासे मन खेंचकर सात्विक भावमें मन लगाया और एकाक्षर वेदमन्त्र ओंकार तथा परात्पर देव देवेश वासुदेवका स्मरण कर स्वर्गलोकको गमन किया जो साधुओंको भी दुर्लभ है।"

द्रोणाचार्य्यके प्राण त्यागनेपर धृष्टद्युम्न उनका सिर काटकर ले गया।

द्रोणकी मृत्युके दो विवरण पृथक् पृथक् महाभारतमें पाये जाते हैं। दोनों बिलकुल बेमेल नहीं हैं, मिलाये जा सकते हैं! मिलाये भी गये हैं, पर अच्छी तरह नहीं मिले। कारीगर होशियार न होनेके कारण सन्ध रह गयी है। यह तो साफ दिखाई देता है कि द्रोणकी मृत्युके लिये दो विवरणोंकी जरूरत नहीं, एक ही यथेष्ट है।

यह सम्भव नहीं कि एक ही कवि भिन्न भिन्न प्रकारके दो विवरणोंको यों मिलावेगा। लाचार मानना पड़ेगा कि यह भिन्न भिन्न तहोंके दो कवियोंका काम है। इनमें क्षेपक कौनसा है? द्रोणके प्राणत्यागके जो सब कारण महाभारतसे ऊपर दिये गये हैं उनमें अश्वत्थामाका मृत्युसंवाद नहीं है इसलिये इसका वास्तविक होना असम्भव है। पर जो नियम पहले बनाये जा चुके हैं उनके स्मरण करते ही इसकी मीमांसा हो जायगी।

कह चुका हूं कि यदि दो भिन्न भिन्न विवरणोंमें एक क्षेपक

जान पड़े, तो उनमें जो किसी और लक्षणके अन्तर्गत हो उसे ही क्षेपक समझना चाहिये (१)। यह मैं पहले ही दिखा चुका हूं कि अश्वत्थामाके मारे जानेका वृत्तान्त कृष्ण, भीम और युधिष्ठिरके चरित्रके साथ बिलकुल असंगत है। जो असंगत है वह अवश्य क्षेपक है। इसलिये अश्वत्थामाकी यह कथा क्षेपक है इसमें सन्देह नहीं।

(ग) एक बात और है। अभी कह चुका हूं कि अश्वत्थामाके मरनेकी खबर सुनकर द्रोणाचार्य्यने लड़नेमें कुछ भी ढील न की। फिर कृष्णने यह बात क्यों कहवायी? यही समझकर, न कि द्रोण युद्ध करना छोड़ देंगे? पर यह कब सम्भव था? द्रोण जानते थे कि अश्वत्थामा अमर है। खैर अमर होनेकी बात अस्वाभाविक समझकर छोड़ दीजिये। यदि मान लिया जाय कि हममें, तुममें, साधारण मनुष्यों या मजदूरोंमें जितनी अकल होती है उतनी भी कृष्णमें थी, तो वह इस कामके लिये कभी सलाह न देते। द्रोण हों चाहे और कोई, जो ऐसी खबर सुनेगा वह आत्महत्या करनेके पहले अपने ओरवालोंसे जरूर पूछेगा कि यह सच है या झूठ? द्रोणाचार्य्य क्या ऐसे थे कि अपना कान न टटोलकर कव्वेके पीछे दौड़ जाते? क्या वह अश्वत्थामाका पता लगानेके लिये किसीको न भेजते? अवश्य भेजते। और भेजते तो उसी समय भण्डा फूट जाता और भेद खुल जाता।

(१) प्रथम खण्ड पन्ना ६२ देखो।

इसलिये यह कथा क्षेपक है। मैं यह नहीं कहता कि ऋषियोंके कहनेसे द्रोणका अस्त्रशस्त्र रख देना ही सत्य है। ऋषियोंका तो वहां रणक्षेत्रमें आना अस्वाभाविक है, इसलिये इसे भी मिथ्या समझकर छोड़ना पड़ता है। इसमें विश्वासयोग्य या सच्ची बात इतनी हो सकती है कि द्रोणाचार्य्य बेदस्तूर काम कर रहे थे। भीमके फटकारनेसे उन्हें चेत हुआ था। लड़ाई छोड़कर वह भाग नहीं सकते थे, क्योंकि भागनेसे एक तो वीरतामें बट्टा लगता, दूसरे इस विपत्तिके समय दुर्योधनका साथ छोड़ देनेसे कलङ्कका टीका लगता। इसलिये इन दोनों दोषोंसे बचनेके लिये उन्होंने शरीर छोड़ देना ही स्थिर किया जान पड़ता है, इतनी ही किंवदन्ती थी। उसीपर महाभारतकी पहली तह बनायी गयी। वास्तविक घटना चाहे यह भी न हो। असली बात बस इतनी ही है कि द्रुपदके पुत्रने द्रोणको मारा था। आगे चलकर जो बात कही जायगी उससे भी यही सिद्ध होता है। प्रबल प्रतापशाली पाञ्चालवंशको ब्रह्महत्याके कलङ्कसे बचानेके लिये रङ्ग विरङ्ग किस्से पीछे गढ़े गये हैं।

(घ) अब देखना चाहिये कि अनुक्रमणिकाध्याय और पर्व्वसंग्रहाध्यायमें क्या है। पहलेमें तो धृतराष्ट्र विलापकर इतना ही कहता है

"यदाश्रौषं द्रोणमाचार्य्यमेकं
धृष्टद्युम्नेनाभ्यतिक्रम्य धर्म्मम्।
रथोपस्थे प्रायगतं विशस्तं
तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय॥"

अर्थ ।

"हे सञ्जय, जब मैंने सुना कि धृष्टद्युम्नने योगाभ्यासमें बैठे हुए द्रोणाचार्य्यको रथपर मार डाला, तब मुझे उनकी जयमें कुछ सन्देह न रहा ।"

यहां भी यही देखनेमें आता है कि द्रोणके वधमें धृष्टद्युम्नके सिवा और किसीने अधर्म्माचरण नहीं किया । धृष्टद्युम्नने यही पाप किया कि योगाभ्यासमें बैठे हुए वृद्ध ब्राह्मणको मार डाला । द्रोण योगासनमें क्यों बैठे ? युधिष्ठिरके कहनेसे या ऋषियोंके समझानेसे या भीमके फटकारनेसे, यह यहां कुछ नहीं लिखा है । आगे चलकर देखेंगे कि वह थककर ही मारे गये । आसन्न-मृत्यु द्रोणाचार्य्यके योगाभ्यासमें बैठनेका उपयुक्त कारण थकावट ही है ।

(ङ) पर्वसंग्रहाध्यायमें "द्रोणे युधि निपातिते" के सिवा और कुछ नहीं है । मरे हाथीकी कहानी सच्ची होती तो उसकी चर्चा इसमें अवश्य होती । अधर्म्म युद्धमें अभिमन्युके मारे जानेकी बात है फिर द्रोणको क्यों नहीं है ? उस समय तक यह कहानी ही नहीं गढ़ी गया था, फिर कहांसे होती ?

(च) इसके बाद द्रोणपर्व्वके सातवें और आठवें अध्यायमें द्रोणाचार्य्यके युद्धका संक्षिप्त वर्णन है । उसमें इस धोखेबाजीका कुछ जिक्र नहीं है । केवल यही लिखा है कि धृष्टद्युम्नने द्रोण-को मारा । यह अध्याय जिस समय लिखे गये थे उस समय भी यह कहानी नहीं बनी थी ।

(छ) आश्वमेधिकपर्व्वमें लिखा है कि कृष्ण जब द्वारका वापिस आये, तब वसुदेवने कृष्णसे युद्धका वृत्तान्त पूछा। कृष्णने संक्षेपमें सब कह सुनाया। द्रोणके युद्धके बारेमें श्रीकृष्ण-ने इतना ही कहा कि द्रोण और धृष्टद्युम्नकी लड़ाई पांच रोज तक हुई थी। द्रोण लड़ते लड़ते थक गये और अन्तमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये। यही सत्य मालूम होता है। क्योंकि बुड्ढे ज्वानोंसे लड़कर थकते ही हैं। द्रोणके लड़नेसे हाथ खेंच लेनेका यथार्थ कारण थकावट ही है। और बातें कवियोंकी केवल कल्पना है। यह मैंने सात तरहसे प्रमाणित कर दिया।

पर इस किस्सेमें कृष्णको झूठों और धोखेबाजोंका अगुआ बनानेका कारण क्या है? कारण तो पहले ही बता चुका हूं। जैसे ज्ञान ईश्वरदत्त है वैसे ही अज्ञान और भ्रांति भी है। जयद्रथवधमें कविने यही दिखाया है, भ्रांति भी ईश्वर प्रेरित है। घटोत्कचवधमें कविने दिखाया है कि बुद्धि जैसे ईश्वर-प्रेरित है वैसे ही दुर्बुद्धि भी है। इस द्रोणवधमें दिखाया गया है कि सत्य और असत्य दोनों ही ईश्वरप्रेरित हैं।

इसके अनन्तर नारायणास्त्र-मोक्ष-पर्व्वाध्याय है। इसकी बात संक्षेपमें ही कहता हूं। तूल देनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि नारायणास्त्रकी कथा अस्वाभाविक है, इस हेतु यह छोड़नेके योग्य है। पर इसमें एक भेदभरी बात है।

द्रोणके निहत होनेपर अर्जुनको बड़ा शोक हुआ, क्योंकि द्रोण उसके गुरु थे। धोखा देकर गुरुकी हत्या करानेके कारण

उसने युधिष्ठिरको खूब उलटी सीधी सुनायी और धृष्टद्युम्नकी भी अच्छी तरह खबर ली। युधिष्ठिर बेचारा भलामानस था, कुछ न बोला। पर भीमने अर्जुनके सवालका जवाब अच्छी तरह दे दिया। इसपर अर्जुनके शिष्य यदुवंशी सात्यकीने धृष्टद्युम्नको खूब गालियां दीं। धृष्टद्युम्नने भी व्याज समेत वापिस कर दीं। इसपर दोनोंमें खूब गुत्थमगुत्था हुई। कृष्णके इशारेसे भीम और सहदेवने बीच बिचाव कर दिया। झगड़ा इसी बातका था कि धोखा देकर द्रोणको मारना उचित हुआ या अनुचित। इसकी सफाईके लिये दोनों ओरवालोंने दोनों ओरकी जितनी बातें थीं सब कह डालीं, पर श्रीकृष्णके बारेमें किसीने कुछ नहीं कहा। किसीने कृष्णका नामतक नहीं लिया और न कहा कि कृष्णकी सलाहसे यह हुआ था। इसीसे कहना पड़ता है कि पांच हाथ लगे बिना ऐसी लबड़धोंधों नहीं होती है।

छठा परिच्छेद।
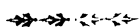
कृष्णका कहा धर्म्मतत्व।

जिसने अश्वत्थामा-वधकी कथा लिखी है उसने अर्जुनको आकाशपर चढ़ा दिया है। कृष्ण, युधिष्ठिर और भीमसे भी बढ़कर अर्जुनको उसने धर्मात्मा बताया है। कृष्णने जिस काम-की बात उठायी और भीम तथा युधिष्ठिरने जिसे कर डाला अर्ज्जुनने अधर्म समझकर उसके करनेसे इनकार ही नहीं किया, बलिक युधिष्ठिरको उसके लिये डाट भी बतायी थी। पर अब जिस घटनाका वर्णन करूंगा उससे तो यही मालूम होता है कि अर्ज्जुन बड़ा मूढ़ और पाखंडी था। कृष्णके धर्मोपदेशसे ही वह सत्पथपर चला था। घटना यों है:

द्रोणके पीछे कर्ण सेनापति हुआ। उसने पाण्डवसेनाका नाकोंदम कर दिया। दुर्भाग्यवश युधिष्ठिरजी महाराज उस दिन उससे मोर्चा लेने गये थे। उसने उनकी वह खबर ली कि बेचारे डरके मारे मैदान छोड़ घरको सिधारे और छिपकर सो रहे। इधर अर्ज्जुन लड़ाई जीतनेके बाद युधिष्ठिरको वहां न देख बहुत घबराया और उनकी टोहमें तुरत डेरेपर आया। कर्ण तबतक मारा नहीं गया था। युधिष्ठिरजी यह सुनकर बहुत गर्म हो गये कि अर्ज्जुनने अबतक कर्णको नहीं मारा है। कापुरुषोंका यह स्वभाव है कि आप तो कुछ कर सकते नहीं, पर दूसरेपर रंग

जमाते हैं। उन्होंने अर्ज्जुनको खूब ऊंचीनीची सुनायी। अन्तमें बोले, "जब तू डरकर रणभूमिसे भाग आया है तब अपना गाण्डीव कृष्णको दे दे।"

इतना सुनते ही अर्ज्जुन तलवार खींच युधिष्ठिरपर झपटा। कृष्णने कहा, "हैं, यह क्या करते हो! तलवारसे किसका सिर काटोगे?" अर्ज्जुन बोला, "जो कोई मुझसे कहेगा कि गाण्डीव (१) किसीको दे दो उसीका मैं सिर काट लूंगा। क्योंकि यह मेरी गुप्त प्रतिज्ञा है। अभी तुम्हारे सामने महाराजने वही बात मुझसे कही है। इसलिये इस धर्मभीरु राजाको मारकर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूंगा और सत्यसे उद्धार हो निश्चिन्त हो जाऊंगा।"

यह बात अर्जुनकी सी नहीं मूर्खों और पाखण्डियोंकी सी है। पहले तो यह प्रतिज्ञा ही मूर्खताकी है, दूसरे पूजनीय बड़े भाईका सिर काटने जाना बड़े ही पाखण्डीका काम है पर इसके भीतर बड़ी गूढ़ बात है। कृष्णने इसका विचार विस्तृत रूपसे किया था, इसलिये मुझे भी इस विषयमें कहना पड़ा।

बात यह है कि सत्य परम धर्म्म है। अर्ज्जुन यदि युधिष्ठिरका सिर न काट ले तो वह सत्यसे गिर जाता है। अब प्रश्न यह है कि सत्यकी रक्षाके लिये युधिष्ठिरका वध करना चाहिये

---

(१) पाठकोंसे शायद कहना नहीं पड़ेगा कि गाण्डीव अर्ज्जुनके धनुषका नाम है। यह देवताका दिया हुआ अविनश्वर और धनुषोंमें भयंकर था।

या नहीं ? अर्ज्जुन कृष्णसे पूछता है कि अब तुम्हारी क्या राय है ? क्या करना चाहिये ?"

श्रीकृष्णने जो उत्तर दिया है वह बतानेके पहले पाठकोंसे अनुरोध है कि वह स्वयं इसके उत्तर देनेकी चेष्टा करें। मैं समझता हूं, सब ही पाठक एक मत हो कहेंगे कि ऐसे सत्यके लिये अर्ज्जुनका युधिष्ठिरको मारना उचित नहीं है। कृष्णने भी यही उत्तर दिया था। पर पाश्चात्य नीति जाननेवाले आधुनिक पाठक जिस कारणसे यह उत्तर देंगे कृष्णने उस कारणसे नहीं दिया था। उन्होंने प्राचीन नीतिके अनुसार उत्तर दिया। क्योंकि वह भारतवर्षमें अवतीर्ण हुये थे, इङ्गलैण्डमें नहीं। वह भारतवर्षकी नीति भली भांति जानते थे। यूरपकी नीति उस समय पैदा भी नहीं हुई थी। अगर वह यूरपकी नीतिका ही सहारा लेते तो अर्ज्जुन भी कुछ न समझता।

कृष्णने अर्ज्जुनके समझानेके लिये जो बातें कहीं थीं उनका स्थूल मर्म्म अब कहता हूं। जो विषय विवादका है कमसे कम उसे ही उद्धृत करता हूं।

कृष्णकी पहली बात

"अहिंसा परम धर्म्म है।" इसमें पहली आपत्ति यह हो सकती है कि सब ठौर अहिंसा धर्म्म नहीं है। दूसरी यह कि स्वयं कृष्णने गीतामें जो उपदेश दे अर्ज्जुनको युद्धमें लगाया था वह इसके विपरीत है।

जो अहिंसाका यथार्थ मर्म्म नहीं समझता है वही ऐसी

आपत्तियां करता है । अहिंसा परम धर्म्म है, कहनेसे यह नहीं समझा जाता कि कभी किसी प्राणीकी हिंसा न करनी चाहिये ऐसा करना अधर्म्म है। प्राणियोंकी हिंसा किये विना हम एक घड़ी भी नहीं जी सकते हैं। यह ऐशिक नियम है। जो जल हम पीते हैं उसमें इतने छोटे छोटे कीड़े भरे हैं कि जिन्हें अणुवीक्षण यंत्र (खुर्दबीन) बिना और किसी तरह नहीं देख सकते हैं। हम ऐसे हजारों कीड़े रोज जलके साथ पी जाते हैं। सांस लेनेमें हम हजारों कीड़े सूंघ जाते हैं। चलनेमें हजारों कीड़े कुचल डालते हैं। साग भाजियोंमें हजारों कीड़े पकाकर खा जाते हैं। अगर कहो कि यह अनजानी हिंसा है, इसमें पाप नहीं है, तो मैं कहूंगा कि जानबूझकर प्राणियोंकी हिंसा किये बिना भी हम नहीं जी सकते हैं। जो सांप या बिच्छू हमारे घरमें या चारपाईके नीचे आ बैठा है उसे हम न मारें तो वह हमें काट खायगा। जो बाघ हमपर झपटना चाहता है उसे अगर हम न मारें तो वह हमें खा जायगा। जो हमें मारनेके लिये तलवार उठा चुका है उसे हम न मारें तो वह हमें मार डालेगा। जो चोर आधीरातको हमारे घरमें घुसकर हमारा सरबस ले रहा है और जिसे मार डालनेके सिवा और कुछ उपाय अपने बचावका न हो, तो उसे मार डालना ही धर्म्मकी आज्ञा है। यदि हत्यारेका अपराध प्रमाणित हो जाय और राजनियमके अनुसार फांसीका दण्ड पाने योग्य वह ठहरे तो विचारक उसे फांसीकी सजा देनेके

लिये लाचार है, क्योंकि यह उसका धर्म्म है । जिस कर्म-चारीपर फांसी देनेका भार है वह भी उसे फांसी देनेके लिये लाचार है । सिकन्दर या महमूद गजनवी, आदिलशाह या चङ्गेज खां, तैमूर या नादिर, दूसरा फ्रेडरिक या नैपोलियन, पराया धन और पराया राज्य लेनेके लिये अगणित शिक्षित तस्करोंको ले पराये राज्योंमें घुस गये थे । उनकी संख्या लाखों होनेपर भी वह सबके सब धर्मके अनुसार वधके योग्य थे । यहां हिंसा ही धर्म है ।

आकाशमें उड़नेवाले पक्षीको खाने या खेलनेके लिये मार डालना अधर्म है । मक्खियां एक बूंद मीठेके लिये इधर उधर उड़ती फिरती हैं । खिलाड़ी लड़के उन्हें पकड़कर मार डालते हैं । यह अधर्म है । जो हरिण या मुर्ग हमारी तुम्हारी तरह जीवन बितानेके लिये जगत्में आये हैं उन्हें मारकर अपना पेट भरना अधर्म है । हम वायुमें रहते हैं और मछलियां जलमें । हम दोनों ही जीव हैं । मछलियां पकड़कर खाना अधर्म है ।

अहिंसा परम धर्मका यथार्थ तात्पर्य यही है कि धर्मसङ्गत आवश्यकताके विना हिंसा न करना परम धर्म है । हिंसा रोकनेके लिये हिंसा करना अधर्म्म नहीं है, बल्कि परम धर्म है । यही बात भली भांति समझानेके लिये श्रीकृष्णने अर्जुनको बलाकका इतिहास सुनाया था । उसका सारांश यह है कि बलाक नामके व्याधने एक ऐसा जानवर मार डाला जो बहुतसे प्राणियोंको मारता था । मारते ही उसपर आकाशसे फूल बरसने लगे, अप्सराएं सुन्दर

गीत गाने और बाजे बजाने लगीं। और उस व्याधको स्वर्ग ले जानेके लिये विमान आ पहुंचा। व्याधका पुण्य बस यही था कि उसने हिंसा करनेवालेकी हिंसा की थी।

अहिंसा परम धर्मका अर्थ वही है जो ऊपर कहा गया है। धर्मसंगत आवश्यकताके विना हिंसा न करनी चाहिये, इस बात-से बड़ी गड़बड़ होती है। यह कुछ नयी बात नहीं है सदासे होती आयी है। धर्मसङ्गत आवश्यकताकी दुहाई देकर ही इनकोजि-शन (१) में करोड़ों मनुष्य मारे जा चुके हैं।

(१) The Inquisition—ईसाई धर्मका प्रचार पहले पहल रोमन जातिके लोगोंमें ही हुआ था। उन्होंने फिर इसे यूरपमें फैलाया। इस कारण आरम्भसे ही रोमन कैथोलिक सम्प्र-दायकी प्रधानता थी। इसका आचार्य पोप कहलाता था। पोप सारे यूरपका धर्मनेता और गुरु माना जाता था। उसकी बड़ी धाक थी। पीछे कुछ लोगोंको रोमन कैथोलिक सम्प्रदायके सुधार-की सूझी। वह उसके लिये प्रयत्न करने लगे। ईसाइयोंकी धर्म पुस्तक 'बाइबल" की व्याख्या नये ढंगसे हो गयी। बहुतसे ईसा-इयोंने पोपसे अलग हो नये नये सिद्धान्त निकाले जो प्रचलित रोमन कैथोलिक मतके विरुद्ध थे। पोपको यह बात बहुत बुरी लगी। आरम्भसे ही पोपकी एक प्रधान सभा थी जिसका नाम 'होली इनकोजिशन (पवित्र धर्म-परीक्षण-सभा) था। इसके काम गुप्त रखे जाते थे। रोमन कैथोलिक सम्प्रदायका सिद्धान्त निरूपण करने और पाखण्डियोंको दण्ड देनेका इसे पूरा अधिकार था।

सेण्ट बारथोलोम्यू (१) की हत्या भी धर्म्मार्थ ही हुई थी। धर्मके नामपर ही क्रूसेडवालोंने (२) नररक्तसे पृथिवी रंग

पहले इसका इतना ज़ोर नहीं था, पर पीछे बहुत बढ़ गया। पोपे-ने नये मतवालोंको दबानेके लिये इसीका सहारा लिया। वह जिसे अपने सिद्धान्तके विरुद्ध पाता उसे ही मारता काटता या जीते जी जला देता था। जिसपर जरासा भी सन्देह होता उसी-की शामत आ जाती थी। पोपका मनमाना अत्याचार दिनपर दिन बढ़ता हो गया। स्पेन, फ्रान्स, इटाली, इङ्गलैण्ड आदिमें अनगिन-ती मनुष्य केवल सन्देहपर जीते जी जला दिये गये या बुरी तरह तड़पा तड़पाकर मारे गये। उस समय पोपके विरुद्ध कुछ कहना मृत्युको न्योता देना था। इस "धर्म्म-परीक्षण-सभा" के कारण एक समय यूरपमें चारों ओर हाहाकार मच गया था। भाषान्तरकार।

(१) Bartholomew यह एक ईसाई सन्तका नाम है जिसे लोगोंने आरमेनियाके आलबानोपोलिसमें खाल खेंचकर मार डाला था। कहते हैं, यह भारतवर्ष भी आया था और मैथ्यूकी इंजील यहां छोड़ गया था। भाषान्तरकार।

(२) यूरपके सब ईसाइयों और मुसलमानोंमें जेरूजलमके लिये जो युद्ध हुआ था उसे "क्रूसेडका युद्ध" कहते हैं। ईसा-इयोंकी ओरसे इसमें जो लड़े थे वह 'क्रूसेडर' कहलाते हैं। जेरूजेलम ईसामसीहकी जन्मभूमि है। यह एशियाई रूममें है।

भाषान्तरकार।

डाली थी। मुसलमानोंने भी धर्म्मप्रचारके लिये ही लाखों मनुष्योंकी हत्या की थी। धर्म्मसङ्गत आवश्यकताके विषयमें भ्रम हो जानेके कारण जितनी नरहत्या हो चुकी है, मैं जानता हूं, उतनी और किसी कारणसे नहीं हुई है।

अर्ज्जुन भी अभी इसी भ्रममें पड़ा है। उसने सोचा कि सत्यकी रक्षाके लिये युधिष्ठिरका वध करना चाहिये। केवल यह कह देनेसे कि अहिंसा परम धर्म्म है, उसका भ्रम दूर नहीं होता, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र दूसरी बात कहते हैं।

वह यह है कि *मिथ्या भाषण भी किया जा सकता है पर जीवोंकी हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये।* (१) इसका मतलब यह है कि अहिंसा और सत्यमें अहिंसा ही उत्तम धर्म्म है। दान, तप, भक्ति, शौच, अहिंसा आदि पुण्यकर्म्मोंकी गिनती धर्म्ममें हो सकती है। पर यह सब समान नहीं हैं। इनमें बड़ाई छुटाई भी हो सकती है। शौच या दान क्या सत्य

(१) श्रीकृष्णके जिस वचनके सहारे यह सिद्धान्त निकलता है वह यों है:—

"प्राणिनामवधस्तात सर्व्वज्यायान्मतो मम ।
अनृतां वा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात् कथञ्चन ॥"

अहिंसा परम धर्म्म है, यह कृष्णके वाक्यका ठीक उल्था नहीं है। इसका ठीक उल्था है, "मेरे मतसे जीवोंकी हिंसा न करना सबसे श्रेष्ठ है।" पर अर्थमें विशेष भेद न देख मैंने "अहिंसा परम धर्म्म" इस प्रचलित वाक्यसे ही काम लिया है।

या अहिंसाके बराबर है ? यदि नहीं, तो एक छोटा और दूसरा बड़ा है। यदि ऐसा है, तो सबसे बड़ा कौन है? कृष्ण कहते हैं कि सबसे बड़ा धर्म्म अहिंसा है। सत्य उसके नीचे है।

हमलोग यूरपके चेले हैं। बहुतेरे पाठक यह सुनकर चौंक उठेंगे। यूरपवाले कहते हैं कि किसी दशामें भी मिथ्याभाषण नहीं किया जा सकता है। खैर, न सही। यह बात तो यहां उठायी नहीं जाती है। पर यह कोई नहीं कहेगा कि यूरपवालोंके मतमें हत्यारेसे बढ़कर पापी मिथ्यावादी है, या दोनों बराबर हैं। वह ऐसा नहीं कहते हैं, इसका प्रमाण यूरपका समस्त दण्डविधि शास्त्र है। अगर यही हो तो फिर यूरपवालोंके चेलोंका श्रीकृष्णसे मतभेद होनेका कोई लक्षण दिखायी नहीं देता है। यहां केवल पापके तारतम्यकी बात हो रही है। कोई पाप किसी समय न करना चाहिये। न नरहत्या करनी चाहिये और न झूठ बोलना चाहिये। श्रीकृष्णके कहनेका तात्पर्य्य यह है कि अगर ऐसा मौका आ पड़े जहां झूठ बोलने या नरहत्या किये विना काम न चलता हो, तो वहां झूठ बोल दे, पर नरहत्या न करे। यदि कोई धर्म्मात्मा नीतिज्ञ यह कहता हो कि नरहत्या कर डालो पर झूठ मत बोलो, तो मैं कहूंगा कि यह धर्म्म उसे ही मुबारक हो। परमात्मा न करे ऐसे घृणित धर्म्मका प्रचार भारतवर्षमें हो।

कृष्णने अपना मत कह दिया। अर्ज्जुनको राहपर लानेके लिये यही बहुत था। पर शायद वह पूछ बैठता कि "यह तो

तुम्हारा मत हुआ। पर लोगोंका प्रचलित धर्म्म क्या है ? तुम्हारा मत चाहे ठीक ही हो पर अगर यह प्रचलित धर्म्मके विरुद्ध हो, तो लोग मुझे जरूर झूठा समझेंगे।" इसलिये कृष्ण अपनी राय देनेके बाद प्रचलित धर्म्म कहते हैं। वह बोले "हे धनञ्जय! कुरुपितामह भीष्म, धर्म्मराज युधिष्ठिर, विदुर और यशस्विनी कुन्तीने धर्म्मका जो रहस्य कहा है वही मैं कहता हूं, सुनो।" इतना कहकर वह यों कहने लगे:—

"साधुजन ही सत्य बोलते हैं, सत्यसे बढ़कर और कुछ नहीं है (१)। सत्यका तत्त्व जानना अति कठिन है। सत्य अवश्य बोलना चाहिये।"

यह तो हुई स्थूल नीति। अब निषेध सुनिये।

"परन्तु जहां मिथ्या सत्य और सत्य मिथ्या हो जाता है, वहां झूठ बोलना दोष नहीं है।"

पर क्या कभी ऐसा होता है ? इसका उत्तर यथासमय दूंगा। कृष्णचन्द्र फिर कहते हैं:—

"विवाह, रतिक्रीड़ा, प्राण तथा सर्वस्व जानेके समय और ब्राह्मणोंके निमित्त मिथ्याभाषण करनेमें भी पाप नहीं है।"

यह स्थल घोर विवादका है, पर अभी यह यों ही रहे।

---

(१) "न सत्याद्विद्यते परम्"। इसके पहले कृष्णने कहा है "प्राणिनामवधस्तात सर्व्वज्यायान्मतो मम।" यह दोनों वाक्य एक दूसरेके विरुद्ध हैं। इसका कारण है। एक तो कृष्णका मत है और दूसरा भीष्मादिकी कही प्रचलित धर्म्मनीति है।

ऊपरका अवतरण कालीप्रसन्न सिंहके बंगला महाभारतसे दिया गया है। यह एक ही श्लोकका उलथा है पर मूलमें इस विषयके दो श्लोक हैं। मैं दोनों नकल किये देता हूं।

पहला यह है:—

प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्।
सर्व्वस्वस्यापहारे च वक्तव्यमनृतं भवेत्॥

और दूसरा यों है:—

विवाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्व्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थेह्यनृतं वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥

इन दोनों श्लोकोंका अर्थ तो एक ही है पर पाठमें अन्तर इतना ही है कि दूसरे श्लोकमें ब्राह्मणका नाम है और पहलेमें नहीं। यहां पाठक पूछ सकते हैं कि एक ही अर्थके दो श्लोक क्यों दिये गये?

इसका उत्तर यह है। यह दोनों श्लोक कृष्णकी उक्ति नहीं हैं। यह उन्होंने दूसरी जगहसे उद्धृत (quote) किये हैं। संस्कृत ग्रन्थोंमें ऐसे उद्धृत वचन ठौर ठौर मिलते हैं, पर उनमें स्पष्ट कर यह नहीं लिखा रहता कि यह वचन दूसरी जगहके हैं। महाभारतका गीता-पर्व्वाध्याय ही इसका प्रमाण है। इसका उदाहरण मैंने दूसरे ग्रन्थमें दिखाया है।

यह मैं अन्दाजसे नहीं कहता कि यह दोनों श्लोक दूसरी जगहके हैं। दूसरा श्लोक वशिष्ठका वचन है। यह वशिष्ठ-स्मृतिके १६ वें अध्यायका ३५ वां श्लोक है। यह महाभारतके

आदिपर्व्वमें भी मिलता है जहां कृष्णका कुछ लेन देन नहीं है। हां, पाठमें कुछ फेरफार जरूर हो गया है।

न धर्म्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्व्वधनापहारे
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥

यहां चारका ही (१) उल्लेख है, पर वशिष्ठका "पञ्चानृतान्याहुरपातकानि" ज्योंका त्यों रख लिया गया है। प्रचलित वचन एक मुंहसे दूसरेमें पड़कर यों ही बिगड़ जाते हैं।

अब पहले श्लोककी कथा सुनिये। इसके छ रूप हैं जैसेः—

(क) भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्

(ख) यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यञ्चाप्यनृतं भवेत्

(ग) प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्

(घ) सर्व्वस्वस्यापहारे च वक्तव्यमनृतं भवेत्

अब महाभारतके सभापर्व्वसे एक श्लोक देता हूं। इससे भी कृष्णका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

(च) प्राणान्तिके विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्।

(छ) अनृतेन भवेत् सत्यं सत्येनैवानृतं भवेत्॥

पाठक देख लें कि (ग) और (च) तथा (ख) और (छ) का एक ही रूप है और शब्द भी प्रायः एक ही हैं। इसलिये यह भी पुराना प्रचलित वचन है।

---

(१) यथा 'स्त्रीषु', 'विवाहकाले', 'प्राणात्यये, और 'सर्व्व धनापहारे।' भाषान्तरकार।

यह कृष्णका मत नहीं है, और न उन्होंने इसे अपनी मानी हुई नीति समझकर ही कहा था। उन्होंने भीष्मसे जो सुना था वही कह दिया। यह नीति उनको मानी हुई चाहे न हो पर उन्होंने अर्ज्जुनसे यह क्यों कहा, इसका कारण मैं बता चुका हूं। इसलिये कृष्णचरित्रमें इस नीतिके औचित्य या अनौचित्य-पर विचार करना वृथा है।

पर असली बात अभी बाकी है। अवस्था विशेषमें सत्य मिथ्या और मिथ्या सत्य हो जाता है। ऐसी अवस्थाओंमें मिथ्या ही भाषण करना चाहिये। कृष्णकी भी यही राय थी। यह उन्होंने पीछे कहा है।

अब विचार करना यह है कि क्या कभी मिथ्या सत्य और सत्य मिथ्या हो जाता है? इसका स्थूल उत्तर यह है कि जो धर्म्मसम्मत है वही सत्य है और जो अधर्म्मसम्मत है वही मिथ्या है। धर्म्मसम्मत मिथ्या नहीं है और न अधर्म्मसम्मत सत्य ही है। सत्यासत्यका निर्णय धर्म्माधर्म्मके ऊपर निर्भर है। इस हेतु श्रीकृष्ण पहले धर्म्मतत्वका निर्णय करते हैं। इसमें गीताकी उदारनीतिका गम्भीर शब्द सुनाई देता है। श्रीकृष्ण कहते हैं :--

"धर्म्म और अधर्म्मके निर्णयके विशेष उपाय कहे गये हैं। कहीं कहीं अनुमानसे भी अत्यन्त दुर्बोध धर्म्मका निर्णय करना पड़ता है।"

इससे बढ़कर उदारता यूरपवालोंमें भी नहीं है। इसके

बाद वह कहते हैं—"बहुत लोग श्रुतिको धर्म्मका प्रमाण कहते हैं। मैं इसे बुरा नहीं कहता। पर श्रुतिमें समस्त धर्म्मतत्व नहीं है। इसलिये अनेक स्थानोंपर अनुमानसे ही धर्म्म निर्द्दिष्ट करना पड़ता है।"

इसी बातके लिये सभ्य जगत्में आज भी गड़बड़ मची हुई है। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वरोक्तिके सिवा और कहीं धर्म्म नहीं है। ईश्वरोक्ति वेद हो, बाईबल हो और चाहे कुरान हो। ईश्वरोक्तिके माननेवालोंका आज भी जोर है। उनका कहना है कि धर्म्म ईश्वरके वाक्योंसे निरूपित हुआ है। वह अनुमानका विषय नहीं है। यह बात मनुष्योंकी उन्नतिके पथमें बड़ा भारी कण्टक है। यहांकी बात तो जाने दीजिये, यूरपवाले भी आज इसी ईश्वरोक्तिके फेरमें पड़ उन्नतिसे हाथ धो बैठे हैं। हमारे देशकी अवनतिका यह एक प्रधान कारण है। भारतवर्षका धर्म्म-ज्ञान आज भी वेदों और मनु याज्ञवल्क्यादिकी स्मृतियोंसे जकड़-बन्द है। अनुमानका पथ निषिद्ध ठहराया गया है। मनुष्यादर्श दूर-दर्शी श्रीकृष्णने लोकोन्नतिका यह विषम व्याघात उसी समय देखा था। हिन्दू समाजका धर्मज्ञान देखकर चित्त दुःखी है। इस समय श्रीकृष्णकी शरणमें ही जानेकी इच्छा होती है।

पर अनुमानके लिये कुछ आधार चाहिये। आगके बिना धूआं नहीं होता है। इस आधारपर पर्व्वतसे धूआं निकलता देख-कर जैसे अनुमान किया जाता है कि इसमें आग है वैसे ही धर्मकी पहचानके लिये भी कुछ लक्षण होना चाहिये। श्रीकृष्ण धर्मका वही लक्षण अब बताते हैं:—

"प्राणियोंको धारण करनेके कारण ही धर्मका नाम धर्म है। इसलिये *जिससे प्राणियोंकी रक्षा होती है वही धर्म्म है।*"

यह हुआ कृष्णके धर्मका लक्षण। मैं जानता हूं कि हरबर्ट स्पेनसर (Herbert Spencer) बेनथम (Bentham) और मिल (Mill) के (१) चेले इसके विरुद्ध कभी मत प्रकाश नहीं करेंगे कि यह तो पूरा हितवाद है—प्रायः यूटि-लिटेरियन (utilitarian) ढंगका हो गया है। हां, वैसा ही हो गया है, पर मैंने दूसरी पुस्तकमें समझाया है कि धर्मतत्व हित-वादसे अलग नहीं हो सकता। यह तो जगदीश्वरके सार्वभौमि-कत्व और सर्वव्यापकत्वसे ही अनुमान कर लेना चाहिये। संकीर्ण ईसाई-धर्मसे हितवादका विरोध हो सकता है पर जो हिन्दू-धर्म कहता है कि ईश्वर सब जीवोंमें है उसका वास्त-विक अंश हितवाद ही है। कृष्णका यह वाक्य ही धर्मका यथार्थ लक्षण है।

पहले कह आया हूं कि जो धर्मसंगत है वह सत्य है और जो धर्मसंगत नहीं है वह मिथ्या है। इसलिये जो सबका हित करनेवाला है वह सत्य और जो हितकरनेवाला नहीं, वह मिथ्या है। इस अर्थके अनुसार लौकिक व्यवहारमें जो सत्य है वह धर्मकी दृष्टिसे मिथ्या हो सकता है और लौकिक व्यवहारमें जो मिथ्या है वह धर्मकी दृष्टिसे सत्य हो सकता है। ऐसी अवस्थामें मिथ्या सत्य और सत्य मिथ्या हो जाता है।

(१) इंगलैंण्डके दार्शनिक। भाषान्तरकार।

उदाहरणके तौरपर श्रीकृष्ण कहते हैं, "अगर कोई किसीकी हत्या करनेकी इच्छासे किसीसे उसका पता पूछे, तो जिससे पूछा गया है उसे चुप रह जाना चाहिये। और लाचार बोलना ही पड़े तो झूठ बोलनेमें कुछ हर्ज नहीं है। ऐसे अवसर-पर मिथ्या सत्य स्वरूप हो जाता है।"

श्रीकृष्णने अर्जुनको यह बात समझानेके लिये कौशिकका उपाख्यान सुनाकर भूमिका बांधी थी। उपाख्यान यों है:—

"कौशिक नामक बहुश्रुत श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मण ग्रामके पास ही नदियोंके संगमपर वास करता था। वह सत्यव्रत अर्थात् सदा सत्य बोलता था। सत्य बोलनेमें उसका बड़ा नाम हो गया था। एक दिन बहुतसे मनुष्य लुटेरोंके डरसे वनमें जा छिपे। पीछे गुस्सेमें भरे लुटेरे भी उन्हें ढूंढ़ते हुए सत्यवादी ब्राह्मणके पास आ पहुंचे। उन्होंने ब्राह्मणसे पूछा कि हमारे आगे कुछ लोग भागते हुए आये, वह किधर गये? ब्राह्मण देवताने अपना सत्यव्रत बचानेके लिये कह दिया कि हां, कुछ लोग भागते आये और इस जंगलमें घुस गये हैं। बस, उन पापी लुटेरोंने वनमें घुस उन्हें मार डाला। धर्मकी सूक्ष्म गति न जाननेवाले कौशिकजी महाराज भी सत्य बोलनेके कारण नरकवासी हुए।

इसका कारण यह है। कौशिक जान गया था कि पूछनेवाले लुटेरे हैं और उन भागनेवालोंकी हत्या करना चाहते हैं। अगर न जानता होता, तो वह पापका भागी न बनता। अगर जानता था, तो कृष्णकी रायसे उसने सत्य बोलकर पाप किया। इस

विषयमें पूर्व्व और पश्चिमवालोंमें बड़ा मतभेद है। हमने अपने पाश्चात्य गुरुओंसे सीखा है कि सत्य नित्य है, वह कभी मिथ्या नहीं होता और किसी युद्धमें मिथ्या न बोलना चाहिये। इसलिये शिक्षितोंके आगे कृष्णका मत निन्दित हो सकता है। जो इसकी निन्दा करेगा (मैं इसका समर्थन भी नहीं करता हूं) उससे पूछता हूं कि कौशिकको इस अवस्थामें क्या करना उचित था? सहज उत्तर तो यह है कि चुप रह जाना चाहिये था। यह बात तो स्वयं कृष्णने कही है—इसमें मतभेद नहीं है। अगर लुटेरे मारते, पीटने और चुप न रहने देते, तो क्या करना उचित था? कोई इसका उत्तर यह दे सकता है कि कौशिकको मार खा और जान देकर भी चुप रह जाना मुनासिब था। यह भी मैं माने लेता हूं। पर पूछता हूं कि क्या पृथिवीपर ऐसा धर्म्म चल सकता है? इसपर सांख्यकारका एक सूत्र याद आ गया। महर्षि कपिल कहते हैं "नाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेऽप्यनुपदेशः।" (१) ऐसे धर्म्म प्रचारकी चेष्टा निष्फल जान पड़ती है। यदि सफल हो, तो मानव जातिका परम सौभाग्य है।

यहां इसका ठीक यह मतलब नहीं है। मतलब यह है कि अगर बोलना ही पड़े तो

"अवश्यं कूजितव्यं वा शङ्केरन् वाप्यकूजितः।"

अब क्या करना होगा? सत्य बोलकर क्या जानबूझकर

---

(१) प्रथम अध्याय, नवम सूत्र।

नरहत्यामें सहायता देनी पड़ेगी? जिन्होंने धर्म्मका तत्व यही समझा है उनका धर्म्मवाद ठीक हो चाहे नहीं, पर क्रूर अवश्य है।

प्रतिवाद करनेवाले कह सकते हैं कि कृष्णकी इस नीतिसे हत्यारेकी जान बचानेके लिये झूठी सौगन्द खाना भी धर्म्म हो जायगा। जिन्होंने सत्यका तत्व नहीं समझा है वही ऐसा कहेंगे। मनुष्यजीवनकी रक्षाके निमित्त हत्यारेको दण्ड मिलना बहुत जरूरी है। ऐसा न होनेसे हत्यारे जिसे चाहेंगे मार डालेंगे। इसलिये हत्यारेको दण्डित करना ही धर्म्म है। जो उसकी रक्षाके लिये झूठ बोलता है वह अधर्म्म करता है।

कृष्णका कहा हुआ यह सत्य तत्व निर्दोष और सर्व्वसाधारणके ग्रहण योग्य है या नहीं, यह कहनेके लिये अभी मैं तैयार नहीं हूं। हां, कृष्णचरित्र समझानेके लिये उसे और भी साफ करना पड़ेगा, पर साथ ही यह भी मुझे कहना पड़ेगा कि यूरपवाले जो कहते हैं कि सत्य सदैव सत्य है, उसे कभी न छोड़ना चाहिये, इसका एक गूढ़ कारण है। यदि यही धर्म्म हो कि सत्य जहां मनुष्यका हितकर है वहीं धर्म्म है और जहां हितकर नहीं है वहां अधर्म्म है, तो मनुष्य-जीवन और मनुष्य-समाज छिन्न भिन्न हो जायगी। अवस्था विशेषमें सत्य बोलना चाहिये या असत्य, इसका निर्णय कौन करेगा? ऐरे गैरे करेंगे? अगर ऐरे गैरे करेंगे तो वह कभी धर्म्मसङ्गत न होगा। किसीके भी पूरी शिक्षा, पूरा ज्ञान और पूरी बुद्धि नहीं है। सामान्य

रूपसे बहुतोंके है। विचार-शक्ति तो बहुतोंके बिलकुल कम है। उसपर इन्द्रियोंका वेग, स्नेह ममताका वेग और भय लोभ मोहादिका प्रकोप। यदि धर्म्मकी ऐसी आज्ञा न होती कि सदा सत्य बोलना चाहिये, तो शायद लोग सत्य बोलना छोड़ देते।

ऐसा मत समझिये कि हमारे प्राचीन ऋषियोंने यह नहीं समझा था। उन्होंने समझा था और अच्छी तरह समझ बूझकर ही अवस्था विशेषमें मिथ्या बोलनेका विधान किया है। किन किन अवस्थाओंमें असत्य बोला जा सकता है, यह ऊपर बता चुका हूं। मनु, गौतम आदि ऋषियोंका भी यही मत है। उन्होंने जो कई विशेष विधियोंका विधान किया है वह धर्म्मसम्मत है या नहीं, इसके विचारका मुझे प्रयोजन नहीं। क्योंकि कृष्ण-कथित धर्म्मतत्वको स्पष्ट करना ही मेरा उद्देश्य है। आज कलके यूरपवासियोंकी तरह श्रीकृष्णने भी समझा था कि विशेष विधि बनाये विना साधारण विधिका काममें लाना साधारण लोगोंके लिये बड़ा कठिन है। पर यह भी उन्होंने सोचा कि प्राणसंकट आदि केवल अवस्था विशेषका नाम ले देनेसे ही लोगोंकी समझमें धर्म्म-सम्मत-सत्य नहीं आ जायगा। इससे किसलिये और किस अवस्थामें साधारण विधि तोड़कर असत्य बोलना चाहिये, यह उन्होंने दिखाया है। अब वही और भी खुलासा कर मैं कहता हूं।

दान, तप, शौच, सरलता, सत्य आदिकी गिनती धर्म्ममें हो

सकती है । साधारण रीतिसे यह सब ही धर्म्म हैं पर अवस्था विशेषमें अधर्म्म भी हैं । अनुचित प्रयोग या व्यवहारका ही नाम अधर्म्म है । दानके बारेमें उदाहरण देकर श्रीकृष्ण कहते हैं "सामर्थ्य होनेपर भी चोरोंको कभी दान न देना चाहिये। पापियोंको धन देनेसे जो अधर्म्म होता है उससे दाताको कष्ट भोगना पड़ता है ।" सत्यके बारेमें भी ऐसा ही है । श्रीकृष्णने इसके दो उदाहरण दिये हैं। एक ऊपर दे चुका हूं। दूसरा यह है:—

"जहां झूठी सौगन्ध खानेसे भी चोरोंकी संगतसे छुटकारा मिलता हो वहां झूठी सौगन्ध खा लेना ही अच्छा है। यह असत्य निश्चय ही सत्यके समान हो जाता है ।"

इसके सिवा प्रचलित धर्म्मशास्त्रसे "प्राणात्यये विवाहे" इत्यादि वचन फिर कहे गये हैं।

कृष्णका कहा हुआ सत्यतत्व यही है । इसकी मोटी मोटी बातें यों हैं:—

१ जो धर्म्म-'सम्मत है वही सत्य है' जो धर्म्मविरुद्ध है वह असत्य है ।

२ जिससे लोगोंका हित हो वही धर्म्म है ।

३ इसलिये जिससे लोगोंका हित हो वही सत्य है ।

४ ऐसा सत्य सदा सब ठौर व्यवहार करनेके योग्य है ।

कृष्णके भक्त कह सकते हैं कि इससे बढ़कर सत्यतत्व और कहां दिखा दो तो हम कृष्णका मत छोड़नेको तैयार हैं। यदि

न दिखा सकते हो, तो इसे ही आदर्श मनुष्योचित वाक्य समझ-कर स्वीकार करो ।

अन्तमें मेरा यह भी कहना है कि "जिससे लोगोंकी रक्षा या भलाई हो वही धर्म्म है। हम हिन्दू धर्म्मके मूल स्वरूप श्रीकृष्णके इस कथनको भक्ति सहित मान सकें तो हिन्दू धर्म्म और हिन्दू जातिकी उन्नतिमें अधिक विलम्ब न हो। फिर उपधर्म्मोंकी जिस भस्मसे पवित्र और अतुलनीय हिन्दू धर्म्म छिपा हुआ है वह तुरत ही उड़ जायगी। फिर शास्त्रोंकी दुहाई देकर बुरे काम करना, व्यर्थ कामोंमें शक्ति नष्ट करना, और वृथा समय बिताना इत्यादि दोष दूर होकर सत्कर्म्म और सदनुष्ठानसे हिन्दू समाज गौरवान्वित होगी। फिर धोखेबाजी, आपसकी मार काट, डाह, और दूसरेकी बुराई करनेकी इच्छा लोगोंमें न रहेगी। हम कृष्णकी बतायी उदार नीति छोड़कर शूलपाणि और रघुनन्दनके (१) फेरमें पड़े हैं—लोकहितके काम छोड़कर तिथि, मलमास आदि अनेक विषयोंके पीछे पागल हो गये हैं। ऐसी अवस्थामें हमारी जातीय उन्नति होगी, तो अधःपात किस जातिका होगा? यदि आज भी हम सब हिन्दू एकत्र हो "नमो भगवते वासुदेवाय" कह श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें प्रणाम करें और उनका बताया हुआ लोक-हितकारी धर्म्म यदि ग्रहण

(१) बंगालके प्रसिद्ध स्मृतिकार।

भाषान्तरकार

करें, तो निश्चय ही हमारी जातीय उन्नति होगी, पर अभी हम हिन्दुओंका ऐसा सौभाग्य कहां! (१)

सातवां परिच्छेद।
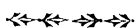
कर्णवध।

अर्ज्जुन श्रीकृष्णकी बात तो समझ गया, पर क्षत्रिय होनेके कारण अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये बहुत व्याकुल हुआ। इसलिये उसने कृष्णसे ऐसा उपाय ढूंढ़नेके लिये कहा जिससे दोनों काम बने—प्रतिज्ञा भी रह जाय और बड़े भाईकी हत्याका पाप भी न लगे।

कृष्णने कहा, माननीय पुरुषोंका अपमान हो जाना ही उनकी मृत्यु है। तुम युधिष्ठिरको कुछ ऐसी बात कहो जिससे उसका अपमान हो। बस, वह अपमान ही उसकी मृत्युके बराबर हो जायगा। अर्ज्जुनने वही किया। पर पीछे उसने कृष्णको फिर आफतमें फंसाया। बोला, मैंने बड़े भाईका अनादर कर बड़ा पाप किया है—अब तो मैं आत्महत्या करूंगा। बस,

(१) बेन्थमकी * बात इंगलैण्डवालोंने मान ली। क्या भारतवासी श्रीकृष्णकी बात न मानेंगे?

* बेन्थम इंगलैण्डका दार्शनिक था। उसका सिद्धान्त था कि जिस कामसे अधिक लोगोंकी अधिक भलाई हो वही धर्म्म है। भाषान्तरकार।

म्यानसे तलवार खेंच ली। श्रीकृष्णने फिर समझाया। कहा, अपने मुंहसे अपनी प्रशंसा करना सज्जनोंके लिये मृत्युके तुल्य है। ' यह बात बिलकुल ठीक है। अर्ज्जुनने आत्मप्रशंसा कर ली। बस रांध कट गयी।

श्रीकृष्ण अर्ज्जुनके सारथी थे। वह अर्ज्जुनके घोड़ोंको ठीक राहपर जैसे चलाते थे वैसे अर्ज्जुनको भी चलाते थे। कहीं अर्ज्जुनके कहनेपर वह रथ चलाते और कहीं उनके कहनेसे अर्ज्जुन चलता था। अब श्रीकृष्णने कर्णके वधके लिये अर्ज्जुनको ठीक किया।

कर्णवध महाभारतकी एक प्रधान घटना है। बहुत दिनोंसे इसका लग्गा लगता चला आ रहा था। कर्ण ही अर्ज्जुनके जोड़का योद्धा था। भीम, अर्ज्जुन, नकुल, सहदेव इन चारोंने मिलकर युधिष्ठरके लिये दिग्विजय की। पर कर्णने अकेले ही दुर्योधनके लिये की थी। अर्ज्जुन द्रोणका शिष्य था और कर्ण द्रोणके गुरु परशुरामका शिष्य था। अर्ज्जुनके पास गाण्डीव धनुष था और कर्णके पास उससे बढ़कर विजय धनुष था। अर्ज्जुनके सारथी श्रीकृष्ण थे और कर्णका सारथी महारथी शल्य था। दोनों ही दिव्यास्त्र जानते थे। दोनों ही एक दूसरेका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा कर चुके थे। भीष्म और द्रोणके वधके लिये अर्ज्जुनकी कुछ भी चेष्टा न थी, उसका पूरा ध्यान कर्णपर ही था। कुन्तीने कर्णसे उसके जन्मका वृतान्त बताकर पांचों पुत्रोंकी प्राण-भिक्षा मांगी, तो कर्णने

युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव इन चारोंकी प्राण-भिक्षा माताको दे दी थी, पर अर्ज्जुनकी किसी तरह नहीं दी। साफ कह दिया कि मैं अर्ज्जुनको मारूंगा या उसके हाथसे मर जाऊंगा।

आज श्रीकृष्ण इसी महायुद्धमें अर्ज्जुनको ले चले। इसी लिये वह अर्ज्जुनको युधिष्ठिरके शिविरमें भी लिवा लाये थे। भीमने युधिष्ठिरकी टोहमें जानेके लिये अर्ज्जुनसे कहा था पर वह लड़ाई खतम किये विना नहीं जाना चाहता था। कृष्ण जिद्द कर उसे ले आये थे। श्रीकृष्णका अभिप्राय यह था कि कर्ण उधर लड़ते लड़ते थक जाय और अर्ज्जुन इधर कुछ देर विश्राम कर नये उत्साहसे लड़नेके लिये तैयार हो जाय। रण-भूमिमें पुनः ले जानेके समय श्रीकृष्णने अर्ज्जुनका उत्साह बढ़ानेके लिये उसकी वीरताकी प्रशंसा की और पहले उसने जो जो विकट काम किये थे उनकी याद दिला दी। द्रौपदीका अपमान, अन्याय युद्धमें अभिमन्युकी हत्या आदि जितने अत्याचार पाण्डवोंपर कर्णने किये थे सबका स्मरण उन्होंने अर्ज्जुनको करा दिया। श्रीकृष्णने जो कुछ कहा था उसमें उद्धृत करने योग्य कुछ नहीं है। अगर कुछ है, तो बस यही कि "विष्णुने दानवोंका पहले जैसे विनाश किया था," "विष्णुके हाथसे दानवोंके मारे जानेपर" इत्यादि इत्यादि। कृष्णके इन वाक्योंसे साफ मालूम होता है कि कृष्णने अपनेको कभी विष्णुका अवतार नहीं कहा है। और न ईश्वर होनेका सिक्का जमाया है। यह पहली तहका एक लक्षण है। दूसरी तहमें यह बात नहीं है— उसमें कुछ दूसरी ही लीला है।

पीछे कर्ण और अर्ज्जुनका युद्ध प्रारम्भ हुआ। उसका वर्णन करना मेरा काम नहीं है। कहा जाता है कि कर्णके सर्प-वाणसे अर्ज्जुनकी रक्षा श्रीकृष्णने की थी। अर्ज्जुन उस वाणको न रोक सका, तो कृष्णने रथमें लात मारी जिससे वह जमीनमें कुछ धस गया और घोड़े भी बैठ गये। इससे अर्ज्जुन-का सिर बच गया, केवल किरीट कटकर गिर पड़ा। इतना काम तो अर्ज्जुनके सिर झुका लेनेसे ही निकल सकता था। खैर, यह बात आलोचनाके योग्य नहीं है। पर कृष्णके सारथीपनकी बड़ाई महाभारतमें ठौर ठौर मिलती है।

लड़ाईके पिछले भागमें कर्णके रथका पहिया धरतीमें धस गया। वह उसे उठानेके लिये रथसे उतर पड़ा। जितनी देरमें उसने पहिया निकाला उतनी देरके लिये उसने अर्ज्जुनसे क्षमा मांग ली थी। जान पड़ता है, अर्ज्जुनने भी क्षमा कर दी थी। क्योंकि कर्ण फिर रथपर बैठ पहलेकी तरह लड़ने लगा। परन्तु क्षमा मांगनेके समय कर्णने दुर्भाग्यवश अर्ज्जुनसे कह दिया था कि इस समय क्षमा करना तुम्हारा धर्म्म है। इसपर अधर्म्मि-योंको दण्ड देनेवाले श्रीकृष्ण बोले:-

"हे सूतपुत्र! तुम भाग्यसे ही अभी धर्म्मका स्मरण करते हो। दुःखमें पड़कर नीच लोग दैवकी निन्दा प्रायः करते हैं, अपने बुरे कामोंकी ओर कभी नहीं देखते। दुर्योधन, दुःशासन और शकुनीने तुम्हारी रायसे एकवस्त्रा द्रौपदीको जब सभामें पकड़ मंगाया तब तुम्हारा धर्म्म कहां गया था? जब दुष्ट शकुनीने तुम्हारे कहने-

पर बुरी नीयतसे जूआ खेलनेमें अनाड़ी राजा युधिष्ठिरको जीता था तब तुम्हारा धर्म्म कहां था ? जब राजा दुर्योधनने तुम्हारी सलाहसे भीमको विष खिलाया तब तुम्हारा धर्म्म कहां था ? जब तुमने वारणावतके लाक्षा-भवनमें सोये हुए पाण्ड-वोंको जलानेके लिये आग लगायी तब तुम्हारा धर्म्म कहां था ? दुःशासनके वशमें पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदीसे यह कहकर तुमने जब हसी की कि "हे कृष्णे ! पाण्डव मरकर सदाके लिये नरकमें गये, अब तू दूसरा खसम खोज ले" और बिना अपराध उसके सताये जानेपर भी तुमने कुछ ध्यान नहीं दिया, तब तुम्हारा धर्म्म कहां था ? जब तुमने शकुनीसे मिलकर राज्यके लालचसे पाण्डवोंको जूआ खेलनेके लिये बुलाया था तब तुम्हारा धर्म्म कहां था ? जब तुमने सप्त महारथियोंके साथ बालक अभि-मन्युको घेरकर मारा था तब तुम्हारा धर्म्म कहां था ? हे कर्ण ! तुमने जब इतनी बार अधर्म्म किया है तब अब धर्म्म धर्म्म चिल्लाकर क्यों गला सुखाते हो ? इस समय धर्म्मकी दुहाई देनेसे तुम्हारा छुटकारा हो जायगा, यह मत सोचो। पुराने समयमें निषधके राजा नलने जूएमें हारा हुआ राजपाट जैसे फिर पाया था वैसे ही धर्म्मपरायण पाण्डव भी अपने बाहुबलसे साथियों सहित शत्रुओंको मारकर पावेंगे। धृतराष्ट्रके लड़के पाण्डवोंके हाथसे जरूर मारे जायंगे, क्योंकि पाण्डवोंका रक्षक धर्म्म है।"

कृष्णकी बातें सुन कर्णने लज्जासे सिर नीचा कर लिया। फिर पहलेकी तरह युद्ध कर अर्ज्जुनके हाथसे मारा गया।

आठवां परिच्छेद।

दुर्योधनवध।

कर्णके काम आनेपर दुर्योधनने शल्यको सेनापति बनाया। अगले दिनकी लड़ाईमें पीठ दिखानेके कारण युधिष्ठिरको कलङ्कका टीका लग चुका था। उसे मिटाना जरूरी था। सर्व्वदर्शी कृष्णने आजके प्रधान युद्धमें युधिष्ठिरको भेजा। उन्होंने भी साहस कर शल्यका सामना किया और उसे मार गिराया।

कौरवोंकी सेनापर पाण्डवोंने आज खूब हाथ साफ किया। कृप और अश्वत्थामा यह दो ब्राह्मण, यदुवंशी कृतवर्म्मा और स्वयं दुर्योधनजी महाराज बस यही चार बच रहे थे। दुर्योधन भागकर द्वैपायन तालाबमें छिप रहा। पाण्डवोंने उसे ढूंढ़ निकाला। पर युद्ध किये बिना मारा नहीं।

युधिष्ठिरकी बुद्धि बड़ी मोटी थी। उसकी इस मोटी बुद्धिके कारण ही पाण्डवोंको इतना कष्ट उठाना पड़ा। इस समय भी उसने अपनी बुद्धिमानी दिखा ही दी। उसने दुर्योधनसे कहा, "तुम मनमाना हथियार लेकर हममेंसे किसी एकके साथ आकर लड़ो। हम सब कोई बैठकर तमाशा देखेंगे। मैं कहता हूं कि अगर तुम हममेंसे किसी एकको मार डालोगे, तो सारा राज्य तुम्हारा होगा।" दुर्योधन बोला, "मैं गदायुद्ध करूंगा।" श्रीकृष्ण जानते थे कि गदामें उसका मुकाबला करनेवाला पाण्डवोंमें भीमके सिवा और कोई नहीं है। दुर्योधनने अगर किसी और

पाण्डवके साथ लड़ना चाहा, तो पाण्डवोंको फिर भीख मांगनी पड़ेगी। यह सोचकर कृष्णने युधिष्ठिरको डांटा। उन्होंने यह काम बड़े अच्छे ढंगसे किया। पहले कोई कुछ न बोला। सब ही अपने अपने बलके घमण्डमें चूर हो रहे थे।

दुर्योधन भी उस समय बड़े जोशमें आ गया था। उसके जोशने ही काम बना दिया। वह बोल उठा, जिसका मन हो मेरे साथ गदायुद्ध कर ले। मैं सबको मार डालूंगा। यह सुनते ही भीमसेन गदा तान आगे बढ़ा।

इसके आगे महाभारतका सुर फिर बदल गया है। अठारह दिन लड़ाई हुई, इसमें भीम और दुर्योधनका बराबर सामना हुआ। गदायुद्ध भी कई बार हुआ। इसमें दुर्योधन बराबर हारता रहा। पर आज यही राग अलापा गया है कि भीम गदा चलानेमें दुर्योधनके जोड़का नहीं है। वह गदा खाते खाते बेदम हो चला। इस भूमिकाका कारण वही दारुण प्रतिज्ञा जो भीमने सभापर्व्वमें की थी। दुर्योधनने जब द्रौपदीको जूएमें जीत लिया तथा दुःशासन एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदीको चोटी पकड़ सभामें घसीट लाया और नंगी करने लगा तब भीमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुःशासनको मारकर उसके कलेजेका खून पीऊंगा। भीमने महाश्मशानसे विकट रणस्थलमें दुःशासनको मारा और राक्षसकी तरह उसका गर्म खून पीकर सबसे चिल्लाकर कहा कि "मैंने अमृत पान किया।" दुर्योधनने उसी सभामें "द्रौपदीकी ओर देखकर हंसते हंसते धोती

उठाकर सब लक्षणोंसे युक्त, वज्रके समान मजबूत, केलेके थम और हाथीके सुण्डसी अपनी जांघ दिखायी थी।" भीमने उसी समय प्रतिज्ञा की कि युद्धमें गदासे इसकी जांघ न तोड़ूं तो मैं नरक-वास करूं।

आज वही जांघ गदासे तोड़कर प्रतिज्ञा पूरी करनी है। पर इसमें एक बड़ी रुकावट आ पड़ी है। गदायुद्धमें नाभिके नीचे गदा मारनेका नियम नहीं है। नियम भंग करनेसे अन्याय-युद्ध होता है। और न्याययुद्धमें भीमसेन दुर्योधनको मार भले ही ले, पर प्रतिज्ञा पूरी न कर सकेगा।

जो अपने ताऊके लड़केके कलेजेका खून पीकर नाचा था उस राक्षसके लिये माथे या जांघोंमें गदा मारना कौन बड़ी बात है! जो वृकोदर द्रोणके भयसे झूठ बोलने और दगाबाजी करनेमें सबके आगे था वह जांघमें गदा मारनेके लिये दूसरेकी बात क्यों सुनने लगा? पर वहां मामला ही कुछ और हुआ। भीमसेन जांघ तोड़नेवाली प्रतिज्ञा भूल गया। कह चुका हूं कि दूसरी तहके कवि (यहां इनकी ही कलमकी करतूत देखनेमें आती है) चरित्रकी संगतिपर बिलकुल ही ध्यान नहीं देते हैं। उन्होंने यहां भीमके चरित्रका कुछ भी निर्वाह न किया और न अर्ज्जुनके चरित्रका ही किया। जांघोंका तोड़ना भीम बिलकुल ही भूल गया। और जिस परम धार्म्मिक अर्ज्जुनने द्रोणवधके समय अपने गुरु, धर्म्मके आचार्य्य, मित्र और परम श्रद्धास्पद श्रीकृष्णके कहनेपर भी झूठ बोलना मंजूर नहीं किया था उसीने

आप ही आप अभी भीमको अन्याययुद्धमें लगाया । पर कृष्णके मुंहसे कहलाये बिना कविकी कामना पूरी नहीं होती । इसलिये यह बांधनू बांधा गया :—

अर्ज्जुनने भीम और दुर्योधनकी लड़ाई देख श्रीकृष्णसे पूछा कि इन दोनोंमें तेज कौन है ? कृष्णने कहा, भीम बलमें अधिक है । पर दुर्योधन गदा चलानेमें होशियार है । जो जानके डरसे भाग जाय और फिर आकर शत्रुओंका सामना करे उसे समझ लो कि वह जानको हथेलीपर रखकर आया है और बड़ी सावधानीसे लड़ेगा । जानपर खेलकर जो लड़ता है उसे कोई नहीं जीत सकता । इसलिये भीम अभी नियम भंगकर दुर्योधनको न मार डालेगा, तो दुर्योधन जीत जायगा और युधिष्ठिरके कथनानुसार राजपाट फिर ले लेगा ।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अर्ज्जुनने "अपनी बायीं जांघ ठोंककर भीमको इशारा किया ।" भीमने दुर्योधनकी जंघामें गदा मारकर गिरा दिया ।

न्याय जैसा ईश्वर-प्रेरित है वैसा ही अन्याय भी है । यही दिखलाना यहां दूसरी तहके कविका उद्देश्य है । युद्धके समय बलराम भी उपस्थित थे । भीम और दुर्योधन दोनों ही उनके चेले थे । दोनोंने उनसे गदा चलाना सीखा था । पर दुर्योधनको ही वह अधिक चाहते थे । रेवतीवल्लभ बलराम सदा दुर्योधनका ही पक्ष लेते थे । भीमने नियम भंगकर जब दुर्योधनको गिरा दिया तब बलराम गुस्सेमें आ हल उठा भीमकी ओर दौड़े ।

बलरामके कन्धेपर सदा हल रहता था इसीसे वह हलधर कहलाते थे। वह क्यों सदा हल ढोये फिरते थे, इसका सबब अगर कोई पूछे तो मैं कुछ न कह सकूंगा। खैर, कृष्णने उन्हें बहुत समझाया बुझाया। वह मान तो गये पर कृष्णकी बात उन्हें बहुत बुरी लगी। वह बिगड़कर वहांसे चल दिये।

पीछे एक वीभत्स घटना हुई। भीमसेन गिरे हुए दुर्योधनके सिरमें लातें मार रहा था। युधिष्ठिरने मने किया, पर वह न माना। कृष्णने उसके इस घृणित कामके लिये युधिष्ठिरको ऊंची नीची सुनायी। कहा, तुमने इसे क्यों नहीं रोका? इधर पाण्डवोंके ओरवाले भीमसेनकी तारीफ करने और दुर्योधनकी जलीकटी सुनाने लगे। कृष्णने इसपर बिगड़कर कहा "अधमरे शत्रुको जलीकटी न सुनानी चाहिये।"

कृष्णकी यह सब बातें उनके जैसे आदर्श पुरुषके योग्य ही हैं। पर इसके बाद जो कुछ है उसे पढ़कर बड़ा आश्चर्य्य होता है।

आश्चर्य्यकी पहली बात तो यह है कि श्रीकृष्ण औरोंसे तो कहते हैं कि अधमरे शत्रुको जलीकटी न सुनानी चाहिये, पर आप ही फिर दुर्योधनको जलीकटी सुनाने लगे।

आश्चर्य्यकी दूसरी बात दुर्योधनका उत्तर है। वह तबतक मरा नहीं था, पड़ा पड़ा सांसें ले रहा था। वह श्रीकृष्णकी जलीकटी सुनकर कहने लगा :—

"हे कंसके दासके पुत्र, तुम्हारे कहनेसे अर्ज्जुनने भीमसेनको

इशारा किया और उसने अधर्म्म युद्ध कर मुझे मार गिराया। इससे तुम्हें लज्जा भी नहीं आती है। तुम्हारे अन्यायसे ही धर्म-युद्धमें रोज हजारों राजा मारे गये (१)। तुमने ही शिखण्डीको आगे कर पितामहको (२) मरवाया है। अश्वत्थामा नामके हाथीके मारे जानेपर तुम्हारी ही चालाकीसे आचार्यने अस्त्र-शस्त्र रख दिये थे और दुष्ट धृष्टद्युम्नने तुम्हारे सामने ही उनपर खड्ग उठाया और तुम कुछ न बोले (३)। कर्णने अर्ज्जुनके मारनेके लिये जो शक्ति बहुत दिनोंसे हिफाजतके साथ रख छोड़ी थी उसे तुमने चालाकीसे घटोत्कचपर चलवा कर खराबकर दिया (४)। सात्यकीने तुम्हारे ही कहनेसे योगासनमें बैठे हुए लूले भूरिश्रवाको मार डाला था (५)। महावीर कर्णने अर्ज्जुनको मारनेके

(१) ऐसा सोचनेका कोई कारण महाभारतमें कहीं नहीं है। किसी तहमें नहीं है।

(२) श्रीकृष्णका इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। महाभारतमें भी ऐसा कहीं नहीं लिखा है।

(३) वह तो शत्रुको वध करता था फिर श्रीकृष्ण क्यों बोलते?

(४) श्रीकृष्णने इसके लिये कुछ भी चालाकी नहीं की। महाभारतमें तो लिखा है कि कौरवोंके कहनेसे कर्णने घटोत्कच-पर शक्ति चलायी थी।

(५) यह सरासर झूठ है। ऐसी कथा महाभारतमें कहीं नहीं है। सात्यकीने भूरिश्रवाको जरूर मारा है पर श्रीकृष्णके कहनेसे नहीं। उन्होंने तो और मने किया था।

लिये सर्पवाण छोड़ा तो तुमने उस्तादी कर उसे बचा लिया (१) और अन्तमें कर्णके रथका पहिया धरतीमें धंस गया तो वह उसे निकालने लगा। तुमने मौका पा चालाकी (२) कर अर्जुनसे उसे मरवा डाला। इसलिये तुम्हारे समान पापी, निर्दयी, निर्लज्ज और कौन है ? अगर तुम भीष्म, द्रोण, कर्ण और मेरे साथ धर्म-युद्ध करते तो कभी न जीत सकते। तुम्हारे नीच उपायोंसे ही हम लोग स्वधर्मानुगामी हो सब समेत मारे गये।"

इन कई वाक्योंपर मैंने टिप्पणियां लगायी हैं, उन्हें पाठक जरा ध्यान देकर पढ़ें। दुर्योधनका इलजाम बिलकुल गलत है। ऐसी गलत गालियां महाभारतमें और कहीं नहीं हैं। इसीसे मैंने कहा था कि दुर्योधनका उत्तर और भी आश्चर्यका है।

आश्चर्यकी तीसरी बात श्रीकृष्णका प्रत्युत्तर देना है। पहले दिखा चुका हूं कि कृष्ण बड़े गम्भीर और क्षमाशील थे। वह कभी किसीको गालियोंका जवाब नहीं देते थे। उन्होंने भरी सभामें शिशुपालकी गालियां चुपचाप सुन लीं, जरा चूंतक न की। वही कृष्ण दुर्योधनको खरी खोटी कहेंगे ? वह भी कब ? जब कि

(१) यह उस्तादी अपने पैरोंके जोरसे पहियेको जमीनमें धंसाना है। कृष्णका यह काम बहुत उचित था। रथीकी रक्षा करना सारथीका धर्म है।

(२) क्या चालाकी हुई ? महाभारतमें तो कृष्णकी कोई चालाकी नहीं है। उसमें तो बस इतना ही है कि युद्धमें अर्जुनने कर्णको मारा।

वह सांसें गिन रहा था। ऐसी अवस्थामें तिरस्कार करना स्वयं श्रीकृष्ण बुरा समझते थे। पर तोभी उन्होंने दुर्योधनको खूब जलीकटी सुनायी। उसके सब पापोंका वर्णन कर अन्तमें कहा "तुमने बड़े पाप किये हैं, अब उन्हींका फल भोगो।"

इसपर दुर्योधन बोला "मैंने अध्ययन किया, विधिपूर्व्वक सम्मान पाया, ससागरा वसुन्धराका शासन किया, शत्रुओंके सिरपर लातें मारीं और राजाओंको जो सुख दुर्लभ थे उनका भोग किया, परमोत्तम ऐश्वर्य्य प्राप्त किया और अन्तमें धर्म्मपरायण क्षत्रियों-की वाञ्छित गति समरभूमिमें पायी है। इसलिये मेरे समान अब भाग्यवान् और कौन है ? मैं तो अब अपने भाईबन्दों और कुटुम्बियोंके साथ स्वर्ग जाता हूं, तुम लोग शोकसे व्याकुल हो मुर्दोंके समान इस धरतीपर रह जाओ।"

इस उत्तरसे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता है। जो बाजी लगा सब कुछ हार चुका है, वह अगर दुर्योधनकी तरह घमंडी हो, तो जीतनेवालेसे जरूर कहेगा कि मैंने ही बाजी मारी है और तुम हार गये हो। दुर्योधनने ऐसी बातें तालाबमें भी कही थीं। लड़ाईमें मरनेसे स्वर्ग मिलता है, यह सब क्षत्रिय ही कहते थे। दुर्योधनका यह उत्तर अद्भुत नहीं है, हां इस उत्तरका फल अल-बत्ते अद्भुत है। दुर्योधनकी बात पूरी होते ही "आकाशसे पुष्प वृष्टि होने लगी। गन्धर्व्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएं राजा दुर्योधनका यश गाने लगीं। सिद्धगण साधु २ कहने लगे। शीतल सुगन्ध मन्द वायु बहने लगी। दिङ्मण्डल और आकाश निर्मल

हो गये। श्रीकृष्ण पाण्डवों सहित दुर्योधनका यह अद्भुत सम्मान देखकर लज्जित हो गये। भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवा अधर्म युद्धमें मारे गये, यह सुनकर लोग शोक करने लगे।"

महाभारतके पापियोंमें जो सबसे अधम समझा गया है उसके लिये यह अद्भुत सम्मान और साधुवाद! और जो धर्म्मात्मा-ओंमें सबसे श्रेष्ठ समझे गये हैं वह अपने पापोंके लिये लज्जित हों!! यह महाभारतमें अनोखी बात है। सिद्ध, अप्सराएं, गन्धर्व्व सब मिलकर कहते हैं कि दुरात्मा दुर्योधन धर्म्मात्मा है और कृष्ण पाण्डवादि महा पापात्मा हैं। यह बड़ी विचित्र बात है। क्योंकि इसका मेल महाभारतसे कुछ भी नहीं है। सिद्ध तथा गन्धर्वादि तो दूर रहें यदि कोई मनुष्य भी महाभारतमें इस तरह प्रशंसा करे, तो आश्चर्य होगा, क्योंकि दुर्योधनका अधर्म्म और कृष्ण तथा पाण्डवोंका धर्म्माचरण वर्णन करना ही महाभारतका उद्देश्य है। इसपर तुर्रा यह कि जब दुर्योधनसे उन्होंने सुना कि भीष्म, द्रोण, कर्ण, और भूरिश्रवा अधर्म्मसे मारे गये हैं तब वह लोग शोक करने लगे। अबतक मानों वह लोग कुछ जानते ही न थे, परम शत्रुके कहनेसे भलेमा-नुसकी तरह शोक दिखलाने लगे। वह लोग जानते थे कि हम लोगोंने भीष्म या कर्णको अधर्म्मसे नहीं मारा है, पर जब परम शत्रु दुर्योधन कह रहा है कि तुमने उन्हें अधर्म्मसे मारा है तब भला वह विश्वास क्यों न करते ? वह जानते थे कि हम लोगोंमेंसे किसीने भूरिश्रवाको नहीं मारा, सात्यकीने मारा है, बल्कि सात्य-

कीको श्रीकृष्ण, अर्ज्जुन और भीमने रोका भी था, पर जब परमशत्रु दुर्योधन कहता है कि तुमने ही मारा और तुमनेही अधर्म्म किया है, तब बेचारे पाण्डवोंको लाचार हो अपना दोष मानना और अपने कियेपर पछताना ही पड़ा। पाठको ! आप ही बताइये, भला ऐसी ऊटपटांग बातोंकी मैं क्या आलोचना करूं ? पर इस अभागे देशके लोगोंका विश्वास है कि पुस्तकोंमें जो कुछ लिखा है वह ऋषिवाक्य है, अभ्रान्त है और शिरोधार्य है। इसलिये लाचार हो मुझे यह भी झख मारना पड़ा।

अद्भुत बातोंकी इतिश्री अभी नहीं हुई है। कृष्ण अपने अधर्मोंके लिये लज्जित तो हुए, पर तुरत ही बड़ी निर्लज्जताके साथ पाण्डवोंके सामने अपने अधर्मोंका आल्हा गाने लगे (१)

(१) यथा, "भीष्मादि महारथी और राजा दुर्योधन समर विद्यामें असाधारण पण्डित थे। तुम लोग धर्म युद्धमें उन्हें कभी जीत न सकते। मैंने तुम्हारी भलाईके लिये बड़े बड़े उपायों और मायाके प्रभावसे उन्हें मार गिराया है। यदि मैं ऐसी चालें न चलता, तो तुम्हारी जीत कभी न होती और न तुम्हें राजपाट और धन सम्पत्ति ही मिलती। देखो, भीष्मादि चारों महात्मा भूमण्डलमें अतिरथी समझे जाते हैं। लोकपाल सब इकट्ठ होकर भी उन्हें धर्म्मयुद्धमें नहीं मार सकते थे। और देखो, समर भूमिमें न थकनेवाले उस गदाधारी दुर्योधनको दण्डधारी यमराज भी धर्म्मयुद्धमें नहीं मार सकता था, भीमने उसे जिस बेईमानीसे मार गिराया है उसका अब जिक्र करना बेफा-

मतलब यह कि दुर्योधनके मुंहसे जो बातें कहलायी गयी हैं वह बिलकुल बेजड़ हैं । द्रोणवधादि वृत्तान्त अमौलिक है, यह मैं पहले ही सिद्ध कर चुका हूं । जो अमौलिक है उसके सम्बन्धकी जो बातें हैं वह भी अवश्य अमौलिक हैं । केवल इतना कह देना आवश्यक है कि यहां दूसरी तहके कविकी कर-तूत भी कुछ नहीं दिखायी देती है । मालूम होता है, यहां तीसरी तहके कवियोंका कलम-कुठार चला है । दूसरी तहके कवि कृष्णके भक्त और यह कृष्णके द्वेषी हैं । यह मैं पहले ही कह चुका हूं कि शैवादि अवैष्णव या वैष्णवविद्वेषियोंने भी स्थान स्थानपर महाभारतका कलेवर बढ़ाया है । इन्होंने ही यहां कलम-कुल्हाड़ा चलाया हो तो आश्चर्य्य नहीं । फिर यह काम कृष्णके भक्तोंका होना भी असंभव नहीं है । निन्दाके मिस स्तुति करना भारतके कवि-योंका एक गुण है (१) । वह बात शायद यहां भी हो सकती है ।

जो हो, इसके बाद ही दुर्योधन अश्वत्थामासे कहता है कि मैं अमित तेजस्वी वासुदेवकी महिमा अच्छी तरह जानता हूं । उन्होंने मुझे क्षत्रियधर्मसे भ्रष्ट नहीं किया । इस हेतु मेरे लिये शोक करनेकी आवश्यकता क्या है ?

यहा है । लोग कहते हैं कि शत्रु जब बहुत बढ़ जाय तब कूटयुद्ध-में उनका विनाश करना चाहिये । महात्मा देवताओंने कूटयु-द्ध करके ही असुरोंका संहार किया था । उनका अनुकरण सब-को ही करना चाहिये । ऐसा निर्लज्ज अधर्म कहीं सुननेमें नहीं आता है ।

(१) उदाहरण दिये विना बहुतेरे पाठकोंकी समझमें यह

ऐसी ऊटपटांग बातोंकी आलोचना करना क्या झख मारना नहीं है ?

न आवेगा। मदन-दहनके पीछे विलापके समय रतिसे बंगला कवि भारतचन्द्र कहलाता है—

"एकेर कपाले रहे, आरेर कपाल दहे,
आगुनेर कपाले आगुन।"

इसमें अग्निकी निन्दा अवश्य है, पर तनिक उलट फेर करनेसे स्तुति हो जाती है, यथा "हे अग्नि, तू शम्भुके तो ललाटमें रहती है दूसरोंको जलाती है। तेरी शिखामें ज्वाला हो।"*

* और हिन्दीमें व्याजस्तुतिका उदाहरण, यथा—

"जमुना, तुम अविवेकिनी, कौन लियो यह ढंग।
पापिनसों निज बन्धुको, मान करावत भंग॥"

यहां निन्दाके मिस श्रीयमुनाजीके 'पतित उधारन स्वभाव' की प्रशंसा की गयी है। अर्थात् यमुनाजी पापियोंको अपने भाई यमराजके पास न भेज सीधे स्वर्गको भेज देती हैं। भाषान्तरकार।

नवां परिच्छेद।

युद्धका अन्त।

युधिष्ठिरने सुना कि दुर्योधन अधर्म्मयुद्धमें मारा गया है तो उसका माथा ठनका। उसे भय होगया कि तपस्विनी गान्धारी यह सुनकर कहीं पाण्डवोंको भस्म न कर दे। इसलिये उसने श्रीकृष्णसे हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्रको और गान्धारी-को समझा आनेके लिये कहा।

यह कथा पहली तहकी नहीं है, क्योंकि युधिष्ठिर श्रीकृष्णसे कहता है "तुम अव्यय तथा सबके सृष्टि और संहार करनेवाले हो।" इसके कुछ ही देर पहले श्रीकृष्णके उतरते ही अर्ज्जुनका रथ जलकर राख होगया था। अर्ज्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णने कहा "ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे इस रथमें पहले ही आग लग गयी थी। मैं उसपर था इसीसे अबतक वह नहीं जला।" अर्थात् मैं देवता या विष्णु हूं। मेरे प्रभावसे वह बच रहा था। यह दूसरी या तीसरी तहकी रचना है।

कृष्णने हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको सम-झाया बुझाया। उद्धृत करने या आलोचनायोग्य इसमें एक भी बात नहीं है।

पीछे दुर्योधनने अश्वत्थामाको सेनापति बनाया। पर उस समय सेनामें केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य और कृतवर्म्मा ही थे। शल्यपर्व्व यहीं समाप्त है।

फिर सौप्तिकपर्व्व आरम्भ होता है। इसमें बड़ी भीषण लीलाएं भरी हैं। पहले भागमें तो अश्वत्थामा चोरोंकी तरह आधीरातको पाण्डवोंके डेरेमें घुस गया और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पांचों पुत्रों और सब पाञ्चालों, सेना और सेनापतियोंको उसने सोयेमें मार डाला। पांचों पाण्डवों और श्रीकृष्णके सिवा और कोई जीता न बचा।

कुरुक्षेत्रका यह युद्ध वास्तवमें कुरुपाञ्चालोंका युद्ध था; पाञ्चालोंकी इतिश्री होनेसे युद्धकी भी इतिश्री होगई।

इसके बाद सौप्तिकपर्व्वमें ऐषीक पर्व्वाध्याय है। इसमें अश्वत्थामा खून कर पाण्डवोंके डरसे जंगलमें जा छिपा। दूसरे दिन पाण्डव उसकी खोजमें निकले। अश्वत्थामा पकड़ा गया। उसने अपनी रक्षाके लिये बड़ा भयंकर ब्रह्मशिरा नामका अस्त्र चलाया। अर्ज्जुनने भी उसके निवारणके निमित्त ब्रह्मशिरास्त्र चलाया। दोनों अस्त्रोंके तेजसे ब्रह्माण्डके भस्म हो जानेकी सम्भावना देख ऋषियोंने आकर बीचबिचाव किया। अश्वत्थामाने अपने सिरकी मणि काटकर द्रौपदीको उपहार दिया। और इधर ब्रह्मशिराने अर्ज्जुनकी पुत्रवधू उत्तराका गर्भ नष्ट कर दिया।

इन सब अस्वाभाविक घटनाओंपर टीका टिप्पणी व्यर्थ है। इस सौप्तिकपर्व्वमें कृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई घटना नहीं है। इसलिये यह आलोचनाके योग्य नहीं है।

अनन्तर स्त्रीपर्व्व है। स्त्रीपर्व्व और भी भीषण है। इसमें

खेत रहे वीरोंकी स्त्रियोंका विलाप है । ऐसा विलाप कहीं सुननेमें न आया । इसमें कृष्ण विषयक केवल दो ही बातें हैं ।

(क) एक तो धृतराष्ट्रने सोचा था कि छातीसे लगानेके समय भीमको मसक डालूंगा । पर श्रीकृष्णने इसके लिये पहलेसे ही लोहेका भीम मंगवा रखा था । अन्ध राजाने उसे ही मसककर तोड़ डाला । अनैसर्गिक घटना छोड़नेके योग्य है । इसलिये इसपर कुछ न कहूंगा ।

(ख) और दूसरी, गान्धारीने कृष्णके सामने बहुत विलाप किया, पर पीछे उन्हें ही शाप दे डाला । बोली, "जनार्द्दन, जब कौरवों और पाण्डवोंमें क्रोधकी आग धधक रही थी तब तुम क्यों चुपचाप बैठे रहे ? तुम्हारे पास बहुत भृत्य और सेना हैं, तुम शास्त्रोंके जाननेवाले हो, बोलनेमें चतुर और असाधारण बली हो, यह सब होनेपर भी तुमने जानबूझकर कौरवोंको नाश होने दिया और तुम कुछ न बोले । इसलिये इसका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा । मैंने पतिकी सेवाकर जो तप किया है उसका प्रभाव बड़ा दुर्लभ है । मैं उसीसे तुम्हें शाप देती हूं कि तुमने कौरवपाण्डवोंका जैसे नाश किया है वैसे ही तुम अपने कुटुम्बका भी करोगे । तिरेसठ वर्ष (१) बाद तुम मंत्रीहीन, कुटुम्बहीन और पुत्रहीन होगे और वनमें इधर उधर भटकते हुए बड़ी बुरी तरह मारे जाओगे । तुम्हारे

---

(१) तिरेसठ ही क्यों कहा ?

कुलकी स्त्रियां भरतकुलकी स्त्रियोंकी तरह पुत्रहीन और अनाथ हो विलाप और दुख करेंगी।"

श्रीकृष्णने हंसकर .वाब दिया, "देवि, मेरे सिवा ऐसा कोई नहीं है जो यदुवंशियोंका नाश करे। उनके विनाश करनेका विचार मैंने बहुत दिन पहले ही कर लिया है। मेरा जो कर्त्तव्य है वही आपने अभी कहा है। यादवोंको मनुष्य क्या देव दानव भी नहीं मार सकते हैं। इसलिये वह आप ही लड़ मरेंगे।"

दूसरी तहके कविने मौसलपर्व्वकी भूमिका पहलेसे ही इस प्रकार बांध रखी। मौसलपर्व्व दूसरी तहके कविकी रचना है, इसकी भूमिका मैंने भी पहलेसे बांध ली है।

दसवां परिच्छेद।

विधि संस्थापन।

अब हम लोग अति दुस्तर कुरुक्षेत्र युद्धके पार होगये। कृष्णचरित्र अब फिर विमल और प्रभा भासित होने चला। पर शान्ति और अनुशासनपर्व्वमें कृष्ण स्पष्ट रूपसे ईश्वर माने गये हैं।

युद्धादिके अन्तमें विकट बुद्धिवाले युधिष्ठिरने फिर अपनी बुद्धिका परिचय दे डाला है। वह अर्ज्जुनसे बोला "इतने भाई-बन्दोंको मारकर मैं जरा भी सुखी नहीं हुआ। मैं जंगलमें

जाकर रहूंगा और भीख मांगकर खाऊंगा।" अर्ज्जुन इसपर बहुत बिगड़ा। दोनोंमें बड़ी कहासुनी हुई। निदान भीम, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, और स्वयं कृष्णने समझाया। पर युधिष्ठिर माननेवाला जीव न था। व्यास, नारदादिने समझाया। पर वह क्यों किसीकी सुनने लगा था? अन्तमें कृष्णके कहने सुननेसे उसने बड़ी धूमधामके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।

श्रीकृष्णने युधिष्ठिरका राज्याभिषेक कराया; और उसने उनकी स्तुति की। यह स्तुति भगवानकी है। युधिष्ठिरने स्तुति कर श्रीकृष्णको प्रणाम किया। कृष्ण युधिष्ठिरसे उम्र छोटे थे। इसके पहले उन्होंने कृष्णको न कभी प्रणाम किया और न कभी उनकी स्तुति ही की थी।

इधर कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्म शरशय्यापर पड़े बड़े चावसे उत्तरायणकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऋषिगण उन्हें घेरे बैठे हैं और वह सर्व्वमय, सर्व्वाधार, परम पुरुष कृष्णके ध्यानमें मग्न हैं। उनकी स्तुतिसे श्रीकृष्णका आसन डोल गया और युधिष्ठिरादिको साथ ले भीष्मको दर्शन देने चले। युधिष्ठिरने रास्तेमें कह सुनकर श्रीकृष्णसे परशुरामका उपाख्यान सुन लिया।

कृष्णने युधिष्ठिरको भीष्मसे उपदेश ग्रहण करनेकी सम्मति दी। कहा कि भीष्म सब धर्म्मोंके वेत्ता हैं। उनके मरनेके बाद जो कुछ वह जानते हैं उनके साथ ही लोप हो जायगा। मेरी इच्छा है कि उनके मरनेके पहले उनकी विद्या और ज्ञान जगत्में फैल जाय। इसीलिये मैं उनके उपदेश सुननेके लिये तुम्हें कहता

हूं श्रीकृष्णने भीष्मसे भी जाकर कहा कि आप युधिष्ठिरको धर्म्मोपदेश दे अनुगृहीत कीजिये।

पर भीष्म राजी न हुए। बोले, धर्म्म कर्म्म सब तुममें ही है, तुम सब जानते हो। तुम ही युधिष्ठिरको धर्म्मोपदेश करो। मैं आप ही वाणोंके मारे बेचैन हूं। बुद्धि ठिकाने नहीं है। मुझसे यह काम न हो सकेगा। इसपर कृष्ण बोले, मेरे वरसे तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जायंगे। और तुम्हारा अन्तःकरण ज्ञानसे प्रकाशित हो जायगा, बुद्धि स्थिर रहेगी, तुम्हारा मन केवल सत्व-गुणमें ही रहेगा। तुम दिव्यचक्षु प्राप्त कर भूत भविष्यत् सब देख पाओगे।

कृष्णकी कृपासे सब कुछ हो गया। पर तो भी भीष्मने आपत्ति की। कहा, "तुम ही क्यों नहीं युधिष्ठिरको हितोपदेश करते हो?"

कृष्ण बोले, सब हित अहित कर्म्म मुझसे हो उत्पन्न हैं। चन्द्रमाको शीतांशु होनेकी कीर्ति जिस प्रकार है उसी प्रकार मेरा यश है। मैं चाहता हूं कि तुम्हारा अधिक यश हो। इसलिये मैंने अपनी सारी बुद्धि तुमको दे दी है। इत्यादि।

यह सुनकर भीष्म बड़े आनन्दसे युधिष्ठिरको धर्म्म-तत्व सुनाने लगे। राजधर्म्म, आपद्धर्म्म और मोक्षधर्म्म विस्तारपूर्वक सुनाया। मोक्षधर्म्मके बाद शान्तिपर्व्व समाप्त है।

इस शान्तिपर्व्वमें तीनों तहें देखनेमें आती हैं। पहली तह ही इसका अञ्जर पञ्जर है। फिर जिसने जैसा समझा उसने

वही शान्तिपर्व्वमें मिला दिया। इसमें समालोचनाके योग्य एक बड़ी भारी बात है। केवल धार्म्मिकको राजा बनानेसे ही धर्म्मराज्यकी स्थापना नहीं हो गयी। आज धार्म्मिक राजा युधिष्ठिर धर्म्मात्मा है, कल उसका उत्तराधिकारी पापात्मा हो सकता है। इसलिये धर्म्मराज्य स्थापित कर उसकी रक्षाके हेतु धर्म्मानुमोदित व्यवस्था भी करनी चाहिये। रणमें विजय पाना राज्य-स्थापनका पहला काम है। उसके शासनके निमित्त विधिकी व्यवस्था ही (Legislation) प्रधान कार्य्य है। श्रीकृष्णने इसके लिये भीष्मको नियुक्त किया। भीष्मको नियुक्त करनेका विशेष कारण था। आदर्श नीतिज्ञ ही वह समझ सकते हैं। कृष्ण स्वयं वह सब कारण भीष्मको बतलाते हैं।

"आप वयोवृद्ध और शास्त्रज्ञान तथा सदाचारसम्पन्न हैं। राजधर्म्म तथा अपरापरधर्म्म आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। जन्मसे लेकर आजतक आपका कुछ भी दोष मालूम नहीं हुआ। राजालोग आपको सब धर्म्मोंका जाननेवाला मानते हैं। इसलिये पिताकी तरह आप ही इन भूपालोंको नीतिका उपदेश दीजिये। आपने ऋषियों और देवताओंकी उपासना की है। इस घड़ी यह भूपतिगण आपसे धर्म्म वृत्तान्त सुननेको उत्सुक हैं। इसलिये आपको विशेष रूपसे सब धर्म्मोंका वर्णन करना होगा। पण्डितोंकी रायसे धर्म्मोपदेश देना विद्वानोंका ही काम है।"

पीछे अनुशासनपर्व्व है। इसमें भी हितोपदेश है। युधिष्ठिर

श्रोता और भीष्म वक्ता हैं। व्यर्थकी बकवादसे यह पर्व्व भरा है। यह सारेका सारा तीसरी तह जान पड़ता है। इसमें मेरे कामकी एक भी बात नहीं है।

निदान भीष्मने स्वर्गारोहण किया। बस इतनी पहली तह है।

ग्यारहवां परिच्छेद।
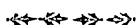
कामगीता।

भीष्मके स्वर्गारोहण करनेपर युधिष्ठिर फिर आंखोंसे गङ्गा यमुना बहाने लगा। बोला, मैं तो वन जाऊंगा। लोंगोने बहुत समझाया। पर श्रीकृष्णने अबके कुछ और ही ढंग निकाला उन्होंने रोग पहचान कर चिकित्सा की। इस तरह रोग पहचान लेना औरोंकी सामर्थ्यके बाहर था। युधिष्ठिरका रोग था अहङ्कार। अङ्गरेजी स्कूलोंमें सिखाया जाता है, प्राइड (Pride) अहङ्कारका प्रति शब्द है। पर वास्तवमें ऐसा नहीं है। अहङ्कार और मात्सर्यमें बड़ा भेद है। "मैं यह करता हूं, यह मेरा है, यह मेरा सुख है, यह मेरा दुःख है" इत्यादि ज्ञान ही अहंकार है। यह अहंकार ही युधिष्ठिरके दुःखका कारण था। मैंने यह पाप किया है, मेरे यह शोक है, मेरे लिये ही यह सब कुछ हुआ, इसलिये मैं वन जाऊंगा, इत्यादि भाव ही युधिष्ठिरका अभिमान और यह अभिमान ही उसके विलापकी जड़ है। इस जड़को

काटकर युधिष्ठिरको ठीक राहपर लाना ही श्रीकृष्णका उद्देश्य था। वह बड़े कठोर शब्दोंमें युधिष्ठिरसे बोले, "आपके शत्रु अब भी बाकी हैं। आपके शरीरके भीतर अहङ्काररूपी बड़ा भारी शत्रु घुस बैठा है, क्या आप उसे नहीं देखते हैं?" इसके पीछे तत्वज्ञानसे अहङ्कार दूर करनेके लिये श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको एक रूपक सुनाया। फिर बड़ा उत्तम ज्ञानोपदेश दिया। जो निष्काम धर्म्म गीतामें हम देखते हैं वही यहां भी है। इस प्रकारके महत्वपूर्ण धर्म्मोपदेशोंमें ही कृष्णचरित्र भलिभांति विकसित होता है। अच्छा, वह धर्मोपदेश पूरा पूरा नीचे दिये देता हूं:—

"हे धर्म्मराज, व्याधि दो प्रकारकी हैं, शारीरिक और मानसिक। यह दोनों आपसमें एक दूसरेकी सहायतासे उत्पन्न होती हैं, शरीरमें जो व्याधि होती है वह शारीरिक और जो मनमें होती है, वह मानसिक व्याधि कहलाती है। कफ, पित्त और वायु यही तीन शरीरके गुण हैं। जब यह तीनों समान रूपसे रहते हैं तब शरीर सुस्थ यानी चंगा कहलाता है और जब इनमें विषमता हो जाती है तब वह असुस्थ यानी रोगी हो जाता है। पित्तकी अधिकता होनेसे कफका ह्रास होता और कफके आधिक्यसे पित्तका। शरीरकी भांति आत्माके भी तीन गुण हैं। इनके नाम सत्त्व, रज और तम हैं। इन तीनोंका समभाव आत्माका स्वास्थ्य है। इनमें एकके आधिक्यसे दूसरेका ह्रास हो जाता है। हर्ष होनेसे शोक और शोक होनेसे हर्ष भाग जाता है। क्या

कोई सुखके समय दुःख और दुःखके समय सुख अनुभव करता है ? जो हो, अभी सुख दुःखका दोनोंका स्मरण करना आपका कर्त्तव्य नहीं है। सुखदुःखसे अतीत परब्रह्मका स्मरण करना ही आपको विधेय है ।++ + + भीष्म द्रोणके साथ आपका जो युद्ध पहले हो चुका है उससे बढ़कर इस समय अकेले अहङ्कारके साथ उपस्थित हुआ है। इसका सामना करना आपको अवश्य चाहिये। योग या उसके उपयोगी कार्य्य करनेसे ही आप इस युद्धमें विजय प्राप्त कर सकेंगे। इस समरमें धनुष, वाण, सेवक, बन्धु बान्धवकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। केवल मनको सहाय बना लड़ना पड़ेगा। इसमें हार जानेसे दुःखकी सीमा न रहेगी। इसलिये आप मेरे उपदेशके अनुसार अहङ्कारको शीघ्र परास्त कर डालिये और शोक परित्याग कर शान्त चित्तसे पैतृक राज्यका प्रतिपालन कीजिये।

"हे धर्म्मराज, केवल राजपाट छोड़ देनेसे ही सिद्धि-लाभ कदापि सम्भव नहीं है। इन्द्रियोंका दमन कर लेनेसे ही सिद्धि प्राप्त होगी, इसमें सन्देह है। जो राजपाट छोड़कर भी मन ही मन विषय भोगकी वासना करता है उसका धर्म्म और सुख आपके शत्रुओंको मिले। ममता संसारकी प्राप्तिका और निर्म-मता ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण कहा गया है। यह विरुद्ध धर्म्मवाली ममता और निर्म्ममता लोगोंके चित्तमें चुपके चुपके डेरा डाल आपसमें एक दूसरेको दबोचती हैं। जो ईश्वरको अविनाशी मान जगत्को भी अविनाशी मानता है वह प्राणियोंकी हत्या करके

भी हिंसाका भागी नहीं होता है। जो स्थावर तथा जंगम जगत्का अधिकार पाकर भी उसमें लिप्त नहीं होता वह कभी संसारके जालमें नहीं फंसता। और जो वनमें फल मूलादि खाकर भी विषय वासना नहीं छोड़ सकता वह अवश्य ही संसारके जालमें फंस जाता है। इसलिये इन्द्रियों और विषयोंको मायासे पूर्ण समझना आपका कर्त्तव्य है। जो इन विषयोंपर कुछ भी ममता नहीं करता वह निश्चय ही संसारसे छुटकारा पाता है। कामके वश मूढ़ व्यक्ति कदापि प्रशंसाका पात्र नहीं हो सकता। कामना मनसे उत्पन्न होती है। वही सारी वृत्तिका मूल कारण है। जो महात्मा अनेक जन्मोंके अभ्यासवश कामनाओंको अधर्म्मरूप समझ दान, वेदाध्ययन, तपस्या, व्रत, यज्ञ, विविध नियम, ध्यान और योग फलकी इच्छासे नहीं करते हैं वह किसी समय कामनाओंको जीत सकते हैं। वासनाका नाश ही यथार्थ धर्म्म और मोक्षका बीजस्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं।

"पुराविद्व पण्डित जिस कामगीताका कीर्त्तन करते रहते हैं वही अब मैं तुम्हें सुनाता हूं, ध्यानसे सुनो। कामना स्वयं कहती है कि निर्ममता और योगाभ्यासके बिना मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता है। जो जपादिसे मुझे जीतना चाहता है उसके मनमें मैं अहङ्कार रूपसे प्रगट हो उसका जपतप बिगाड़ देती हूं। जो यज्ञादिसे मुझे जीतना चाहता है उसके मनमें मैं जंगमके जीवात्माके समान व्यक्त रूपसे प्रगट होती हूं। जो वेदान्तकी आलोचनासे मुझे दमन करना चाहता है उसके मनमें स्थावरके

जीवात्माकी तरह अव्यक्त रूपसे रहती हूं। जो धैर्य्यसे मुझे जय करना चाहता है मैं कदापि उसके मनसे दूर नहीं होती हूं। जो तपस्या कर मुझे दबाया चाहता है मैं उसकी तपस्यामें ही प्रगट होती हूं और जो मोक्षार्थी हो मुझे जीतना चाहता है मैं उसे देख-कर नाचती और हंसती हूं। पण्डितोंने मुझे अवध्य और सना-तन ठहराया है।

"हे धर्म्मराज, मैंने सारी कामगीता सुना दी। कामनाको पराजय करना नितान्त दुःसाध्य है। आप विधिपूर्व्वक अश्वमेध तथा अन्यान्य बड़े २ यज्ञोंका अनुष्ठान कर कामनाको धर्म्मके विष-योंमें लगाइये। बन्धु बान्धवोंके लिये वार वार शोक करना बहुत अनुचित है। आप अनुताप कर उन्हें कभी न देख सकेंगे। इसलिये अभी बड़ी धूमधामके साथ बड़े बड़े यज्ञ कीजिये। इससे इस लोकमें अतुल कीर्ति और परलोकमें उत्तम गति आप पा सकेंगे।"

बारहवां परिच्छेद ।

—:-०-:—

कृष्ण-प्रयाण ।

धर्म्मराज्य स्थापित हुआ और धर्म्मका प्रचार हुआ। श्रीकृष्णके कारण ही पाण्डवोंके नाम इस पुस्तकमें आये। महाभारतमें जिस हेतु श्रीकृष्णको देखते थे वह पूरा हो गया। अब श्रीकृष्णको महाभारतसे अन्तर्ध्यान हो जाना उचित था, पर लिखासे लोगोंके मारे उनका पीछा नहीं छूटता है। अबके इन लिखासोंने अर्ज्जुनके मुंहसे एक बड़ी विचित्र और अप्रासङ्गिक बात कहलायी। अर्जुनने कहा कि युद्धके समय तुमने जो धर्मोपदेश दिया था वह मैं सब भूल गया। फिर दो। कृष्ण बोले, खूब कहो, वह सब बातें मुझे याद नहीं हैं। उस समय तो योगबलसे वह बातें बतायी थीं। तुम भी बड़े मूर्ख हो। तुममें श्रद्धा नहीं है। जाओ, तुमसे और कुछ कहनेको जी नहीं चाहता है। खैर, आओ एक पुराना इतिहास सुनाता हूं।

कृष्णने इस इतिहासके सहारे अर्ज्जुनको फिर कुछ तत्वज्ञान सुनाया। पहले जो सुनाया था उसका नाम गीता प्रसिद्ध है। अब जो सुनाया उसका नाम ग्रन्थकारने "अनुगीता" रखा है। इसके एक भागका नाम "ब्राह्मण गीता" है।

भगवद्गीता, प्रजागर, सनत्सुजातीय, मार्कण्डेयसमस्या, अनुगीता आदि बहुतसे धर्म्मसम्बन्धी ग्रन्थ महाभारतमें ऊपरसे

मिलाये गये हैं और अब वह सबके सब महाभारतका अंश समझे जाते हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ गीता है, पर औरोंमें भी कामकी बहुत सी बातें मिलती हैं। अनुगीता भी उत्तम ग्रन्थ है। मोक्ष मूलर भट्टने अपनी "सैकरेड बुक्स आफ दी ईस्ट" (पूर्वकी पवित्र पुस्तकें) नामक पुस्तकावलीमें (१) इसे स्थान दिया है। श्रीयुत काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंगने जो इस समय बम्बई हाई-कोर्टके जज हैं, इसका अंगरेजीमें अनुवाद किया है। यह अनु-गीता ग्रन्थ चाहे जैसा हो, इससे मुझे कुछ मतलब नहीं। पर यह कृष्णोक्त नहीं है। रचयिता या और किसीने जिस ढंगसे इसे कृष्णके मुखसे कहलाया है उसीसे प्रतीत होता है कि यह कृष्णोक्त नहीं है। पैवन्द साफ मालूम होता है। वह बहुत छिपानेसे भी नहीं छिपता है। गीतोक्त धर्म्मका अनुगीताके धर्म्मसे ऐसा कुछ मेल नहीं है जिससे यह गीता कहनेवालेकी उक्ति समझी जाय। श्रीयुत काशीनाथ त्र्यम्बकने अपने अनुवादकी लम्बी चौड़ी भूमिका लिखी है। उसमे उन्होंने सन्तोषजनक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि गीता बननेके कई शताब्दी पीछे यह अनुगीता रची गयी है। उन प्रमाणोंकी आलो चना करनेकी कुछ दरकार नहीं। कृष्णचरित्रका अनुगीतासे कुछ लेन देन नहीं है। हां, अनुगीता और ब्राह्मणगीता या ब्रह्मगीत वास्तवमें क्षेपक हैं, इसका प्रमाण बस यही है कि पर्व्वसंग्रहा ध्यायमें इनके नामतक नहीं हैं।

---

(१) Sacred Books of the East.

अर्ज्जुनको उपदेश दे चुकनेपर श्रीकृष्ण अर्ज्जुन और युधिष्ठिरादिसे बिदा हो द्वारका चले। इस बिदाके समय मानव-प्रकृतिके अनुरूप स्नेह प्रगट हुआ है। कृष्णकी मानविकताके अनेक उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। अतएव उनका विस्तृत वर्णन यहां वृथा है।

पथमें उतङ्कमुनिसे श्रीकृष्णका साक्षात् हुआ लिखा है। कृष्णने युद्ध रोका नहीं, इसलिये मुनिजी उन्हें शाप देने लगे। कृष्ण बोले, शाप न देना, देनेसे तुम्हारा तप क्षय होगा, मैंने सन्धिके लिये चेष्टा की थी और मैं जगदीश्वर हूं। इसपर उतङ्कने प्रणाम कर उनकी स्तुति की और विराट रूप देखनेकी इच्छा प्रगट की। कृष्णने भी उनकी इच्छा पूरी की। फिर जबरदस्ती उतङ्कको मनमाना वरदान दिया। पीछे चाण्डाल आया, कुत्ता आया, चाण्डालने उतङ्कसे कुत्तेका मूत पीने कहा। इत्यादि इत्यादि बहुतसी गन्दी बातें हैं। उतङ्क समागमकी कथा महाभारतके पर्व्वसंग्रहाध्यायमें नहीं है। अतएव यह क्षेपक है। क्षेपकके बारेमें कुछ लिखना व्यर्थ है। यहां तीसरी तह साफ दिखाई देती है।

द्वारका पहुंचकर श्रीकृष्ण बन्धु-बान्धवोंसे मिले। वसुदेवने युद्धका वृत्तान्त सुनना चाहा। कृष्णने कह सुनाया। यह वृत्तान्त संक्षिप्त है। इसमें न अत्युक्ति है और न किसी प्रकारकी अनैसर्गिक घटना ही है। मोटी मोटी सब बातें इसमें आ गयी हैं। केवल अभिमन्युवधकी बात उन्होंने नहीं कही। सुभद्रा

उनके साथ द्वारका आयी थी। उसने अभिमन्युवधको चर्चा चलायी तो उन्होंने पूरा पूरा हाल कह सुनाया।

इधर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे चलनेके समय अनुरोध किया था कि अश्वमेध यज्ञके अवसरपर फिर आना। इसीसे यज्ञके समय श्रीकृष्ण यादवों सहित फिर हस्तिनापुर गये।

कृष्णके वहां पहुंचनेपर अभिमन्युकी भार्य्या उत्तराने मरा हुआ बच्चा जना। कृष्णने उसे जिला दिया। पर इससे यह सिद्धान्त नहीं निकलता कि कृष्णने ऐशी शक्तिसे उस मरे बच्चेको जिलाया था। क्योंकि आजकलके बहुतसे डाकृर भी मरे हुए बच्चेको धरतीपर गिरते ही जिला सकते हैं और जिलाते हैं, यह हम लोगोंमेंसे बहुतोंको मालूम है। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि उस समय और लोग जो काम नहीं जानते थे वह श्रीकृष्ण जानते थे, वह आदर्श मनुष्य थे, इससे उन्होंने सब विद्याएं और कलाएं सीखी थीं।

पीछे यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। कृष्ण फिर द्वारका पधारे। पाण्डवोंसे फिर उनका साक्षात् नहीं हुआ।

इति षष्ठ खण्ड।

सप्तम खण्ड ।

योऽसौ युगसहस्रान्ते प्रदीप्तार्चिर्विभावसुः ।

संक्षोभयति भूतानि तस्मै घोरात्मने नमः ॥

शान्तिपर्व्व ४७ अध्याय ।

प्रभास ।

पहला परिच्छेद ।

यदुवंशनाश ।

इसके पीछे आश्रमवासिक-पर्व्व है। इससे कृष्णका कुछ सम्बन्ध नहीं है। इसके बाद मौसल-पर्व्व है। यह बड़ा भयानक है। इसमें समस्त यादवोंका विनाश और कृष्ण-बलरामका देहत्याग वर्णित है। यादव आपसमें लड़कर मर मिटे। लिखा है कि श्रीकृष्णने इस महा भयानक दुर्घटनाके रोकनेका कुछ भी उपाय नहीं किया—बल्कि बहुतेरे यादवोंपर उन्होंने स्वयं हाथ साफ किया था।

इसका वर्णन यों है। गान्धारीके कहे तिरेसठ वर्ष पूरे हो गये। यादव बड़े उद्दण्ड हो उठे थे। एक बार विश्वामित्र, एव और नारद यह तीनों प्रसिद्ध ऋषि द्वारका पहुंचे। उद्दण्ड यादवोंने कृष्णके पुत्र शाम्बको स्त्री बना ऋषियोंके पास ले जाकर कहा कि महाराजजी, इसके पैर भारी हैं, कहिये इसके बेटा होगा या बेटी? पुराणोंमें लिखा है कि ऋषि बड़े क्रोधी होते हैं। बात बातपर शाप देनेके लिये मुंह बाये बैठे रहते हैं। यदि

यह सत्य हो, तो ऋषियोंको जितेन्द्रिय ईश्वरपरायण न कह निष्ठुर नरपिशाच कहना चाहिये। आजकल किसी भले आदमीसे ऐसा सवाल किया जाय, तो वह हंसकर रह जायगा या वहुत करेगा, तो जरा एंड़ी बेंड़ी सुना देगा। पर हमारे इन जितेन्द्रिय महर्षियोंके इतनी सहनशीलता कहां! वह चट जामेसे बाहर हो शाप दे बैठे। बोले, न बेटा होगा न बेटी। लोहेका मूसल होगा जिससे कृष्ण-बलरामको छोड़ सब यदुवंशियोंका नाश होगा। कृष्णतक यह खबर पहुंची, तो वह बोले, ऋषियोंने जो कहा वह अवश्य होगा। उन्होंने शाप निवारणका कुछ उपाय न किया।

शाम्ब पुरुष हो चाहे स्त्री, पर उसने ऋषियोंके वचनानुसार लोहेका मूसल जन दिया। यादवोंके राजाने (श्रीकृष्ण राजा न थे, राजा थे उग्रसेन) उस मूसलको चूर्ण कर डालनेकी आज्ञा दी। वह चूर्ण कर समुद्रमें फेंक दिया गया, इधर यादव उद्दण्ड हो धर्म्म-कर्म्म छोड़ बैठे। कृष्णने उनके विनाश करनेकी वासनासे प्रभास-तीर्थ चलनेके लिये उनसे कहा।

यदुवंशी लोग प्रभास पहुंचे और मदिरा पीकर रंगरलियां करने लगे। पीछे सबके सब लड़ मरे। कुरुक्षेत्रके महारथी सात्यकीने कृतवर्म्मासे छेड़छाड़ की। प्रद्युम्नने सात्यकीका साथ दिया। सात्यकीने कृतवर्म्माका सिर काट लिया। इसपर कृतवर्म्माके भाई बेटोंने (१) बिगड़कर सात्यकी और

(१) यदुवंशियोंमें वृष्णि, भोज, अन्धक और कुकुरवंशी भी शामिल हैं।

प्रद्युम्नको मार डाला। कृष्णने क्रुद्ध हो एक मुट्ठी सरपत उखाड़ लिया और उसीसे बहुतसे यादवोंका काम तमाम कर दिया। अन्य ग्रन्थोंमें लिखा है कि यह सरपत मूसलके उसी चूर्णसे पैदा हुआ था जो समुद्रमें फेंका गया था। महाभारतमें यह कथा नहीं मिली, पर लिखा है कि श्रीकृष्णने जब सरपत उखाड़ा, तो वह मूसल बन गया। और यह भी कहा जाता है कि वहांके सब सरपत ही ब्राह्मणके शापसे मूसल बन गये थे। यादवोंने सरपत उखाड़ उखाड़कर एक दूसरेको मारना शुरू किया। बस समस्त यादव आपसमें लड़कर मर मिटे। सबके मारे जानेपर कृष्णका सारथी दारुक और बभ्रु (यादव) श्रीकृष्णसे बोले "जनार्द्दन, आपने अभी असंख्य प्राणियोंका संहार किया, अब चलिये हम लोग महात्मा बलभद्रके निकट चलें।"

कृष्णने दारुकको अर्ज्जुनके पास हस्तिनापुर भेजा। और कहला भेजा कि अर्ज्जुन आकर यादवोंकी स्त्रियोंको हस्तिना-पुर ले जाय। कृष्णने आकर देखा कि बलराम योगासनपर बैठे हैं। उनके मुंहसे सहस्रफनोंका एक सर्प निकल समुद्रमें घुस गया और सागर, नदी, वरुण और वासुकी आदि अन्य सर्पगण उसकी स्तुति करने लगे। बलरामका शरीर प्राण-शून्य हो गया। उस समय श्रीकृष्ण मर्त्यलोक त्याग करनेकी इच्छासे महायोग अवलम्बन कर धरतीपर [illegible] जरा नामके व्याधाने मृगके भ्रमसे उनके पाद-पद्ममें बाण मारा

पीछे अपनी भूल समझ भयभीत हो श्रीकृष्णके चरणोंपर गिर पड़ा। कृष्णने उसे आश्वासन दे आकाशमण्डल प्रकाशित कर स्वर्ग गमन किया।

अर्ज्जुनने द्वारका आकर रामकृष्णादिका क्रिया-कर्म्म किया और फिर यदुवंशकी कुल-कामिनियोंको ले वह हस्तिनापुर चला। पथमें लठबन्द डाकू उसपर टूट पड़े। जिस अर्ज्जुनने पृथिवी जय की थी, भीष्म और कर्णको लड़ाईमें मारा था, वह बेचारा लठधर किसानोंका कुछ न कर सका। गाण्डीव धनुष यों ही पड़ा रह गया और डाकू रुक्मिणी, सत्यभामा, हैमवती, जाम्बवती आदि कृष्णकी पटरानियोंको छोड़ बाकी सबको उठा ले गये।

यह सब कथाएं क्या मौलिक हैं? मूसल और सरपतकी कथा अस्वाभाविक समझ नियमानुसार छोड़ देनेके लिये मैं वाध्य हूं। पर इसे छोड़ देने पर भी, जो सच्ची मोटी बातें बच रहती हैं, वह सहज ही छोड़ देने लायक नहीं हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यादव मद्यप और उद्दण्ड हो गये थे। यह सब एक वंशके नहीं थे। कई वंशोंके थे और आपसमें उनका हेल मेल नहीं था। कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें वार्ष्णेय, सात्यकी और कृष्ण पाण्डवोंकी तरफ थे, पर अन्धक, भोजवंशी कृतवर्म्मा, दुर्योधनकी तरफ। फिर यादवोंका कोई राजा न था। उग्रसेन नाममात्रका राजा था। कृष्ण अपने गुणोंके कारण उनके नेता थे, पर देखनेमें आता है कि उनकी राय

अपने बड़े भाई बलरामसे नहीं मिलती थी। शान्तिपर्व्वमें कृष्ण और नारदका संवाद भीष्म सुनाते हैं। उसमें कृष्ण दुःखी हो नारदसे कहते हैं कि मैं यदुवंशियोंको प्रसन्न रखनेके लिये बहुत प्रयत्न करता हूं, पर कुछ फल नहीं होता है। यह सब बातें पहले कही जा चुकी हैं। इसलिये यादव जब एक दूसरेसे ईर्षाद्वेष करने लगे, अपने अपने घरके सब ही मुखिया बन बैठे, उद्दण्ड और अभिमानी हो गये और शराब पीने लगे, (१) तब उनका परस्पर कलह कर मर मिटना और फिर कृष्ण-बलदेवका भी इच्छा या अनिच्छासे देह त्याग करना असम्भव या अस्वाभाविक नहीं है। जान पड़ता है, ऐसी कुछ किंवदन्ती प्रचलित थी जिसपर पुराण बनानेवालोंने यदुवंश ध्वंशका यह किस्सा खड़ा किया है। इसलिये इसकी सत्यताकी बहुत छान बीन करनेकी जरूरत नहीं दीखती है। हां, दो एक बातें कहनी जरूरी हैं। लिखा है कि कृष्णने यदुवंशको बचानेके लिये कुछ भी न किया, बल्कि उसके नाश करनेमें सहायता दी। यदि यह भी सत्य हो, तो कृष्णचरित्रमें कुछ भी दोष या धब्बा नहीं लगता है। वह आदर्श मनुष्य थे, उन्होंने आदर्श मनुष्यके उपयुक्त ही काम किया। आदर्श पुरुषका अपना

(१) यादवोंमें मदिराकी चाल इतनी चल गयी थी कि कृष्ण बलरामको मुनादी करवानी पड़ी कि जो कोई शराब चुलावेगा वह शूलीपर चढ़ाया जायगा। मैं चाहता हूं कि यूरपवाले इसकी नकल करें।

पराया कुछ नहीं है। धर्म्म ही उसका अपना है। यदुवंशी अधर्म्मी हो गये तो उन्हें दण्ड देना और जरूरत होनेपर उनका विनाश कर डालना श्रीकृष्णका कर्त्तव्य था। जिन्होंने जरासन्धादिको अधर्म्मी होनेके कारण ही मारा था वह यादवोंको अधर्म्म करते देखकर भला कैसे चुप रह सकते हैं? अगर रह जायं, तो वह धर्म्मके बन्धु नहीं, अपने बन्धुबान्धवोंके बन्धु — आत्मबन्धु समझे जांयगे। वह धर्म्मके पक्षपाती नहीं, अपने पक्षपाती और अपने वंशके पक्षपाती माने जायंगे। आदर्श धर्म्मात्मा ऐसा नहीं हो सकता है और न कृष्ण ऐसे थे।

कृष्णके शरीर-त्यागका कारण बहुत कुछ अनिश्चित ही है। पर तो भी इसके चार कारण हो सकते हैं। पहला, टलबौयस ह्वीलटी (१) सम्प्रदायवाले कह सकते हैं कि कृष्ण जुलियस सीजर (२) की तरह अपने द्वेषी भाइयोंके हाथसे मारे गये। पर ऐसी बात किसी ग्रन्थमें नहीं है।

दूसरा, कृष्णने योगावलम्बन कर शरीर त्याग किया। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके चेलोंका योग फोगपर विश्वास नहीं है। पर मैं स्वयं अविश्वासका कोई कारण नहीं देखता हूं। जिन्होंने योगाभ्यासके समय सांस रोकनेका अभ्यास किया है वह

(१) यह यूरपका संस्कृतज्ञ विद्वान है। इसने संस्कृत ग्रन्थोंके बारेमें बड़ी ऊटपटांग बातें लिखी हैं। भाषान्तरकार

(२) रोमका प्रसिद्ध बादशाह जिसका खून ब्रूटसने किया था। भाषान्तरकार

सांस रोककर अपना शरीर त्याग नहीं सकते, यह जोर देकर मैं नहीं कह सकता। ऐसी घटनाएं विश्वस्त सूत्रसे सुनी भी गयी हैं। कोई कह सकता है कि यह आत्महत्या है, इसमें पाप है। इसलिये आदर्श मनुष्यके योग्य यह काम नहीं है। मेरी राय ठीक यह नहीं है। बुढ़ापेमें जीवनके सब काम पूरे हो जानेपर ईश्वरमें लीन होनेके लिये मन ही मन तन्मय हो श्वास-रोध करना, आत्महत्या समझी जायगी या "ईश्वरप्राप्ति" ? यह विचारनेकी बात है। मैं मानता हूं कि आत्महत्या महा पाप है, पर क्या जीवनके अन्तमें योगबलसे प्राण-त्याग करना भी पाप है ? कदापि नहीं।

तीसरा, जरा व्याधका वाण मारना; चौथा, उस समय कृष्णकी उमर सौ सालसे ज्यादे हो चुकी थी, यह विष्णु-पुराणमें लिखा है। यह जरा व्याध कहीं जरा (बुढ़ापा) व्याधि तो नहीं है ?

जो श्रीकृष्णको मनुष्य ही समझते हैं उनका ईश्वर होना नहीं मानते, वह इन चार मतोंमेंसे एक मान सकते हैं ? मैं तो श्रीकृष्णको ईश्वरका अवतार मानता हूं, इसलिये मैं कहता हूं कि कृष्णकी इच्छा ही उनके शरीर-त्यागका कारण है। मेरा कहना यह है कि संसारमें मनुष्यत्वका आदर्श प्रचार करना उनकी इच्छा थी। वही इच्छा पूर्ण करनेके लिये उन्होंने मानुषी शक्तिसे सब काम किया। पर तो भी कहना पड़ेगा कि ईश्वरावतारका जन्म-मरण उसके ही इच्छाधीन है। इस

हेतु मैं कहता हूं कि कृष्णकी इच्छा ही कृष्णके प्राण-त्यागका एक मात्र कारण है।

मौसलपर्व्व महाभारतकी पहली तहके भीतर है या नहीं, इसका विचार मैंने नहीं किया है। इसकी जरूरत क्यों नहीं है, यह भी कह चुका हूं। स्थूल घटना कुछ सत्य मालूम होती है। पर तो भी यह महाभारतकी पहली तह नहीं जान पड़ती है। पुराणों और हरिवंशमें कृष्णके जीवनकी जो और और बातें हैं वह महाभारतमें नहीं हैं। केवल यही एक घटना है जो पुराणोंमें भी है, हरिवंशमें भी है और महाभारतमें भी है। पाण्डवोंके बारेमें श्रीकृष्णने जो कुछ किया था उसके सिवा और कोई कृष्ण-वृत्तान्त महाभारतमें नहीं है और न रहनेकी सम्भावना ही है। केवल यही उस नियमके बाहर है। यहां श्रीकृष्ण अवतार माने गये हैं, यह दूसरी या तीसरी तहके कविकी करतूत है। यह पहलेही कह चुका हूं। ऐसा सोचनेका और भी कारण बताया जा सकता है, पर बतानेकी कुछ विशेष आवश्यकता नहीं दिखाई देती। हां, यह कहना आवश्यक है कि अनुक्रमणिकाध्यायमें मौसलपर्व्वकी कुछ भी चर्चा नहीं है। परीक्षितके जन्मके पीछेकी कोई बात उसमें नहीं है। मेरी समझसे परीक्षितका जन्म ही आदि महाभारतका अन्त है। उसके बादकी जो कथाएं हैं वह सबकी सब दूसरी या तीसरी तहकी हैं।

द्वितीय परिच्छेद।
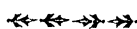
उपसंहार।

आवश्यकतानुसार समालोचकोंका काम दो प्रकारका है। एक तो पुराने कुसंस्कारका मिटाना और दूसरा सत्यका स्थापन करना। कृष्णचरित्रमें पहला काम ही प्रधान है। इसलिये मेरा विशेष ध्यान उधर ही रहा है। कृष्णचरित्रमें सत्य प्रगट करना बड़ा ही कठिन काम है क्योंकि मिथ्या और अलौकिक घटनाओंकी भस्ममें यहां सत्यरूपी अग्नि ऐसी छिप गयी है कि उसका पता लगाना टेढ़ी खीर है। जिन उपादानोंसे सच्चा कृष्णचरित्र प्रगट हो सकता है वह असत्यके सागरमें निमग्न हो गये हैं। पर तो भी जहांतक बना मैंने इसे प्रगट किया है।

उपसंहारमें अब यह देखना है कि इतिहास और पुराणोंमें जितना सत्य मिलता है उतनेसे कृष्णचरित्र कैसा प्रतिपन्न होता है।

बचपनमें श्रीकृष्ण आदर्श बलवान थे। उस समय उन्होंने केवल शारीरिक बलसे ही हिंसक जन्तुओंसे वृन्दावनकी रक्षा की थी। और कंसके मल्लादिको भी मार गिराया था। गौ चरानेके समय ग्वालोंके साथ खेलकूद और कसरत करके उन्होंने अपने शारीरिक बलकी वृद्धि कर ली थी। दौड़नेमें कालयवन भी उन्हें न पा सका। कुरुक्षेत्र युद्धमें उनके रथ हांकनेकी भी बड़ी प्रशंसा है।

शस्त्रास्त्रकी शिक्षा मिलनेपर वह क्षत्रिय समाजमें सर्वश्रेष्ठ वीर समझे जाने लगे। उन्हें कभी कोई परास्त न कर सका। कंस, जरासन्ध, शिशुपाल प्रभृति तत्कालीन प्रधान योद्धाओंसे तथा काशी, कलिङ्ग पौण्ड्रक, गान्धार आदिके राजाओंसे वह लड़ गये और सबको उन्होंने परास्त किया। उन्हें कभी कोई जीत न सका। सात्यकी और अभिमन्यु उनके शिष्य थे। वह दोनों भी सहज ही हारनेवाले न थे। स्वयं अर्जुनने भी उनसे युद्धकी बारीकियां सीखी थीं।

केवल शारीरिक बल और शिक्षापर जो रणपटुता निर्भर है, उसकी ही प्रशंसा इतिहास और पुराणोंमें मिलती है। परन्तु ऐसी रणपटुता एक सामान्य सैनिकके भी हो सकती है। सेनापतित्व ही योद्धाका वास्तविक गुण है। इस काममें उस समयके लोग पटु न थे। महाभारत या पुराणोंमें एक भी अच्छे सेनापतिका पता नहीं लगता है। भीष्म या अर्जुन भी अच्छे सेनापति न थे। श्रीकृष्णके सेनापतित्वका कुछ विशेष परिचय जरासन्ध युद्धमें मिलता है। उन्होंने अपनी मुट्ठी भर यादव सेना लेकर जरासन्धकी अगणित सेनाको मथुरासे मार भगाया था। अपनी थोड़ीसी सेनासे जरासन्धका सामना करना असाध्य समझकर मथुरा छोड़ना, नया नगर बसानेके लिये द्वारकाद्वीपका चुनना और उसके सामनेकी रैवतक पर्व्वतमालामें दुर्भेद्य दुर्ग निर्म्माण करना जिस रणनीतिज्ञताका परिचायक है वह पुराणेतिहासके और किसी क्षत्रियमें नहीं देखी जाती है। पुराणकार

ऋषियोंकी बुद्धि वहांतक न पहुंची। इसलिये इस बातका यह भी एक प्रमाण है कि कृष्णकी कथा केवल उनकी कल्पनासे नहीं निकली है। श्रीकृष्णकी ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां सब ही विकासको पराकाष्ठाको पहुंची हुई थीं। इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिल गया है। वह अद्वितीय वेदज्ञ थे, क्योंकि भीष्मने उन्हें अर्घ्य प्रदान करनेका एक कारण यह भी बताया था। शिशुपालने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बस इतना ही कहा था कि वेदव्यासके रहते कृष्णकी पूजा क्यों?

श्रीकृष्णकी ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां विकासकी पराकाष्ठाको पहुंच गयी थीं, इसका तीव्रोज्ज्वल प्रमाण उनका प्रचारित धर्म्म ही है। यह धर्म्म केवल गीतामें ही नहीं, महाभारतमें भी अत्र तत्र है। ग्रन्थान्तरमें मैंने कहा है कि कृष्ण-कथित धर्म्मकी अपेक्षा उन्नत, सर्व्व लोकहितकारी, सब लोगोंके आचरण योग्य धर्म्म और कभी पृथिवीपर प्रचारित नहीं हुआ। इस धर्म्ममें जिस ज्ञानका परिचय मिलता है वह प्रायः मनुष्य बुद्धिके परे है। श्रीकृष्णने मानुषी शक्तिसे सब काम सिद्ध किये हैं, यह मैं वारंवार कह चुका हूं और प्रमाणित भी कर चुका हूं। केवल गीतामें ही श्रीकृष्णने अनन्त ज्ञानका आश्रय लिया है।

सार्व्वजनीन धर्म्मके सिवा राजधर्म्म या राजनीतिमें भी देखा जाता है कि श्रीकृष्णकी ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां विकासकी चरम सीमा तक पहुंच गयी थीं। श्रीकृष्ण सबसे श्रेष्ठ और माननोय राजनीतिज्ञ थे। इसीसे युधिष्ठिरने वेदव्यासके कहनेपर भो श्रीकृ-

ष्णके परामर्श बिना राजसूय यज्ञमें हाथ नहीं लगाया । स्वेच्छाचारी यादव और कृष्णकी आज्ञामें चलनेवाले पाण्डव दोनों ही उनसे पूछे बिना कुछ नहीं करते थे। जरासन्धको मारकर उसकी कैदसे राजाओंको छुड़ाना उन्नत राजनीतिका अति सुन्दर उदाहरण है। यह साम्राज्य स्थापनका बड़ा सहज और परमोचित उपाय है। धर्म्मराज्य स्थापनके पश्चात् उसके शासनके हेतु भीष्मसे राज्यव्यवस्था ठीक कराना राजनीतिज्ञताका दूसरा बड़ा प्रशंसनीय उदाहरण है। और भी बहुतसे उदाहरण पाठकोंको मिल चुके हैं।

श्रीकृष्णकी बुद्धिका विकास चरम सीमातक हुआ था। इसीसे वह सर्व्वव्यापी, सर्व्वदर्शी और सब उपायोंकी उद्भावना करनेवाली थी। यह हम बराबर देखते आते हैं। मनुष्यशरीर धारण कर जितनी सर्व्वज्ञता हो सकती है उतनी श्रीकृष्णमें थी। जिस अपूर्व्व अध्यात्मतत्व और धर्म्मतत्वके आगे अबतक मनुष्यकी बुद्धि नहीं जा सकती है उससे लेकर चिकित्सा, संगीत, और अश्वपरिचर्यातक वह भली भांति जानते थे। उत्तराके मृत पुत्रको जिलाना उनकी चिकित्साका, वंशी-वादन संगीतका और जयद्रथवधके दिन घोड़ोंकी चिकित्सा उनकी अश्वपरिचर्याका उदाहरण है।

कृष्णकी सब ही कार्य्यकारिणी वृत्तियां चरम सीमातक विकसित हुई थीं। उनके साहस, उनकी फुर्ती, और सब कामोंमें उनकी तत्परताका परिचय बहुत दे चुका हूं। उनका

धर्म्म तथा सत्य अचल था, इसके प्रमाण इस पुस्तकमें अनेकों हैं। ठौर ठौर उनकी दयालुता और प्रीतिका इसमें वर्णन है। बलाभिमानियोंकी अपेक्षा बलवान् होना भी लोकहित करना है। वह शान्तिके लिये दृढ़ताके साथ बराबर प्रयत्न करते थे और इसके लिये वह दृढ़प्रतिज्ञ थे। वह सबके हितैषी थे, केवल मनुष्योंपर ही नहीं, गोवत्सादि जीवजन्तुओंपर भी वह दया करते थे। इसका पता गोवर्द्धन-पूजासे लगता है। भागवतमें लिखा है कि वह बन्दरोंके लिये मक्खन चोरी करते और फल-बेचनेवालोंके फल छीनते थे।

यह कहांतक ठीक है, नहीं कहा जा सकता। पर जिन्होंने गो बछड़ोंके अच्छे चारेके लिये इन्द्रयज्ञ बन्द करा दिया उनका बन्दरोंके लिये मक्खन चुराना भी स्वाभाविक ही है। वह अपने भाई बन्धु, कुटुम्ब कबीलाके कितने हितैषी थे यह दिखा चुका हूं, पर साथ ही यह भी दिखा दिया है कि उनके पापाचारी हो जानेपर वह उनके पूरे शत्रु बन जाते थे। उनका असीम क्षमा-गुण देखा है और यहभी देखा है कि समयपर वह पाषाण-हृदय होकर दण्ड देते थे। वह स्वजनप्रिय थे, पर लोकहितके लिये स्वजनोंका विनाश करनेमें भी कुण्ठित नहीं होते थे। कंस उनका मामा था। उनके जैसे पाण्डव थे वैसे शिशुपाल भी था। दोनों ही उनकी फूफोके बेटे थे। उन्होंने मामा और भाईका मुलाहजा न कर दोनोंको ही दण्ड दिया। फिर यादव लोग सुरा-पायी हो उद्दण्ड हो गये, तो उन्होंने उन्हें भी अछूता न छोड़ा।

कृष्णकी यह सब वृत्तियां चरम सीमातक विकसित हो गयी थीं। इसलिये उन्होंने मनोरञ्जिनी वृत्ति यों ही नहीं छोड़ दी। उन्होंने उसका भी अनुशीलन किया था, क्योंकि वह आदर्श मनुष्य थे। बचपनमें व्रजकी लीलाएं जिसलिये हुई थीं, उसीलिये समुद्र-विहार, यमुना-विहार और रैवतक-विहारकी व्यवस्था स्याने होनेपर की गयी थी। इसका विस्तृत वर्णन व्यर्थ है।

बस, अब एक ही बात कहनेको बाकी है। 'धर्म्मतत्व' में मैंने कहा है कि भक्ति हो मनुष्यकी प्रधान वृत्ति है। श्रीकृष्ण आदर्श मनुष्य थे, मनुष्यत्वका आदर्श प्रचार करनेके लिये उनका अवतार हुआ था। पर उनकी भक्ति तो कहीं देखनेमें न आयी। यदि वह ईश्वरावतार हों, तो उनकी भक्तिका पात्र कौन हो सकता था? वह अपनी भक्तिके पात्र आप ही हैं। (१) अपनेको परमात्मासे अभिन्न कर लेनेसे ही अपनी भक्ति अपने ऊपर होती है। यह ज्ञानमार्गकी पराकाष्ठा है। इसीका नाम आत्मरति है। छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है—"एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड़ आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवतीति।"

अर्थात्

यह देखकर, यह सोचकर, यह जानकर, जो आत्मामें रत होता है, आत्मामें ही क्रीड़ा करता है, आत्मामें ही रहता है और आत्मामें ही आनन्द करता है, वही स्वराज्य है।

---

(१) महाभारतमें जहां जहां श्रीकृष्ण शिवोपासक बताये गये हैं, वह सब क्षेपक है।

गीतामें इसकी व्याख्या है। श्रीकृष्ण आत्माराम थे। आत्मा जगन्मय है। उसी जगत्पर उनका प्रेम था। परमात्माकी आत्मरति और किसी तरह समझमें नहीं आती। कमसे कम मैं तो नहीं समझा सकता।

अन्तमें कहना यही है कि सर्व्वदा और सर्व्वत्र सर्व्व गुणोंके प्रकाशसे श्रीकृष्ण तेजस्वी थे। वह अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय, दृढ़कर्म्मी, धर्म्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्म्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील, निरपेक्ष, शास्ता, निर्दय, निरहङ्कार, योगी और तपस्वी थे। वह मानुषी शक्तिसे कार्य्य करते थे, परन्तु उनका चरित्र अमानुषिक था। अब पाठक ही अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार इसका निर्णय कर लें कि जिसकी शक्ति मानुषी पर चरित्र मनुष्यातीत था वह पुरुष मनुष्य था या ईश्वर। जो श्रीकृष्णको निरा मनुष्य ही समझे वह उन्हें कमसे कम वही माने जो राइस डेविड्सने (१) शाक्यसिंहको माना है। राइस डेविड्सने शाक्यसिंहको "The wisest and greatest of the Hindus" (२) लिखा है। और जिसे श्रीकृष्णके चरित्रमें ईश्वरका प्रभाव दिखायी दे वह यह पुस्तक समाप्त होते समय मेरे साथ हाथ जोड़कर विनयपूर्व्वक कहे—

"नाकारणात् कारणाद्वा कारणाकारणान्न च।
शरीरग्रहणं वापि धर्म्मत्राणाय ते परम्॥"

॥ इति शुभम्॥

---

(१) Rhys Davids.

(२) अर्थात् हिन्दुओंमें सबसे बड़ा ज्ञानी और महात्मा। भाषान्तरकार

हिन्दी-पुस्तक-मालाका पहला पुष्प

स्वाधीनताके सिद्धान्त

लेखक—आयर्लेण्डके सत्याग्रही वीर

टेरेन्स मैक्स्विनी ।

इसमें लेखकने स्वाधीनताके सच्चे सिद्धान्तोंका वर्णन किया है। स्वाधीनताका मूल क्या है, इङ्गलेण्डसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेसे दोनों देशोंको क्या क्या लाभ हैं, सच्चा नैतिक बल क्या है, शत्रु कौन है और मित्र कौन है, शक्तिका असली रहस्य क्या है, आचार-व्यवहारमें सिद्धान्त किस प्रकार माने जाते हैं, दृढ़-भक्ति किसे कहते हैं, वीर नारियोंका धर्म क्या है, साम्राज्यवादमें कितनी बुराइयां भरी हुई हैं, सशस्त्र-प्रतिरोध उचित है या अनुचित, कानूनका सच्चा अर्थ क्या है, सशस्त्र-प्रतिरोध किस समय करना चाहिये, आदि आदि विषयोंका वर्णन इस ग्रन्थमें बड़ी ओजस्विनी भाषामें किया गया है। हिन्दीके सभी समाचारपत्रोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। पुस्तकके आरम्भमें ग्रन्थकारका सचित्र चरित्र भी दिया गया है। स्वतंत्रता-प्रेमियोंको अवश्य इसे मंगाकर पढ़ना चाहिये। ऐसे अमूल्य ग्रन्थका मूल्य भी सर्व साधारणके सुबीतेके लिये केवल १) रखा गया है।